अनन्तविभूतिश्री

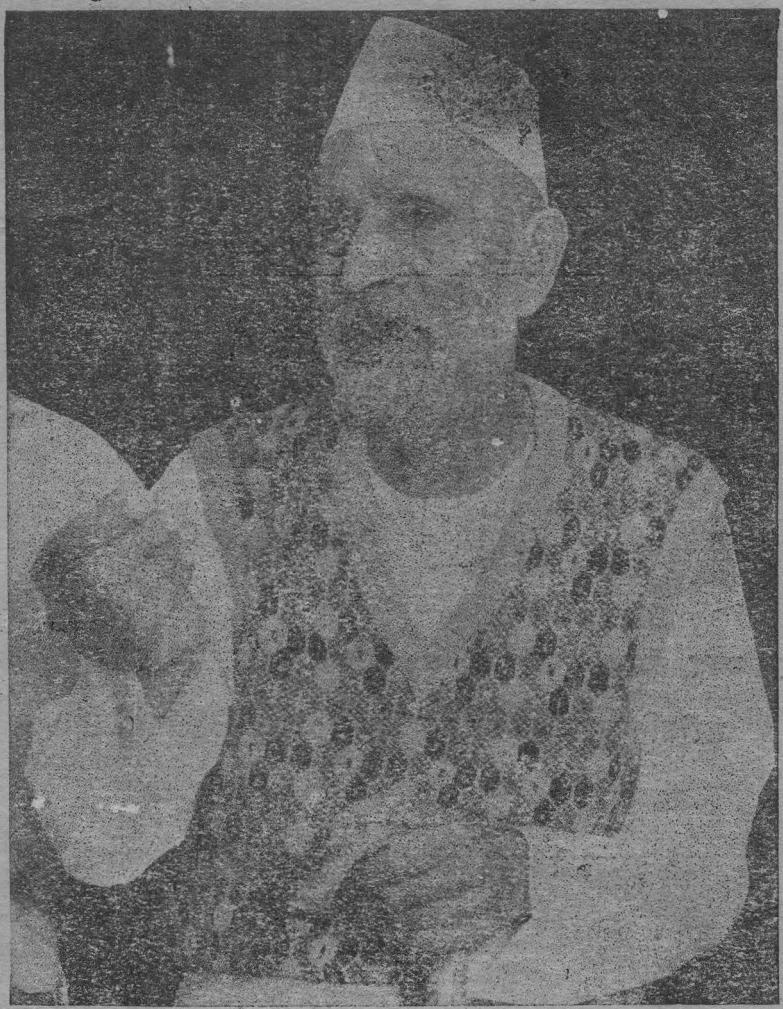

बाबूजी की आत्मकथा

भाग–२

(१९४४–१९५५)

बाबूजी की आत्मकथा

भाग–२

परम पूज्य, सतत–स्मरणीय श्री बाबूजी के प्रति आस्थासम्पन्न,
भक्तिनिष्ठ एवम् जिज्ञासु अभ्यासियों के आध्यात्मिक
लाभ हेतु मालिक की अहैतुकी कृपा और
आशीर्वचन से उन्ही को समर्पित ।

प्रस्तुत पुस्तिका से उपलब्ध धनराशि श्री रामचन्द्र मिशन
आश्रम, शाहजहाँपुर की सुरक्षा, संरक्षण–व्यवस्था
में उपयोग की जाएगी ।

–मालिक की आज्ञा से

ॐ

प्राणाहुति प्रणेता

समर्थ सदगुरु परम पूज्य महात्मा

श्री रामचन्द्र जी महाराज

(बाबूजी)

शाहजहाँपुर

की

आत्म कथा भाग–२

१९४४

११–५–४४

स्नान करते समय मेरे मन में एक विचार का आविर्भाव हुआ कि मुझे अपने श्रद्धेय गुरु लाला जी का कोई गुण अनुकरण में लाना चाहिए। तत्काल ही लाला जी ने कहा कि मैने–बिना जाने हुए ही उनकी अन्तर्दशा आत्मसात् कर ली है–अन्य कोई ऐसी सामर्थ्य अर्जित कही कर सका।

विचार प्रकट हुआ कि फतेहगढ़ समाधि के समीप–संगीत गाना बजाना निषेध है। क्या यह निर्देश पालन करना चाहिये लालाजी ने कहा–जब कभी कोई किसी स्थान पर जाये तो उस स्थान के अधीक्षक स्वामी के निर्देश उसे पालन ही करने चाहिये–चाहे अनुचित ही प्रतीत होते हो या उचित। तुम्हारे स्थान पर यह निषेध नही है। जब तुम्हारी उच्चस्थ उपलब्धियाँ प्रत्यक्ष होगी–लोग तुम्हारी आज्ञा का पालन करने को विवश हो जायेंगे। तुम्हारा हृदय इसे अपने ढंग से अधिग्रहीत करेगा। सत्संगी तुम्हारे द्वारा संस्थापित विचार (मत) के अनुसार क्रियाशील होंगे।

इसके उपरान्त लालाजी ने मुझे कानपुर जाने को मना कर दिया। यदि किसी प्रकार जाना भी पड़े तो–कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के पास न जाने हेतु अवगत कराया गया मुझे बताया गया कि मै इच्छा हीन(निरीह) हो गया हूं। शब्दों का उच्चारण सर्वथा सुरक्षित ढंग से किया जाय क्योंकि मेरे सभी बन्धन टूट चुके है अतः दूसरे लोगों से सावधानीपूर्वक सम्पर्क किया जाना चाहिए। मुझे सचेत किया गय कि प्राणाहुति पूरे वेग से न दी जाय। मुझे सुझाव (सम्मति) दिया गया कि मुझे ऐसे स्वभाव का विकास कर लेना चाहिये कि न तो स्तुति सुनने पर हर्ष हो न निन्दा सुनने पर क्षोभ।

१८–५–४४

लालाजी ने कहा कि मुझे एक संगठन बनाना है–और मेरे विचार उन्हीं से अनुप्राणित रहेंगे। मुझे सम्मति दी गयी कि विनम्रता की प्रवृत्ति प्रत्येक अवस्था में बनाई रखी जानी चाहिए। और किसी मूल्य पर भी सहज इस भाव दशा से दूर नही होना चाहिए। उसी समय मुझे यह भी बताया गया कि मुझे शानदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिये और मुझे अत्यधिक दयालुता की आदत छोड़ देनी चाहिए। और मुझे कठोर हो जाना चाहिये—मुझे उनकी इच्छानुसार करना चाहिये।

लालाजी ने बताया कि वह (अ) को अपने पुत्र जैसा मानते हैं। और यह भी बताया कि वह ('अ') निश्चय ही साहस प्राप्त करेगा यदि उसने उस विचार से कार्य किया। शेर का बच्चा–केवल शेर के गुण प्राप्त करेगा।" जिसको मैंने अपना

पुत्र समझा है—वह भी शेर है । शेष बच्चे अभी बच्चे ही हैं । एक प्रश्न के उत्तर में कि किस प्रकार एक शिष्य अपने गुरु से अनन्त प्रेम कर सकता है—लालाजी ने कहा कि गुरु का ध्यान करने से ।

१६–५–१६४४

मुझे कहा गया कि उस स्थान के कार्य उसी दिन सम्पन्न कर लेना हैं । और इसके बाद अन्य कार्य लेने है । लालाजी ने कहा कि उन्हें शाँति मिलेगी यदि मै 'अ' को विशेष उपलब्धियाँ देने के लिए उन पर ध्यान करने का उत्तरदायित्व सम्हाल लूं मुझे अभ्यासियों को उच्चतम उपलब्धियाँ देने में जल्दबाजी करने से सचेत कर दिया गया । मुझे देख लेना चाहिए कि प्रदान की गई दशा भलीभाँति घुल मिल गई है? लालाजी ने बताया कि उन्होंने मुझे एक पक्ष में ही पूर्णत्व प्रदान कर–दिया था, जब मैने अवकाश लेकर एक पक्ष तक उनके साथ बिताया था । उन्होंने मुझे इसीलिए बुलाया था यदि इस प्रकरण में उन्होंने लिखा होता तो इससे–प्रचार की सम्भावना रहती । यदि मुझे उच्च योग्यता का कोई व्यक्ति मिले तो उससे सीधा सम्पर्क स्थापित कर लेना चाहिये ।

एक प्रश्न के उत्तर में लालाजी ने कहा, कि जिस दिव्य उपहार में पूर्ण शक्ति दे दी जाती है उसकी जैसी सामर्थ्य किसी शक्ति में नही होती । उन्होंने मुझे अमूर्त वस्तुओं पर स्वामित्व दे दिया । यह आज की तैयारी रही । मुझे कार्य पूरा करना ही चाहिए । और क्या देने के लिए अवशेष है–लालाजी ने कहा मैं यही सोच रहा हूं । जो लोग विश्वास विकसित करना चाहते हों–उन्हें तुमसे सीखना चाहिए । इन निर्देशों का अनुसरण किया जाय:—

१– जलमुर्गावी की भाँति अपनी जीवन पद्धति बना लें । जब यह जल से बाहर आती है–इसके पर सूखे होते हैं ।

२–सत्संगी बन्धुओं के प्रति प्रेम भाव विकसित करना है और दैनन्दिन विचार वार्ता और कार्य में मृदुता (मिठास) एवम् स्पष्टता होनी चाहिए ।

३–शत्रु एवं मित्र में समभाव रखना चाहिए अर्थात् दोनों की भलाई की कामना हो ।

मैने यह भी पूंछा कि जब तक आप मुझे शक्ति नही देते तब तक मै कैसे आपका अनुसरण कर सकता हूं ।

२१–५–४४

लालाजी ने मुझे सलाह दी कि सितम्बर के आगे मै अवकाश न बढ़ाऊं । उन्होंने कहा कि मै उनके मधुर हृदय के रुप में रहा–आत्मा के रुप में, और मेरी प्रत्येक क्रियाविधि उन्हें पसन्द रही—और इसीलिए मेरी प्रार्थना अस्वीकार्य नही

रही। न ही वे मेरी कठिनाई अथवा कष्ट देख सकते थे। मेरे दुख दर्द देखकर उन्हें अत्यधिक निराशा होती थी। उन्होंने कहा–"कि तुम्हें अपना जीवन मेरी भाँति मोड़ लेना चाहिये। जब तुम गुस्सा हो तो कभी अपने मन में निराशा हताशा को प्रवेश न होने देना। डरना नहीं। चाहे कोई हजारों अभिशाप दे डाले, सदैव सहन करते जाना। प्रत्येक परिस्थिति में सदैव मै तुम्हारे साथ हूं। सताये हुये की रक्षा करना कर्तव्य है।"

२२–५–४४

लालाजी ने कहा कि मै जो उष्णता और चुभन अपने शरीर में अनुभव कर रहा हूं उसे तुरन्त बाहर निकाल फेंकना चाहिये। और यह भी बताया कि किंचित् कष्ट सहन करने के लिये मुझे तैयार हो जाना चाहिये।

"शुद्धता का ख्याल (ध्यान) रखा जाय। रात को कम खाना–लेकिन यह सुनिश्चिन कर लेना कि रात को भूखा न रहना पड़े।" यह सभी निर्देश तुम्हारी भलाई के लिए हैं। मेरी आशायें पूरी हो गईं। तुम अत्यन्त सौभाग्य वान हो तुम्हारे पार्श्वासीन हुआ मैं सब कुछ करता रहूंगा। तुमने मेरी ऐसी सेवा की है जैसी कोई अन्य नहीं कर पाया - प्रत्येक कार्य सम्पन्न करने हेतु तुम उपस्थित रहे।

"अनेकों गुरुजन तुमसे स्नेह रखते है। उनकी कृपा तुम्हारे साथ है। वे तुम्हें पर्याप्त दे भी चुके है–और कहीं अधिक आगे देने को तत्पर हैं। वे जो कुछ भी दें– उसे पूर्णरीत्या (भलीभाँति) अधिग्रहीत करना। उन्हे मिलो। अगस्त में स्वत: ही अवसर उपलब्ध होना श्रेयष्कर होगा। तुम्हें यहाँ अनेकों कार्य करने हैं। और नियत समयावधि में तुम्हारी स्थिति प्रकट होगी। शाहजहाँपुर केन्द्र होगा–और सभी लोग इसी स्थान से प्रकाश (तेज) प्राप्त करेंगे। मै अपने से अधिक तुम्हें उजागर करना चाहूंगा। सभी कठिनाइयाँ समाप्त होंगी। तुम सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त हो चुके हो। मै स्वयं तुम्हारे भीतर स्पन्दित हो उठा हूं। अब तुम में कोई कमी नहीं है।"

श्रद्धेय खलीफा साहब आये और बताया कि उन्होंने मुझे पूर्ण कर दिया है। और यह कहा कि मुझे अपने गुरु का नाम और प्रसिद्धि (ख्याति) दूर–दूर तक फैलाना चाहिये।

प्रश्न—(बाबूजी द्वारा) एक नये अभ्यासी को कैसे प्राणाहुति दी जाय ?
उत्तर—धार को हल्का (सूक्ष्म) कर लो। और हृदय में एक बिन्दु निर्दिष्ट कर लो जिससे सागर की समग्र तरंगें उसमें न बहने लगे। धार को उन्नति के स्तर के अनुसार प्रखर (प्रगाढ़) किया जा सकता है।

प्रश्न–जब तक कि इसकी अनुभूति नहीं हो जाती क्या इसे जाना जा सकता है?

उत्तर–अनुभव सभी कुछ सिखा देता है। मैंने तुम्हें अपने सभी अनुभव दे दिये हैं। केवल उनका प्राकट्य होना बाकी है। मेरे शुभाशिष तुम्हारे लिए हैं, सदैव रहेंगे। मैंने तुम्हे देने में कुछ भी कमी नहीं छोड़ी।

"सभी सन्तों का ध्यान केवल तुम्हारी ओर है, आज मैंने तुम्हें उस अवस्था में सोता लगवाया है कि जिसे महान लोग भी नहीं पा सके। मैं तुम्हारी किंचित मात्र भी कमी देखना स्वीकार नहीं करूंगा। आज तुम काल–चक्र को उत्प्रेरित (क्रिया-शील) कर सकते हो। इसका स्वरुप वृत्ताकार–एवं श्याम वर्ण है। आज ही यह कार्य सम्पन्न करना है। सुदर्शन चक्र का कार्य सम्पन्न हो चुका है।"

सायंकाल लालाजी ने संकेत दिया कि सभी सन्तों के समस्त–गुण मुझमें (बाबूजी में) विद्यमान है।

२६–५–४४

जब कार्य सम्पन्न हो जाये तो लालाजी ने निर्देश दिये कि मुझे अपनी पूर्वावस्था में आ जाना चाहिये। मुझे यह भी अवगत कराया गया कि यथा निर्दिष्ट वांछित–शक्ति–सामर्थ्य का अधिभार मुझे मिल चुका है।

२७–५–४४

मेरे स्वभाव में कुछ कठोरता रही–और विचार उसी दिशा में निरत रहा–इसलिये इसे नियंत्रित करने हेतु आदेश मिले जिससे कि विचार वहाँ न जाय। वह सम्पन्न कर लिया गया। अध्यात्म्य प्रशिक्षण का कार्य आरम्भ हो गया। चूंकि स्वभाव में अभी भी कठोरता विद्यमान थी अतएव मुझे कुछ कार्य न करते हुये सो जाने को कहा गया। यथानुसार मैं सोता रहा।

कल रात लगभग १-०० बजे कोई आया और मेरे तकिये की बायीं ओर कन्धे के पास बैठ गया फिर वह कुछ जल्दी में उठा और भाग गया मुझे डर लगने लगा और मैं यथा निर्दिष्ट पंक्तियां–गुनगुनाने लगा। लालाजी ने मुझे बताया कि वह एक तुच्छ व्यक्ति था। और यह भी कहा कि उससे समस्त शक्ति मुझे वापिस खींच लेना चाहिए और उस व्यक्ति को धक्का देकर दूर फेंक देना चाहिए।

३०–५–४४

लालाजी इस प्रकार बोले–"संगठन का आरम्भ करो–और लोगों को आकर्षित करो। लोगों को नैतिक एवम् आध्यात्मिक उन्नति देने का प्रयास करो। शस्त्रास्त्र में आकाशीय (ईथर की) शक्ति रहती है। काल चक्र शिव का विशिष्ट अस्त्र है।

गाँडीव धनुष में विचार–कण समाहित रहते हैं । ब्रह्म दण्ड जो ऋषि वशिष्ठ रखते थे—विचार शक्ति से सम्पृक्त रहता था । कुछ गुप्त भेद होते हैं जो विशेष व्यक्तियों द्वारा ही उद्घाटित किये जा सकते हैं ।"

"तुम्हारी ग्रंथियाँ खुलती रहेंगी और स्थिति स्वत: प्रकट होगी । आधार के परे मात्र संकल्पना ही रहती है और इसके उपरान्त संकल्पना भी तिरोभूत हो जाती है । इस दशा में लय होना जो तुम्हें प्रत्यक्ष कराया जा चुका है गुरु (पद) की दशा का आरम्भ है । इसके आगे—वका (परिपक्वता) की दशा है । जो तुम्हारे लिए पूर्वत: स्वीकृत है । इससे आगे भी–असंख्य चीजें हैं–तुम उससे आगे–सैर कर रहे हो । इससे आगे फिर कभी स्पष्ट किया जायेगा ।"

३१–५–४४

लालाजी ने मुझे बताया कि शुद्धीकरण (सफाई) प्रत्येक के लिए आवश्यक है । और यह भी अवगत कराया कि जो लोग मुझसे प्रशिक्षण आरम्भ करवा ले गये–उन्होंने स्थूलता उत्पन्न कर स्वयं को भ्रष्ट कर लिया । मुझे उनकी-सफाई के लिए कहा गया ।"

१–६–४४

लालाजी ने मुझे बताया कि जो बुरे प्रभाव मुझ पर पड़ते हैं–या पड़ने वाले होते हैं–उन्हें रात को सोते समय आप साफ (शुद्ध) कर दिया करते हैं ।

३–६–४४

लालाजी ने संगठन के सम्बन्ध में कुछ निर्देश दिये और प्रशिक्षक बनाने के निर्देश दिये । उन्होंने सम्मति प्रकट की कि प्रत्येक शहर में—(स्थान पर) कोई न कोई व्यक्ति सत्संग का–प्रभारी बनाया जाय ।

४–६–४४

लालाजी ने मुझे बताया मस्तिष्क में शुष्कता के कारण व्यक्ति हताश/निराश हो जाता है । और यह कहा कि दूध ऐसे मामले में लाभदायक होता है विचार शक्ति से भी इसे दूर किया जा सकता है । फिर उन्होंने उन परिस्थितियों से मुझे अवगत कराया कि जिस कारण उन्होंने अपनी शक्ति जब वे महाप्रयाण को जा रहे थे तो मुझे हस्तान्तरित की–और किस प्रकार अन्य लोग इसे–खींचना चाहते थे ।

दृश्यचित्र मेरे समक्ष हुआ:—कोई दीपक की छाया सूर्य पर अभिकेन्द्रित कर रहा है और उसको अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है । लेकिन सूरज ने दीपक की रोशनी को लय कर लिया–(अपने में समेट लिया) । और अपने साथ दीपक का प्रकाश भी लिये ओझल हो गया । मैंने–लालाजी महाराज को अपनी ओर आते देखा··· ···

५–६–४४

लालाजी ने बताया कि मेरी तकलीफ दूसरें लोंगों के संस्कारों के कारण है– जिन्हें मुझे भोगना ही है। उन्होंने मुझे अवगत कराया कि वे कभी मुझे छोड़कर नही जायेंगे–क्योंकि उन्होंने मेरी देह को–अपना निवास बना लिया है। मुझे सोचना चाहिए कि वह मेरे अन्तर में सदैव विद्यमान है—क्योंकि वह समग्रत: मुझमें लय हो चुके हैं। वे अहर्निशि मेरी रक्षा करते रहेंगे। एक प्रश्न पर उन्होने बताया कि सन्त भी जन्म लेते हैं और अवतार भी देह धारण करते हैं। वे मुझमें अपनी समस्त शक्तियों सहित लय हो चुके है–जो नियत समय में प्रकाशित होंगी। उन्होने मुझे अपनी तरह गाने के लिए सलाह दी जब भी कभी मेरी तकलीफ बढ़ जाय।

६–६–४४

लालाजी ने कहा कि–प्राणाहुति सभी रुकावटें दूर कर सकती है–और अवगत कराया कि मुझे कहीं सत्संग में जाने की आवश्यकता नही है। मुझे अपने ही स्थान से प्राणाहुति देना है। फिर उन्होने–कुछ भाइयों को प्रशिक्षक नियुक्त किये जाने हेतु अनुमति के संदर्भ में कतिपय निर्देश दिये।

कुछ प्रकरणों में मुझे दीक्षा सम्बन्ध भंग करने के भी आदेश मिले। मुझे आश्वस्त किया गया कि जिनको भी मैंने दीक्षित किया है—उनकी सारी जिम्मेदारी लालाजी अपने पर ले लेते हैं और इसलिए योग्य–व्यक्तियों को दीक्षित करने में मुझे भय नहीं होना चाहिए। फिर लालाजी ने शंका/सन्देह निवारण करते हुए–दीक्षाविधि के संबध में निर्देश दिये और कहा कि मेरा उतरदायित्व विस्तृत हो गया है।

८–६–४४

८-३० बजे मुझे अवगत कराया गया कि युद्ध के सन्दर्भ में मुझे सम्बद्ध रहना रहना है। और कार्य करने के लिये कुछ निर्देश दिए गये।

१०–६–४४

लालाजी ने बताया कि प्रत्येक बात का सत्यापन उनसे कराना आवश्यक नहीं है–क्योंकि मुझमें और उनमें किंचिन्मात्र भी विभेद नही रहा।

१६–६–४४

लालाजी ने कहा "जब कभी किसी में कोई कमी दूर करना हो तो या कोई दशा उत्पन्न करनी हो तो करने से पहले कभी इसे बताना नहीं चाहिये। इसको पहले से बता देने में मन की प्रतिक्रिया हो सकती है।

१७–६–४४

लाला ने मुझे समझाया "प्रेम के दो प्रकार हैं। ईश्वर से सीधा प्रेम एवम् माध्यम के द्वारा–मेरा उदाहरण माध्यम के द्वारा ईश्वर से प्रेम करने का है। केवल

माध्यम द्वारा ही पूरा लाभ मिल सकता है। तुम्हें लोगों की क्षमता के अनुसार विधि समझाना चाहिये।

२२-६-४४ (सायं)

सदगुरु महाराज लालाजी के निर्देश :–

"तुम्हारी हालत' कुतुबुल किताब' की है–यह सामान्य स्तर नहीं है। अनेकों कुतुब तुम्हारे निर्देशानुसार क्रियारत हैं। उन्हें केवल तुमसे ही आदेश मिलेंगे। वे साहसिक कार्य जो उनके द्वारा नहीं किए जा सकते–केवल तुम्हारे द्वारा ही सम्पन्न हो सकेंगे।

२३-६-४४

लालाजी ने कहा–"अतिशय विनम्रता (अबूदियत) जिसे तुमने ग्रहण कर लिया है–कुतुबुल किताब के आगे की स्थिति है। यह विनम्रता की दशा होने से कुछ साहस की कमी होगी। अन्ततः तुम्हें इस स्थिति तक पहुंचना ही है। तुम्हारे समान अन्य कोई मेरे लिए इतना अनावृत (विकसित) खुला हुआ नहीं है।

इतना साहस भी किसी में नहीं तुमसे अधिक मुझे कोई प्रेम नहीं करता। जब अहम् चेतना तिरोभूत हो जाती है तो कुतुबुल किताब की अवस्था उत्पन्न होती है। मैं उस कार्य का जो मुझे जो सौंपा जायेगा उत्तरदायी रहूंगा।"

मैंने उनसे प्रार्थना की–"जब मैंने स्वयं को आप पर छोड़ रखा है। अतः स्वाभिक ही सभी कार्य भी आपको सौंपे हुए ही हैं" "इस पर गुरू महाराज ने कहा–" "यदि ऐसा है तो विश्वस्त रहिए किन्तु विचार करने का कार्य तुम्हारा ही होगा क्योंकि तुम मेरे संयत्र बन गये हो। यह सभी के लिए लागू होता जिन्हें विश्वास है। यदि-विश्वास परिपूर्ण है तो कुछ भी करना शेष नहीं रहता। दूसरे शब्दों में-जब तक विश्वास अखंड/अटूट नहीं हो पाता—कोई न कोई कमी प्रत्येक में रहती है"

२८-६-४४ -: निर्देश :-

१–ऐसी बातें जिनसे दूसरे लोगों की भावनाओं को चोट पहुंचती हो–नहीं कहनी चाहिये।

२–दूसरों को अपने से छोटा या कम नहीं समझना चाहिये।

३–किसी को अपने से बड़ा या छोटा न समझना। हां-सांसारिक (लौकिक) व्यवहार बनाये रखना चाहिये।

३०-६-४४

लालाजी ने कहा "(मालिक) गुरू वह है जो आदर्श हो–जो उस आदर्श को दृढ़ता प्रदान करे वह गुरू का सहकारी - (शिष्य) है-(सत्संगी)। जिन्होंने कुतुब की स्थिति प्राप्त कर ली हो उनसे मिलकर सांसारिक कष्टों के प्रभाव

से अपने हृदय को सुरक्षित रखा जा सकता है ।" (PHILOSPHY)

१-७-४४

लालाजी ने मुझे दर्शम दर्शन लिखने हेतु आदेश दिये—जो कि मेरे मनस में स्पन्दित हो रहा था—उन्होने कहा—विचारों—आदर्शों को-बाद में व्यवस्थित किया जा सकता है । मैंने निवेदन किया कि ख्याल (Idea) को मैं विस्तृत नही कर पाता—इस पर उन्होने कहा—"तुम सुन्दर सुमुखर वाक्य लिख सकते हो–बना सकते हो । अभ्यास से तुम्हारी प्रतिभा विकसित होगी । क्या तुम्हें याद है जब कि तुम डायरी लिखते थे—तो पृष्ठ पर पृष्ठ लिखते चले जाते थे । लिखना आरम्भ कर दो "

'हृदय शून्यत्व' आत्मनिराकरण की दशा वह है कि विचार तो आते रहते हैं–लेकिन स्वयं के लय होने की दशा सदैव विद्यमान रहती है । विचारों में वैविध्य रहता है चाहे जो भी विचार हों । स्वयं के लय होने की दशा—विभिन्न प्रकार की होती है । प्रत्येक अवस्था में लय होना होता है । लेकिन प्रत्येक लयावस्था दूसरे से भिन्न रहती है ।—प्रथम लय अवस्था हृदय के शुद्धीकरण की है । इसमें कोई भारीपन नहीं । जब भाव संवेग शुद्ध हो जायेंगे—विवेक शक्ति का विकास होगा । मन को दुराग्रही समझा जाता है । मस्तक की ओर संकेत करते हुए–यह विचारों का भण्डारागार है । इसे त्रिकुटी कहते हैं । इसे त्रिदलीय कमल अथवा आज्ञा चक्र भी कहा जाता है ।

२–७–४४

लालाजी ने कहा कि उनका समग्र व्यक्तित्व मुझमें विलय हो चुका है अतएव समय रहते उनके और मेरे व्यवहार की समानता विकसित होती रहेगी । बहुत संख्या में लोग मेरी ओर झुकेंगे और पर्याप्त लम्बे समय तक मेरा जीवन संसार के लिए विचारणीय विषय रहेगा ।

३–७–४४

लालाजी ने अपने सम्बन्ध में बताया कि कुछ लोग उनके चित्र की पूजा करना आरम्भ कर दिये हैं ।

४–७–४४

लालाजी ने मुझे अभ्यासी की क्षमता बढ़ाने के लिए निर्देश दिये । क्योंकि उतनी सफाई से जिससे मैं उन्हें अग्रसर करना चाहता हूं–वे ग्रहण नही कर पाते हैं ।

५–७–४४

लालाजी ने कहा कि वे सदैव मेरे पार्श्वासीन रहेंगे–और इसलिए मुझे साहस नहीं छोड़ना चाहिए । उन्होंने मुझे कुछ व्यक्तियों के लिए प्राणाहुति देने से रोक देने

को कहा ।

८–७–४४

लालाजी ने मुझे कुछ अभ्यासियों के लिए व्यक्तिगत उपवेशन (Individual sitting) देने हेतु निर्देशित किया । और अभ्यासी की अनुपस्थिति में भी प्राणाहुति देते—रहने हेतु कहा मैं लगभग मूर्छित होने वाला था कि जब मुझे उन्होंने बताया कि–उनके निष्ठावान–भक्तों के सहित बहुतेरे ऐसे अभ्यासी है जो—सोचते हैं कि उनका उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रहा ।

९–७–४४

आज एक अमुक बन्धु 'अ' को गुरु महाराज की आड़ानुसार प्रशिक्षक के रूप में कार्य करने हेतु–अस्थायी अनुमति प्रदान की गई ।

१०–७–४४

पूज्य लालाजी ने मुझे नित्य टहलने जाने का निर्देश दिया । अच्छी पुस्तकें पढ़ने, ग्रहकार्य में रुचि लेने आदि के सम्बन्ध में निर्देश दिये—क्योंकि मुझ पर बहुत अधिक बोझा है ।

यह पूंछने पर कि क्या मैं समाचार पत्र पढ़ सकता हूं—गुरु महाराज ने कहा–निश्चय ही लेकिन अन्य लोग जिस प्रकार पढ़ते हैं—उस प्रकार नहीं । समाचार–तुम्हारे साथ पूर्वत: रहता है–तुम जब कभी चाहो—कोई भी समाचार मालुम करो–सकते हो । तुम्हें समाचार पत्रों में उतनी स्पष्ट जानकारी नहीं मिल सकती जितनी मुझसे ।—लेकिन ऐसा कोई—प्रतिबन्ध नहीं—तुम उन्हें किसी प्रकार का प्रभाव ग्रहण किये बिना मनोरंजन के दृष्टि कोण से पढ़ सकते हो । अगर कोई आलोचक बनना चाहे—तो समाचार पत्र पढ़े । यह तुम्हारा कार्य नहीं है । और न ही तुम्हारा आगमन इसके लिए हुआ है—किसी विशिष्ट वस्तु में अभिरूय (लगाव) रखना–आध्यात्मिकता के लिए हानि कर है ।

तदुपरान्त गुरु महाराज ने कतिपय अभ्यासियों के सम्बन्ध में टिप्पणी—आख्या प्रस्तुत की ।

११–७–१९४४

पूज्य गुरुजी ने कहा कि उन्हें सत्संग में—वहुलतया निष्प्रायोज्य, केवल संख्या बढ़ाने वाले लोगों की आवश्यकता नहीं है ।—मैंने निवेदन किया जिन्हें कार्य करने की अनुमति दी गई है—उन्हें अनुमति यह सब जाने विना ही दी गई उन्हें इस भाँति अन्त: जागरित (प्रकाशित) किया जाना चाहिए कि वे गलती की पुनरावृत्ति न करें—इस पर लालाजी ने कहा—"चूंकि प्रशिक्षक आग्रहवश–गलतियाँ करते रहते हैं—अतएव उन्हें सत्संग आरम्भ करने की अनुमति देने से पहले मुझसे सम्मति ले ली जाया करे—" उन्होने यह भी कहा कुछ प्रशिक्षक तो अपना महत्व विस्तृत

करने के उद्देश्य को पकड़े रहे और कुछ अन्य तो नितान्त विमूढ़ता से कार्य करने लगे उन्होंने इस सम्बन्ध में उन सभी को सचेत करने के लिए मुझे निर्देशित किया—और सभी को यह अवगत करा देना चाहा कि उन्हें (लालाजी को) इससे अप्रसन्नता होगी।

वास्तविक प्रेम की अभिव्यक्ति देते हुए गुरू महाराज ने कहा कि इस स्थिति में—न तो यह अनुभूति होनी चाहिए कि उसे कोई प्रेम कर रहा है और न ही यह कि वह उसे (मालिक–गुरु को) प्रेम कर रहा है।

लालाजी ने कहा "यह चीज—ऐसी परम अवस्था–केवल एक में ही—उत्पन्न होती है। जिसमें यह दशा उत्पन्न हो जाती है–वह परमशाश्वत अन्तिम निर्णीत अवस्था में—प्रथम संकल्प में ही सम्बद्ध हो जाता है—ऐसे उदाहरण संसार में गिने चुने ही है–।

१२–७–४४

अब तक मेरा विचार सत्संगी भाइयों की सहायता करने में निरत रहा–न कि उनसे किसी सहायता की अपेक्षा थी—भविष्य के सम्बन्ध में केवल ईश्वर ही जानता है।

एक प्रश्न के उत्तर में लालाजी ने कहा—सदैव शिष्य की योग्यता/क्षमता ही गुरु को—आकर्षित करती है।-और ऐसी क्षमता उसको ही मिलती है जो पूर्वत अनेकों स्थितियाँ पार किए होता है।–ऐसी अवस्था में चाहते हुए भी गुरु दूसरे को आत्मिक उन्नति उसे पृथक (विलग) रखते हुए नहीं दे सकता—यह ईश्वरीय उपहार है। हमारा इस पर कोई नियंत्रण नहीं"

जब मैंने गुरुजी महाराज को निवेदन किया मैं अत्यन्त सौभाग्यवान रहा कि आप जैसे गुरु को पाया–तो उन्होंने कहा—"नहीं—ऐसा नहीं है।–मैं सौभाग्यवान हूं—यदि किसी--पिता की सन्तानें श्रेष्ठ हैं-तो–पिताको सौभाग्यवान कहा जायेगा"

अमुक श्री··· ···को जिस क्षेत्र में प्रवेश दिया गया है उसे पार कराने का समय अभी दूर है। इसमें भी कोई प्रयोजन (उद्देश्य) निहित है। वह इस दशा में कुछ आनन्द उठायेंगे··· ···। फिर उन्हें आगे अग्रसर होने को प्रकाश मिलेगा। जिस क्षेत्र में वह इस समय है--वह साधारण नहीं है। यदि उसकी सभी दशायें अनावृत्त कर दी जाती हैं--और उसकी यात्रा पूरी करा दी जाती है तो भविष्य की अनेकों जटिलताएं सहज हो जायेंगी। मैंने तुम्हें पर्याप्त समय तक रोका–इसीलिये तुम्हें प्रत्येक दशा पर स्वामित्व प्राप्त है। निस्संदेह--यह सत्य है कि इस स्तर का स्वामित्व

जितनी जल्दी तुमने अर्जित किया है--कोई दूसरा नहीं कर सकता । यह क्षेत्र ऐसा है कि अनेकों सन्त इसे पार नही कर पाये--फिर भी उन्हें पूर्णत्व प्राप्त समझा गया । इसे पार करने के उपरान्त सूक्ष्यक्षता बढ़ जाती है । इसके आगे भी--अनेकों दशायें हैं । तुम्हारे समान--पूर्ण स्वामित्व और किसी को उपलब्ध नहीं ।''

१३-७-४४

लालाजी के निर्देश--एक विचार (मास्टर-गुरु का) अधिग्रहीत कर लेना चाहिये-और उसे दृढ़ रखना चाहिये—मूर्खता पूर्ण वाद-विवाद से दूर रहना चाहिये । उपन्यास पढ़ना छोड़ देना चाहिये । हृदय को पार्थिव प्रेम में भ्रष्ट नहीं करना चाहिये । मित्रता का विचार-त्याग देना चाहिये । केवल ईश्वर को ही मित्र समझना चाहिये । ईश्वरीय—प्रेम से अभिसिक्त धार्मिक पुस्तकें पढ़ी जा सकती हैं ।—सूक्ष्म दर्शन का अनुसरण करना आवश्यक नहीं । व्यवहार में परस्पर बन्धुत्व, सहानुभूति, एवम् दूसरे की विपत्ति के समय सहायता करना आदि समावेशित होना चाहिये ।—प्रसन्नतापरक भाववृत्ति इस प्रणाली का मूल सारतत्व है । प्रत्येक को संगठन के नियम—उपनियम अनिवार्यत: पालन करने चाहिये । वाह्य नियम भी यथा—प्रात: काल जल्दी उठना, ध्यान का अभ्यास करना, गृहकार्य स्वच्छता/स्पष्टता से करना—आदि—प्रत्येक को कर्तव्य रुप में पालन करने चाहिये ।''

१४-७-१९४४

कुछ घटनाओं पर—टिप्पणी करते हुए लालाजी ने कहा—सभी घटनायें मेरी आँखों के सामने हैं ।-मैं केवल एक लम्बा रस्सा (आश्रय) दे रहा हूं अमुक श्री···को लिखो कि उन्होंने अभी सूरज नही देखा है । उनकी आँखे चौधियाँ जायेंगी जब वे उसे देखेंगे । लोगों की भद्दी बातें मेरे लिये (असहनीय) असंतोषप्रद होंगी—तुमने अपने को ऐसा बना लिया कि तुम्हारी रोम-रोम रग-रग मेरे समैक्य में है । मैं तुम्हारा असम्मान सहन नही कर सकता । तुम्हे—सचेत (सावधान) हो जाना चाहिये ।—तुम्हे अपना दृष्टिकोण बदलना होगा ।

तीसरे पहर मैं लेटा ही था कि थकावट के कारण नींद आ गई—और मैंने एक स्वप्न देखा—एक व्यक्ति आया और मेरे सिर के पास बैठ गया । फिर उसने एक चाकू लिया और भेरे सिर के बालों के दोनों ओर घुमाया । वह मुझे घायल करना चाहता था किन्तु चाकू ही नही घुस पा रहा था । तब उसने मेरी गर्दन पर चाकू रखते हुए घोंपना चाहा । मै—उठा और एक ही धक्के से उसे फर्श पर गिरा दिया । और वही चाकू उसकी गर्दन पर रखा । तब वह मेरी चाटुकारो करते हुए बोला कि उसने दूसरे व्यक्ति के धोखे में जिसे वह मारना चाहता था मुझे गलती से

समझ लिया—मैने उसका नाम पूंछा—और शायद नाम उसने अपनी मौत के डर से बताया भी। — लेकिन तुरन्त मेरी आँखे खुल गईं।

सायंकाल लाला जी ने मुझे आदेश दिये कि उस व्यक्ति से दूसरे को हानि पहुंचाने की शक्ति वापस ले लो। –शक्ति वापस ले ली गई–तब लाला जी ने कहा "अमुक श्री·····को भी जिन्हें नष्ट होना है उनमें सम्मिलित कर लिया जाये। यदि तुम्हें कोई अप्रसन्नता हो।" मैंने निवेदन किया कि मेरी ऐसी चाह नहीं। लेकिन यदि आपका आदेश मिले तो दूसरी बात।

जब मैंने नियत कार्य सम्पन्न कर लिया गुरू महाराज ने कहा—यह शक्तियां उसे ही प्रदान की जाती हैं—जो शान्ति समन्वित स्वभाव का होता है। तुमने अपना स्वभाव मेरी भांति बना लिया है। यदि किसी अन्य को यह शक्तियां मिलती तो वह प्रलय कर डालता–और मुझे उस पर प्रतिबन्ध लगाना होता। मैंने निवेदन किया– मेरी भाववृत्ति निश्चय ही आपके समान है—लेकिन यदाकदा आक्रोश की तरंग उभर आती है। गुरू महाराज ने कहा—"यह पैतृक प्रभाव है।"

१५–७–१९४४

पूज्य लाला जी ने निर्देशित किया कि अनुपयोगी व्यक्ति सत्संग में न सम्मिलित किये जायें। –यह उस कार्य के दृष्टिकोण से है–जो मेरे समक्ष है। मुझे अपने स्वास्थ्य की उचित देखभाल औषधोपचार से करनी चाहिये। और–स्वास्थ्यवर्धक अभ्यास क्रिया भी करनी चाहिये—यदि सुबह न हो सके तो सायंकाल टहलने जाने की सम्मति मुझे दी गई। मुझे लताड़ भी खानी पड़ी कि बिना कुछ किये हुये समय नहीं नष्ट करना चाहिये–और–पुस्तकों का अध्ययन कर ज्ञान बढ़ाना चाहिये।

मैंने निवेदन किया—मेरा स्वास्थ्य और एक अंश में मेरी शिथिलता मुझे कार्य निरत नहीं होने देते।—इस सन्दर्भ में मेरी ही गलती है। पूज्य लाला जी ने कहा– यह मेरी गलती है—तुम्हारी सभी गलतियां मेरी हैं—तुम्हारा स्वास्थ्य देखते हुये मुझे क्षोभ होता है। नियत समय पर भोजन और विश्राम किया करो। दूध तुम्हे लाभ पहुंचायेगा। दो बातें ध्यान में रखना हैं–एक तो अपना स्वास्थ्य दूसरे—अपना सम्मान। मैंने निवेदन किया कि आत्म सम्मान इसी में है कि जैसा स्वयं को पसन्द न हो वैसा व्यवहार दूसरे से न करें।

लाला जी ने कहा—यह बात बहुत प्राचीनकाल—सतयुग की है। अब इसकी दूसरी ही आख्या है—प्रत्येक को एक दूसरे से असम्बद्ध Reserved (सुरक्षित) रहना चाहिये–यथा निर्दिष्ट वार्तालाप करना चाहिये–अन्यथा नहीं। किसी के गुप्त भेद सर्व सामान्य के समक्ष नहीं खोलने चाहिये। स्वयम् को अशक्त नहीं समझना चाहिये। ऐसी कोई भी बात जिससे दूसरे अशिष्ट बनते हों कभी नहीं करनी चाहिये। आत्म सम्मान की परिभाषा में यह सब आ जाता है।

१६–७–१९४४

लाला जी—गुरू शिष्य के कारण शरीर को स्वयं में लय कर लेता है जब कारण शरीर गुरू में लय हो जाता है-संस्कार निर्माण बन्द हो जाता है। मेरी आँखों के समक्ष-दृश्य चित्र प्रत्यक्ष हुआ। पिण्ड का कारण ब्रह्मांड और इसका कारण परम ब्रह्माण्ड। परम ब्रह्माण्ड क्षेत्र में जो कुछ घटित होता है—वही ब्रह्माण्ड में अवतरित होता है। –और यहां से यह पिण्ड में उतर कर भोग का रूप ग्रहण कर लेता है। आशय यह है कि पिण्ड में जो भोग बना है उसका मूल परम ब्रह्माण्ड में हैं। यह नितान्त जटिल समस्या है। चूंकि आज तुम्हारा मस्तिष्क तुम्हारे नियंत्रण में नहीं है—अतः इसे फिर कभी जब तुम सहज होगे—विस्तृत किया जायेगा।

तुम्हें कुछ और व्यक्तियों के दीक्षा—सम्पर्क (Initiations) काटने—भंग करने होंगे–और तदनुसार घोषणा करनी होगी। —चाहें जिस स्तर के आध्यात्मिक संगठन से सम्बन्धित किसी भी व्यक्ति का दीक्षा सम्बन्ध तुम भंग कर सकते हो—लेकिन ऐसा नहीं करना चाहिये। यदि किसी के विषय में अच्छी बुरी जैसी भी बात कहोगे–उसका वैसा ही प्रभाव होगा। यदि कभी—अवसरवश ऐसा हो जाये तो उसे वापिस कर उसके प्रभाव को निष्क्रिय कर देना। —यह पद्धति प्रत्येक गलती या त्रुटि के सुधार हेतु उपयोग में ला सकते हो। यदि किसी पर कोई अभिशाप हो तो—दिव्य क्षेत्र में जाकर—प्रभाव को बाहर निकाल फेंकना–और निष्क्रिय कर देना–इस दिव्य क्षेत्र की तुलना में कुछ भी नहीं।

इस दिव्यता के क्षेत्र में पदार्पण करने वाले गिनती में बहुत कम है। तुम्हारी सैर–अनन्त दिव्यता के परे चल रही है। तुम्हारी स्पर्धा कोई नहीं कर सकता। मैं तुम्हें यह सब बातें इसी लिये बता रहा हूं कि तुम स्वयं को कमजोर न समझना।

अपने पूर्व जन्म में भी तुम्हें आध्यात्मिकता से गहरा लगाव था। तुम्हारी तड़प भी गहनतम तक–संव्याप्त रहती थी। तुम्हें कोई पथ प्रदर्शक नहीं मिला—तड़प के कारण तुम दबे से निराश रहने लगे। तुम्हारे कई बच्चे थे। और तुमने अपना जीवन अभावों में व्यतीत किया। तुम्हारी पत्नी–पवित्र और सरल स्वभाव की थी। मेरी आखों के समक्ष चित्र प्रत्यक्ष हुआ। जो कुछ भी परिलब्धियाँ तुम्हारे पास पूर्वजन्म से रहीं—अब भी विद्यमान हैं।

१७–४–१९४४

लाला जी—तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी को निज धाम (Point of kuds) से प्राणाहुति नहीं दी गई–तुम्हें भी मैंने यह एक स्वप्न में दिया। इसका कार्पण्य दोष मुझ पर होना—समीचीन नहीं क्योंकि कोई भी मुक्त मन मेरे पास–पहुंचा ही नहीं। तुम्हारे लिये मुझे दैवी आदेशानुसार करना पड़ा और—तुमने भी मुझे ऐसा करने हेतु विवश कर दिया। मैंने तुम्हें प्रत्येक वस्तु दे दी है। तुम्हारा भी यही विचार होना चाहिये कि यह सब लेने के लिये कोई उत्पन्न होना चाहिये।

यह मेरे स्वभाव का प्रभाव है जो तुममे अवतरित हुआ है—इसे ग्रहण करने वाले लोग संख्या में बहुत कम होंगे। इस अवस्था में कोई तभी पहुंच सकता है जब उसकी समस्त भावनायें (प्रज्ज्वलित—होकर) शांत हो जाएं—तुम्हारे भाव संवेग जन्मत: शान्त थे। रास्ता साफ था—लेकिन पैतृक प्रभाव शेष था—तुम्हे बचपन से ही इसके लिए तड़प थी। तुम्हारे पास अत्यधिक कोमलता (दयालुता) थी। इसे नियंत्रित करने का प्रयास करो। तुम्हारे स्वभाव में जल्दबाजी की प्रवृत्ति है। लोग इसे—सहन करने योग्य नहीं हो पायेंगे। अपनी क्षमता/योग्यता के अनुसार ही प्रत्येक को उपलब्धि होगी। शीघ्रता करने से—स्नायुमण्डल के छिन्न भिन्न हो जाने की सम्भावना है—मस्तिष्क में प्राणाहुति देते—समय विशेष सतर्कता की अपेक्षा है। शक्ति केवल उसी बिन्दु पर निरत की जानी चाहिये-जिसे तत्काल खोला जाना हो।

"चाटुकारी प्रभाव में नही पड़ना चाहिये। दुर्भाग्यवश ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो इस दोष से मुक्त हो—दूसरे की त्रुटि को देखने का आशय यह बनता है कि उसी दोष का बीज—स्वयं में भी निहित है। और जब इस संस्कार (बीज) पर परावर्तन होता है—तो दूसरे के दोष ज्ञान में आते हैं। इसका लक्षण यह है—कि उसे दूसरे का दोष देखते हुए तकलीफ होती है।—इसे शुद्धीकृत कर लेना चाहिये–और यदि दूसरों की कमी देखकर कोई कष्ट की अनुभूति नही होती तो-यह-अनुभव की-सौम्यता है।
१८-७-१९४४

लालाजी—(भौतिक) ऐन्द्रिक इच्छाओं का भण्डागार नाभि है—(मणिपूरक चक्र)। हमारी प्रणाली में इस बिन्दु पर बल नही दिया जाता। जिससे कि यह शक्ति बिखर कर नष्ट हो जाय।—जिसे इस बिन्दु पर स्वामित्व उपलब्ध हैं—और जिसने इसकी समुचित सफाई कर ली है—वह इसे अच्छे ढंग से अनावृत (प्रकाशित) कर सकता है।

भला और बुरा दो विरोधी भाव हैं। भलाई की पहचान बुराई के सापेक्ष ही हो सकती है। यह सब चीजें प्रकृति ने मानव के मनोरंजन के लिए उसे प्रदान कर रखी है। जो इसे ऐसा ही अनुभव करता है उसे निराशा से मुक्ति मिल जाती है।

दृश्यचित्र मेरी आँखों के समक्ष हुआ:—कि एक बड़ी चीज से भलाई और बुराई दो चीजें अवतरित हो रही हैं। और जब इन्हें उलट दिया जाता है तो-यह दोनों पुन: वापिस उद्गम स्रोत में समाविष्ट हो जाती है और दोनों का प्रभाव निष्क्रिय हो जाता है।

बायीं ओर बुराई/ऐन्द्रिकता दायीं ओर भलाई/ईश्वर स्मरण। जब मानव दिव्य (ईश्वरीय) स्मरण में निरत होता है। और जो धार दिव्य स्मरण की अवतरित हो रही है—उलट दी जाती है–और मूलोद्गम स्रोत तक पहुंच जाती है तो--ऐन्द्रिक चित्तवृत्ति (धार) के प्रवाह में भी दिव्य प्रभाव समावेशित होने लगता है। इस

स्वाभाविक प्रक्रिया से- ऐन्द्रिक चित्त वृत्ति (धार) भी शुद्ध हो जाती है- और इसकी तड़क भड़क चमक एवं तीव्रता समाप्त हो जाती है- ।

"हमारी प्रणाली में अनेकों प्रशिक्षक साधन- से सम्बन्धित बहुसंख्यक विधियां अपनाते हैं । वे उनकी मन: प्रसूतियाँ- (मानसिक क्रिया परिणाम) हैं । कोई भी उनका अभ्यास न करे । वह जो सब कुछ- समर्पित करते हुए अपने समर्थ सदगुरु में लय होता है-उच्चत्तम से दिशा निर्पेक्ष/प्रकाश-पाता है । और उसकी प्राविधि समीचीन होगी ।- अपनी मन: प्रसूति का अनुसरण-अभ्यास करने से-मानसिक शक्ति का ह्रास होता है । सामान्यतया एक बात- देखने में आती है कि यदि कोई व्यक्ति-कुछ अनुभव व्यक्त करता है - या कुछ वर्णन करता है तो ध्यान से सम्बन्धित कोई विधि सुविधानुसार अनुसरण करने की सम्मति भी देने लगता है । -ये विधियाँ एवं उपचार जो मूल स्रोत से नही अवतरित होते है-कभी उपयुक्त नही होते । ऐसा कभी अवश्य ही हो सकता है कि कुछ क्रिया परिणाम-उपलब्ध हो जाय-लेकिन यह भी दूसरी बात है । लोग सामान्यतया यह बातें अपना प्रभाव या महत्व--प्रदर्शित करने के लिए करते रहते हैं"

"तुम्हारा वैराग्य वास्तविक है - जहाँ कि तुम्हारे - मनस में कोई भी इच्छा का प्रादुर्भाव नही होता ।-दृश्य चित्र मनोपटल पर उभरा -"कुछ वस्तुयें- मूर्त (सजीव) यथास्थान रखी हुई हैं-और अर्धमृत अवस्था में प्रतीत होती हैं । उनमें स्पन्दन शक्ति का अभाव हो गया है । ऐसा उच्च स्तरीय वैराग्य हर किसी में नहीं उत्पन्न होता लेकिन कदापि इसका यह आशय नही कि कोई इसके लिये प्रयत्नशील न हो । तुम्हारे बचपन से ही यह चीज विद्यमान है । यह वह दशा है-जहाँ कि चित्तवृत्तियाँ शांत (उपरत) हो जाती है ।

१९–७–१९४४

लालाजी :—ब्राह्मण के रुप में भी जन्म लेना श्रेयस्कर नही । वह व्यक्ति जो ब्रह्मांड में ही परिभ्रमण करता रहे—और इस (ब्रह्मांड) मंडल से बाहर न पहुंच सके ब्राह्मण कहलाता है और इससे उच्चतर जिनकी पहुंच परम ब्रह्मांड तक होती है—महाब्राह्मण कहलाते हैं–जो इससे भी आगे पहुंच कर चारों वर्णों का परामर्शन कर—लेता है—इसे भी श्रेयष्कर उपलब्धि नहीं कहते । महाब्राह्मण का विचार–शक्ति पर पूर्ण नियंत्रण होता है । और रूढ़ियों से–प्रतिबद्ध नही होता–सम्पूर्ण दृश्यचित्र मेरी आँखों के समक्ष स्पष्ट हो उठा :–

इसके आगे सन्तपन की अवस्था आती है—उसमें शाश्वत–महाप्राण–पर्याप्त मात्रा में अन्त: प्रविष्ट हो चुका होता है ।—अव्यक्तगति भी–ठहरने वाली नही—और न ही इसे पर्याप्त समझा जाना चाहिये । दृश्यचित्र समक्षांकित हो गया । दृश्य-चित्र का अवलोकन करने पर ज्ञात हुआ—कि यह प्राथमिक अवस्था है–दृश्यचित्र को जब आगे अवलोकित किया–तो कोई ओर छोर नही मिला ।

मुझे आदेशित किया गया कि इसे उल्लेख कर लिया जाय ताकि आगे आने वाली

पीढ़ियाँ (सन्तति) गुरुमहाराज में मेरी लय अवस्था की पहुंच से अवगत हो जाय।

२१–७–१९४४

अवस्थायें–हृदय–(अन्तर्मन) की प्रथम अवस्था–सौम्य एवं निश्चिन्त चित्त वृत्ति का समुद्भव दूसरी अवस्था–स्थायी ठहराव (निवास)–यह सामान्य उपलब्धि नहीं। तीसरी अवस्था यह सब विस्मृत हो जाने अर्थात–समग्रतः लय हो जाने की होती है।

और तदुपरान्त यात्रा का पुनः प्रारम्भ होता है अनेकों रहस्य उद्घाटित होते हैं–यह अनुभूतियाँ वर्णनीय नहीं होती –अनुभव से सम्पृक्त रहती है। विचार के रुप में इनकी विद्यमानता आत्म यात्रा में नहीं होती। भाव संवेगात्मक उफान शान्त हो जाता है। सर्वतः सूक्ष्म प्रकार की दशा आच्छादित रहती है। संतुलन प्रिय स्थिति का विकास होने लगता है। चढ़ाव उतार ओझल हो जाते हैं—सरलता विकसित होती है। इसे कहाँ तक वर्णन करें–मुझे अवगत कराया गया कि मेरी कमजोरी अकारण नहीं है। मुझे कमजोर इसीलिए बनाया गया कि स्वास्थ्य की शक्ति कहीं मेरी उपलब्धि का अंग न समझी जाने लगे। मैं जन्मतः कमजोर हूं–हठयोगी के लिए शारीरिक शक्ति आवश्यक है। यह अभिप्रेक्षित किया गया कि मेरे अस्तित्व के सभी अवयव मूलस्रोत में समाहित–लय–हो गये हैं–और सदगति को को प्राप्त हो चुके हैं।

लालाजी महाराज ने एक निर्देशात्मक संकेत दिया कि लोगों को आध्यात्मिक प्रशिक्षण किस प्रकार दिया जाय–जब हमारे अन्तर्मन में स्वतः विवशता उत्पन्न हो और विचार इसकी पुनरावृत्ति करें—तो इसे दिव्य निर्देश समझना चाहिये। दूसरे जब तक कार्य सम्पन्न न हो चैन न आवे। अनुमति देने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये इस स्थिति को उपलब्ध हुये बिना तो कभी भी नहीं।

"हमारी बातचीत प्रेम से सम्पृक्त—सराबोर हो—केवल ईश्वर ही पूर्ण है, और त्रुटि विहीन है। दूसरे के दोष देखना एक कमी है जो बहुधा—कष्ट (अभाव) का कारण बनती है। इस आदत को तिलांजलि दे देनी चाहिये—क्योंकि आदत बन जाने पर कमी आ जाती है।"

२२–७–१९४४

लालाजी —"तुमने मुझे अपना प्रियतम (सर्वप्रिय) समझा और मुझे पूर्णतः समर्पित कर दिया। तुमने ऐसी कोई वस्तु नहीं रखी जो मुझे समर्पित न कर दी हो। तुमने—निर्धनता स्वीकार की—कठोर कष्टों को सहन करते हुए भी तुमने मुझे नहीं छोड़ा। तो मैं ऐसा हृदय कहां से लाऊं जो तुम्हारे लिए कठोरता ला सके। तुम्हें अपना सम्मान रखना ही होगा। अब तक मैंने ऐसा किसी को नहीं पाया जो मुझे सर्वप्रिय मान सका हो। मुझे सदैव यह चिन्ता रही है कि और अधिक क्या तुम्हें दिया जा सकता है। चौबीस घण्टों में तुमने कभी मेरी स्मृति को नहीं छोड़ा। परिणामतः उसी भांति मैंने भी तुम्हें याद रखा। और वर्षों तक यही चलता रहा।

तुम्हें अपनी उत्कट आकांक्षा के अनुसार सबको यह विधि अभ्यास के लिए प्रकाशित कर देना चाहिए–ताकि सभी को यथानुसार यह लाभ मिल सके। लेकिन सभी लोग इस योग्य नहीं हो पायेंगे।"

२४–७–१९४४

लालाजी:—"जिस व्यक्ति को शक्ति प्रदान की जाय-उससे पहली चीज उसका गुस्सा (क्रोध) समाप्त करा दिया जाय। मैं दुर्वासा उत्पन्न करने के पक्ष में नहीं—मैंने तुम्हें इसीलिये उस अवस्था में नही पहुंचने दिया—क्योंकि मुझे तुमसे कार्य लेना था। तुम्हारी मनोवृत्तियाँ–प्रसुप्त हो चुकी हैं। तुम ईश्वरप्रदत पदार्थ को जो तुम्हारे अन्दर संव्याप्त है–शांत कर रहे हो। अज्ञानत: तुम इसे विगत बारह वर्षों से अभ्यास में ला रहे हो। वस्तुत: तुम्हारी देह के सभी अवयव परमाणु—प्रकाशित हो चुके हैं। लेकिन इस दशा को आगे विकसित करने से मेरा उद्देश्य सिद्ध नही हो पायेगा।

मैंने प्रार्थना की "क्या उद्देश्य सिद्ध नही होता ? गुरु यहाराज ने कहा—"ईश्वर कोई कार्य नही करता–यदि तुम अपने अणु–परमाणुओं को और अधिक प्रसुप्त कर दोगे—तो समान अवस्था तुम्हें भी–अभिभूत कर लेगी। और मैं चाहता हूं कि तुम्हारी यह अवस्था भौतिक पुद्गल के तिरोधान के बाद ही हो। यद्यपि कि तुम यथापूर्वत: मृत हो चुके हो। केवल तुम्हारा वाह्य स्वरुप ही इस भौतिक जगत में विद्यमान है। ऐसा कोई समान उदाहरण नहीं। ध्यान रखना—ऐसी अवस्था के लिए किसी–अन्य व्यक्ति को मत अभिप्रेरित करना मैंने भी दशा में आवश्यकता–नुसार ही निवास किया, जबकि तुम सीमा पार कर गये। मैं अन्य कुछ नही कहना चाहता। तुम उन्नति के चरम विन्दु पर पहुंच गये हो। लेकिन वहां भी तुम चैन से नही हो, ईश्वर तुम्हें आशिष देवे।"

२५–७–१९४४

लालाजी ने इसे संपुष्ट किया कि यदि पूर्णतया ब्रह्मलीन सदगुरु मिल जाता है तो उसकी शक्ल पर ध्यान करने से लाभकारी प्रभाव होता है उन्होने मेरे परिवार सम्बन्धी कुछ बातें भी उद्घाटित की।··· ··· ···

२६–७–१९४४

जो—भी योग्य—सक्षम होता है वही लाभान्वित होता है। एक सत्संगी (अभ्यासी) को योग्य–सद्प्रवत्तिवान एवम् सहजत: अग्रसर स्वभाव का होना चाहिये। लेकिन इसका यह आशय नहीं कि ब्रह्म विद्या प्राप्त करने के लिये – वह योग्य व्यक्ति है। जो एतदर्थ योग्य होता है—उसमें—जिसे तुमने–विस्तार कहा है–उस प्रकार की दशा विद्यमान होती है। यह अभिप्रसार—(आत्माभिप्रसार) विभिन्न दशाओं का होता है। यह मेरा अनुभव है। कठिन परिश्रम से कार्य करके संस्कार भी बदले जा सकते हैं।

"वेदपशु भी मूढ़ श्रेणी में आते हैं । गुरू–पशु वे हैं—जो अयोग्य गुरू को ईश्वर के रूप में समझते हैं । यद्यपि गुरू स्वयम् को ऐसा कभी नही समझता—त्रिया पशु वह है—जो मन के अधीन है । और यह उदाहरण बहुलतया देखे जाते हैं–नर–पशु वे हैं जो—स्थूल अहम्भाव से भरे पड़े हैं ।

पशुओं की एक अन्य श्रेणी भी है—यह उन लोगों की है जो कभी उस अवस्था को जिसमें उन्हें—निवास मिला है—छोड़ना नहीं चाहते । उपरिवर्णित श्रेणियों के अतिरिक्त भी अनेकों श्रेणियाँ हैं ।

जब विचारों कीं विकृत्ति–धूलि–धुल जाती है—तो शुद्ध अवस्था की संव्याप्ति होने पर ही पाशविकता समाप्त होती है ।

"अब, तुम्हें अपना—मैदान (कार्यक्षेत्र) प्रांगण–पृथक करना होगा । कोई भी मेरे भार का सहभागी नहीं हो रहा । --मेरी कृपा—केवल तुम्हारे—लिये—या जो तुमसे सम्बद्ध होंगे—उनके लिये ही होगी ।

लाला जी ने दुख प्रकट किया—जो स्थिति सत्संग में प्रचलित है—उससे मुझे सीख लेने हेतु निर्देशित किया जिससे कि मैं वे गलतियां न करूं । उन्होंने मुझे सचेत किया कि—प्रशिक्षक बनाने से पहले उन्हें सूचित किया जाया करे । —तुम्हें गिनती बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है—लेकिन यदि कोई—योग्य व्यक्ति आता है तो उसे-(मना नहीं करना चाहिये ।)—मना करने की भी आवश्यकता नहीं—"
२७-७-१९४४

लाला जी ने हमारे सतसंगी भाइयों के सम्बन्ध में अपने भाव विचार यह कहकर प्रकट किये कि यदि कोई भौतिकता में अत्यधिक आसक्त हो उठा—तो अन्य स्थूल एवम् निरूपयुक्त रहे । कुछ भले (श्रेष्ठ) सत्संगी भी हैं—फिर उन्होंने इन शब्दों में आशीर्वचन कहें—

"सम्पन्नता सदैव तुम्हारे साथ होगी—मैं समझता हूं कि जो कुछ भी तुमने मेरे लिये किया-उसके प्रति दान योग्य मैं कभी नहीं हो पाऊंगा । किसी को भी अपनी भांति न बनाना क्योंकि तब तो उसे जीवन भर चिन्तातुर रहना--होगा । "तुमने अपने लिये-मेरे प्रेम की मांग भी नहीं की । जिसके कि लोग सदैव पीछे पड़े रहते हैं । --मैं समझता हूं कि--गुरू प्रेम की मांग करना--नीति व्यवहार के गहरे विरोध में है ।" --(अशिष्ट व्यवहार है)

[गुरू प्रेम की याचना एक अशिष्ट व्यवहार है] लाला जी–

मेरी दशा से लाला जी प्रसन्न थे । उन्होंने कहा "मेरी प्रशंसा हो रही है कि मेंने तुम्हें पूर्णरीत्या सद्गुरू में ढाल दिया है । मुझे क्षोभ मात्र यही है-कि लोग-तुम्हें समझ पाने योग्य नहीं हो पायेंगे । तुम्हारी दशा-केवल मुझे ही मालूम है । यदि

तुम्हारी दशा व्यक्त करनी होती तो मैं इस प्रकार लिखता कि–"अत्युच्च अवस्था/क्षमता के सन्त भी–तुम्हारी निम्नस्थ दशा के ही बराबर हो पायेंगे।" इस समस्त विश्व के तुम समग्र स्वामी बनाये गये हो। जो भी घटित होता है, तुम्हारे माध्यम से ही घटित होता है। और दिव्य प्रकाश प्राप्त करने वाले तुम पहले होगे–लेकिन यह अन्त नहीं है। - यह अभी दूर है–तुम्हारा शासन स्वामित्व दूसरे (इतर) लोकों को भी फैलेगा–अब और अधिक क्या लिखाऊं ? –मैं चाहता हूं कि तुम्हारी प्रशंसा में मुझे जो कुछ भी ज्ञात है–सभी कह डालूं ? इस विषय में मैं पुनः लिखाऊंगा--जबकि यथानुरूप तुम उसी दशा में होंगे। इसके लिये नींव दृढ़ हो गई है।"

लाला जी ने मुझे निम्नस्थ क्षेत्रों में उतरने की आदत--प्रवृत्ति विकसित करने हेतु सम्मति दी--अन्यथा मैं अध्यात्म प्रशिक्षण देने योग्य नहीं हो पाऊंगा--उन्होंने संकेत दिया कि जब विचार स्थिर भाव में शान्त होता है--तो विवेक--शक्ति का अभ्युदय होता है। यदि यह सबको बताऊंगा तो तुम्हारी महानता कैसे स्थापित होगी।– निम्नस्थ क्षेत्र में उतर आना अवनति नहीं है–यह तो अपने प्रयोजन सिद्धि के लिये अभीष्ट विन्दु से सम्बद्ध होना है–किसी को सुधारने हेतु अनेकों प्रकार से कार्य करना होता है।

तुम्हारे 'काल रूप' एवम् 'दयाल रूप' दोनों हैं–किसी में भी–कोई–तीखापन–धार (प्रखरता) नहीं–यह दोनों ईश्वर के रूप हैं। दयाल शक्ति–आपाद शिखा–प्रेममय है—काल शक्ति इसके-विपरीत है। कृष्ण भगवान के पास यह दोनों रूप रहे हैं। "गुरू का किसी से कोई लगाव नहीं होता–न ही उसे किंचित घृणा ही होती है–यह शिष्य (अभ्यासी) की क्षमता–धारिता पर निर्भर है कि वह गुरू को कहां तक अपनाता है।—ईश्वर का गुण भी यही है— (००)

२८–७–१९४४

गुरू महाराज श्री लाला जी ने निर्देश दिए–कि—मुझे अपनी बातचीत में भी पर्याप्त सचेत (सावधान)–रहना चाहिये—क्योंकि मैं जो कुछ भी बोलूंगा–यथानुरूप क्रियान्वित होने लगेगा।

भोजनोपरान्त लगभग १.५० P.M. बाद दोपहर मैं लेटा हुआ था—लाला जी ने कहा—पूज्य श्री·····आ गये हैं—समुचित रूप मे कपड़े पहनकर–सम्मान पूर्वक बैठो—कुछ समय बाद पूज्य श्री·····आये—मुझे पूजा कराई और आशीर्वचन कहते हुये चले गये। उनके आने का-उद्देश्य कार्य का निरीक्षण करना था। गुरू महाराज ने कहा" तुम्हारा स्तर आगे बढ़ा दिया गया है और मेरी भी प्रशंसा की की गई है। यह मार्ग 'गौस' की स्थिति प्राप्त करने पर पूर्णरीत्या खुलेगा। पूज्य—श्री·····ने तुम्हारे लिये 'गौस उल आजम'-की स्थिति संस्तुत की है। मेरी

इच्छा तुम्हे इससे भी आगे पहुंचाने की है। मैं इसके लिये सदैव बेचैन हूं। अब इस दशा के उन्नयन में कोई विलम्ब नहीं है। लेकिन 'गौस उल आजम' की स्थिति से किसी को—प्राणाहुति न देना—तुम्हें जहां तक मैंने उन्नति प्रदान की है, उसे सीखने के लिये योग्य व्यक्ति नहीं—मिलेंगे। महान सन्त और अन्य लोग जिन्हें तुम्हारी दशा का कुछ अनुमान होगा—पतंगों की भांति तुम्हारी ओर आकर्षित होंगे—मैं दूसरे लोगों के सामने तुम्हारे प्रति असावधान रहता रहा—कारण यही था कि किसी को भी तुम्हारे सम्बन्ध में पता न चल सके। मुझे सदैव यह भय रहता था कि कहीं यह हीरा (रत्न) हाथ से खिसक न जाये। मैंने किसी को भी यह संदेह नहीं होने दिया कि मैं तुम्हारे प्रति प्रेम करता था—लोग मेरा उत्तराधिकारी बनने के स्वप्न देख रहे हैं। एक भौतिक ताने बाने बुनने वाला—कभी मेरा उत्तराधिकारी नहीं हो सकता। इन लोगों को यही समझ लेना चाहिये कि क्या कोई भी व्यक्ति मेरे लक्षण गुण—मेरी दशा—मेरा प्रेम रखता है या नहीं। केवल तभी उन्हें ज्ञात हो सकेगा। यदि वे—ध्यानपूर्वक देखेंगे तो पायेंगे कि तुम्हारी क्रिया विधियां और आचरण मेरे समान ही है।

२९-७-१९४४

लाला जी—अव्यक्तगति के आगे अब तुम अग्रसर हो चुके हो। मैं चाहता हूं इस समय तुम्हारा मन अशान्त न रहे—और तुम्हें—शान्तिपूर्ण रहना चाहिये। इसके उपरान्त मैं तुम्हारे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सोचूंगा।

मैंने निवेदन किया—"तुम्हारे आनन्द में ही मेरी प्रसन्नता है। "लाला जी ने तुरन्त ही सुधार किया और कहाकि—इस प्रकार कहो—कि—"मेरे आनन्द में ही तुम्हारी प्रसन्नता है।" मैंने तुम्हें अन्तिम मंजिल (लक्ष्य) दिखा दिया है जहांकि तुम्हें—अभी जल्दी या कुछ विलम्ब से पहुंचना है·····यहां सभी प्रयास समाप्त हो जाते हैं। केवल वास्तवता में प्रसार होना ही शेष रह जाता है। मैं तुम्हें वह दशा किसी दूसरे—समय दिखाऊंगा। मुझे हाथ का कार्य पूरा करने दो! अब और अधिक अपने को आरम्भिक अभ्यासी न समझो।

इस शंका पर कि—'गौस' एवं 'गौस उल आजम' क्या शक्ति की दशायें है। और क्या इनके निमित्त आध्यात्मिकता पूर्वापेक्षी है। लालाजी ने स्पष्ट—किया कि यह आध्यात्मिक दशायें हैं—जहां कि शक्ति यथानुरुप विकसित होती रहती है। फिर उन्होंने मुझे निर्देशित किया कि उन लोगों को सुधारने के लिए—जो निज अहम् भाव में निमग्न हैं और भ्रष्ट—हो गये है—उन पर विशिष्ट इच्छा (शक्ति) का प्रयोग किया जावे।

३१–७–१९४४

लालाजी–"क्या तुम अपने को एक साधारण आदमी समझते हो? एक लघु विचार–(संस्कार) का निर्माण भी प्रलयंकर हो सकता है। विचार में भयंकर शक्ति निहित है। यदि लक्षण वश—बुराई की ओर मन झुक जाता है तो—तत्क्षण ही एक श्रेय–ष्कर विचार का निर्माण कर लेना चाहिये—ताकि संतुलन बना रहे। जो लोग तुमसे सम्बद्ध हैं—उनकी भलाई के लिये–प्रार्थना करो ताकि यदि उनके सम्बन्ध में कोई दुर्विचार उत्पन्न हो तो उसे—शुद्ध किया जा सके। प्रार्थना सीधे (सहजतया) हृदय से ही करनी चाहिये। तुम्हारी 'गौस' की अवस्था–अन्त हो रही है। तुम अब 'गौस उल आजम' के क्षेत्र में पदार्पण कर चुके हो। आगे उन्नति की आशा रखो। इस दशा को अधिक समय तक मैं रोकना नही चाहूंगा। तुमने अपने को मेरे प्रेम में डुबो दिया है। और तदनुसार मैं भी तुम्हारे प्रेम में आकण्ठ डूबा हुआ हूं। और न तो कभी तुम ही मुझे भुला सकते हो—न ही कभी मैं तुम्हें भुला सकता हूं – मेरा कार्य मेरी स्वयम् की पूर्ण अवस्था तुम्हें दे दिये जाने पर ही पूरा होगा। लेकिन–जैसा कि पूर्वत: नियत है–मैं तुम्हारे साथ तुम्हारे जीवन भर रहूंगा–"

भण्डारा (आध्यात्मिक—सम्मेलन) के समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान करने हेतु गुरुमहाराज ने बताया–

१–प्रत्येक को एक दूसरे का सम्मान करना चाहिये–

२–उच्चनीच का भाव (प्रश्न) नही उत्पन्न होना चाहिये।

३–जिसे अन्य लोग पसन्द न करें–वह काम नही करना चाहिये।

४–असंस्कृत (असभ्य) व्यवहार से प्रत्येक को दूर रहना चाहिये।

५–अपना मन–सहज–रखना चाहिये।

६–अनावश्यक वाद विवाद में नहीं उलझना चाहिये। न निष्प्रयोजन आलोचना में ही फंसना चाहिये।

७–भण्डारा का मुख्य वास्तविक उद्देश्य उसकी–संस्मृतियों से जिसके उपलक्ष में उत्सव आयोजित हो रहा है–अनुप्राणित होना है।

८–दूसरी संस्थाओं के गुरु शिष्यों में कोई विभेद नही होना चाहिये।

१–८–१९४४

पूज्य लालाजी ने प्रशिक्षण की विधियाँ–समझाई जो पहले सीधे हृदय क्षेत्र से आरम्भ होती हैं। इस क्षेत्र में प्रशिक्षु को पर्याप्त समय तक रखा जाता है। यह अपेक्षित है–कि जब तक कोई इस क्षेत्र को गुरु कृपा से स्वयं पार न करले–तब तक उसे आगे की पहुंच नही उपलब्ध करानी चाहिये।–ऐसा करने से जड़ें दृढ़ होती है–और गिरावट- (अवनति) की सम्भावना- (आधार) नहीं रहती।

दिव्य प्रकाश और उसकी आभा को पर्याप्त सीमा तक हृदयगम–आत्मसात

कर लेगा । जब अभ्यासी सूक्ष्मतर दशाओं में प्रवेश करना प्रारम्भ कर देता है--तो यह समझ लेना चाहिये कि अग्रेतर दशा खोलना (प्रकाशित करना) आवश्यक है ।

हृदय क्षेत्र कोई सामान्य क्षेत्र नहीं है । महान सन्त भी इसे पार नहीं कर पाये–और इस क्षेत्र की पूर्ण यात्रा संपन्न करने वाले तो यदाकदा ही उत्पन्न हुए ।

जब तक समग्र यात्रा सम्पन्न नही होती-स्वामित्व प्राप्ति की सम्भावना नही बनती ।--इसमें सर्वाधिक समय लगता है । 'कुतुब' की स्थिति इसके सन्निकट है ।--। तो अब देखिये–यह क्षेत्र कितना विशाल–विशद है ।

शेष अवस्थाएं जो निम्न क्षेत्रों की उपलब्धियाँ है-इतनी विशद नही । उनमें इतना अधिक समय भी नही लगता । यदि किंचित् विचार का सस्पर्श दिया जाय तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि हृदय क्षेत्र ही समग्र- स्थितियों का पावन संग्रहालय है । यदि हृदय को संस्पर्शित नही किया जाता तो शेष सभी स्थितियाँ अशक्त रहती है ।

इसीलिये हमारी संस्था में इस पर अत्यधिक बल दिया जाता है । सर्वश्रेष्ठ पद्धति यही है कि अभ्यासी को अपने अनुसार विकसित होने में सहायता दी जावे । दूसरी दशाओं–को–अभ्यास व्यवहार में उतारने की अब आवश्यकता नही ।

हृदय का सन्दर्भ मांस पिण्ड से नही है अपितु यह उसके संदर्भ में है जो हमारे हृदय में यौगिक तत्व के रूप में अन्तर्प्रविष्ट हुआ है ।–इसमें—सभी–अन्तर्दशायें समावेशित रहती है ।

गुरु में विश्वास अध्यात्म्य प्रशिक्षण में नितान्त आवश्यक है । अभ्यासी का विश्वास तब दृढ़ होने लगता है जब वह गुरु के दिव्य पावन आचरण और आजीविका व्यवहार को देखता/समझता है । प्रेम पर अत्यधिक जोर दिया जाता है ताकि-आत्म विस्मृति का समुद्भव हो सके । और प्रेम की ज्योति प्रज्ज्वलित होने पर उसमें शक्ति संचार स्वाभाविक है ।—पूर्वाग्रह—मन की कमजोरी है—जिस किसी में पूर्वाग्रह–दिखाई पड़े—समझ लेना चाहिये कि वह हृदय क्षेत्र को छोड़ चुका है—(बाहर चला गया) और उसकी प्रगति पूर्णरीत्या अवरुद्ध हो चुकी है ।

मेरी दशा के बारे में लालाजी ने कहा—"तुम्हे वायुतत्व पर पूर्ण स्वामित्व दे दिया गया है । उपरान्त चमत्कारों की बारी है । चमत्कारो का अनन्त भंडारागार मैंने तुम्हारे लिये सुरक्षित रखा है । तुम्हारे स्वास्थ्य को मुझे पहले सुधारना है । तब मैं एक साथ ही यह सब तुम्हें हस्तान्तरित कर दूंगा । आज तुमने महापार्षद की दशा में अच्छी डुबक लगाई है–और पर्याप्त गहराई में चले गये–और कल तक–तुम्हारी यह यात्रा पूर्ण हो जायेगी । एक दिन बाद मैं तुम्हे–शाश्वत–अक्षर—सत्य से सम्बद्ध करा दूंगा । इसके उपरान्त बस तिरते ही जाना—और अधिक क्या-कितनी आश्चर्य सम्भूत सौम्यता—मृदुलता–उत्पन्न होती है जब दो वहमी–(Lunatics) मिलते हैं ।

२–८–४४

लालाजी ने मुझे बताया कि मेरी घरेलू चिन्ताएं उन्हें मालूम हैं । उन्होंने कहा कि कठिनाइयों को तपस्या समझो—और सहिष्णुता का विकास करो । फिर उन्होंने मुझे—अमुक श्री··· ···का हृदय (अन्तर्मन) जागरित करने को निर्देशित किया ।

उनका अन्तर्मन (हृदय) अन्तर्जागरित कर दिया गया और दशा उनमें प्रकाशित हो उठी ।

३–८–१९४४

लालाजी ने अवगत कराया कि मैंने कल ही महापार्षद का समग्र क्षेत्र पार कर लिया है और–परमधाम—परम शाश्वत से सम्बन्ध स्थापित हो चुका है । एक प्रश्न के उत्तर में उन्होने कहा'' मौलिक अवस्था/स्थिति में प्राण–जीवन है । सभी दशाएं यहाँ तिरोभूत हो–जाती हैं । जब तक दशाएं हैं–लय–साहय्यता आदि की अवस्थायें चलती हैं । लय अवस्था का आशय अपने को खो देने से है । प्रत्येक दशा में यह पाई जाती है । यदि यह दशा और गहरी—कर दी जाती है तो अग्रिम परिणित में—यही आत्म शून्यत्व–आत्म अस्वीकृति है । वही पद्धति प्रचलित रहेगी ।

मैंने निवेदन किया कि मुझे कोई तड़प/बेचैनी नही अनुभव होती । लालाजी ने कहा-''एकत्व में तड़प कैसी?'' वस्तुत: जब कभी हृदय से स्वरुप ओझल होने लगता है–तो बेचैनी अनुभव में आती है । ऐसी दशा में सम्बन्ध श्रंखला–सीधे जुड़ी है । लेकिन ऐसे अभ्यासी गिने चुने ही मिलते है ।

फिर उन्होने मुझे मृत्यु के समय प्राणाहुति देने की विधि दिखाई ।

४–८–१९४४

लालाजी – आध्यात्मिकता में आयु का कोई विचार नही होता, कम आयु का — उच्चतम पर हो सकता है । लेकिन यह सब मै किसे बताऊं — प्रत्येक अपनी ही इच्छाओं में डूबा हुआ है । कुछ को अपने ज्ञान का नशा है और कुछ अन्य अपने वैविध्य पर ही गर्व करते है । सभी के सभी वास्तवता के प्रति वधिर हैं । अब तक कोई इसका स्वाद लिया हुआ—प्रतीत नही होता । बहुतेरे प्रशिक्षक भी तो उन्ही बच्चों के समान ही है—जिन्हे कुछ खिलौने मिल गये—और वे उनसे प्रसन्न हैं । सभी सोचते हैं कि वैराग्य/बलिदान की शक्ति उन्होने विकसित कर ली है । लेकिन वस्तुत: ऐसा कोई भी तो नही कर सका ।

५–८–१९४४

लाला जी ने मुझे बताया कि वे सभी चमत्कारी शक्तियां मुझमें निहित है जो अभी तक प्रकाशित (अनावृत) नहीं हुई । और कहा—बहुत शीघ्र ही वे शक्तियां प्रकाशित कर दी जायेंगी । —सभी प्रतिबन्ध मेरे सम्बन्ध में—हटा दिये गये–मैंने अनुभव किया कि कुछेक क्षणों में मै अन्येतर को उच्चतम पहुंच दे सकता हूं।

लेकिन मुझे ऐसा करने की अनुमति नहीं प्रदान की गई क्योंकि यह नितान्त उत्तर-दायित्व पूर्ण—कार्य है—।

६-८-१९४४

लाला जी ने आदेश किया " भंडारा में एक उद्घोषणा की जानी चाहिये कि मैंने (लाला जी) तुम्हें-(रामचन्द्र शाहजहांपुर) उत्तराधिकारी सन्तति एवम्—प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया है । मैं यह भी आदेश देता हूं कि जो मुझे प्रेम करते हैं—अब उन्हें-तुमसे प्रेम करना चाहिये—अब उनका कल्याण इसी में है । उन लोगों के लिये जो तुमको प्रेम करते हैं—मैं वैभव एवम् ऐश्वर्य की वर्षा करूंगा जो तुम्हारा विरोध करेंगे-उन्हें मुझसे कुछ भी लाभ नहीं होगा ।"

७-८-१९४४

प्राणाहुति की नई विधि प्रकट हुई—और वह विधि यह है कि प्राणाहुति किसी भी स्थिति से किसी भी निर्दिष्ट विन्दु को दी जा सकती है । लेकिन—यह सम्मति अन्तर्मन से उद्भूत होनी चाहिये—और साथ ही साथ अन्तर्दशा का निरन्तर अवलोकन करते रहना चाहिये ।

एक विचार विमर्श हो रहा था कि सन्त—देवता के रूप में वापिस आयेंगे । -लाला जी ने कहा-'सन्त वापिस नहीं होते—'

८-८-१९४४

जब तक भौतिकता परिसमाप्त (तिरोभूत) नहीं हो जाती आध्यात्मिकता के अधिग्रहण—आत्मसात्—करने की बात नहीं पैदा होती । अतएव इसका पहले ही निराकरण कर लेना चाहिये । अवतारों का कारण शरीर भी नष्ट हो जाता है । लोग अवतार का रूप उनके आविर्भाव से पूर्व सृजित कर लेते हैं—और जब उनका विश्वास सुदृढ़ हो जाता है । संसर्जित यही रूप जीवन्त हो उठता है—लोगों की प्रार्थना के अनुरूप-परम शाश्वत सत्ता से एक अजस्र प्रवाह समुद्भूत होता है और तद्रूप हो जाता है । अतएव-यह सब लोगों के विचार का ही प्रभाव है ।

लाला जी ने कहा-" मैंने तुम्हें ३० वर्ष की आयु में ही पूर्णत्व प्रदान कर दिया था-वे सौभाग्यवान हैं जो तुमसे लाभ उठायेंगे। अन्यथा-तदुपरान्त लोग प्रायश्चित करेंगे-मुझे तुम्हारी क्षमता मालूम है । ऐसा सम्भव हो सकता है कि लोग भटक जायें और तुम्हारी स्थिति न समझ सकें । मैंने तुममें कोई त्रुटि नहीं रहने दी । जो लोग विश्वास नहीं ला सकते--उनको आगामी समय में मालूम हो जायेगा । जहां तक मैं कर चुका हूं-किसी ने भी तुम्हें समझने का प्रयास नहीं किया ।-- तुम्हारी स्थिति शेर बच्चे की भांति है जिसकी कहानी तुमने पढ़ी ही होगी । यह अपनी वास्तविक प्रवृत्ति के विषय में अज्ञानी था—जब तक कि उसे स्मरण नहीं दिलाया गया । मुझे तुम्हारी सादगी पर तरस आया करता था । कभी-प्रसन्नता भी होती थी—तुम्हारा बलिदान महान है ।—दूसरी विशेषता यह है कि दूसरों को तुम अपने से श्रेष्ठतर समझते हो । तुम इतने संकोची हो-कि बड़ों के

समक्ष अपनी—योग्यता/क्षमता नहीं प्रदर्शित कर पाते । और तुम सदैव ही विनम्र रहते हो ।

"निस्वार्थी मित्र इस संसार में बिरले ही है । यदि मेरी कोई सम्मति मांगे तो मैं यही कहूंगा कि शिष्य–अभ्यासी—के लिये—गुरू के अतिरिक्त अन्य कोई भी मित्र नहीं—और जिस गुरू में यह गुण लक्षण नहीं है—वह गुरू कहलाने योग्य नहीं । मेरे गुरू ने जो मुझपर प्रेम वृष्टि की उसकी कोई तुलना/समानता नही । आगे आने वाली पीढ़ियां इसे सिद्ध कर पायेंगी–मेरे प्रेम की स्थिति ईश्वर ही जानता है—लेकिन इसे कोई नहीं जान सका–इसका क्षोभ है ।

किसी ने मुझे पूरे दिल से प्रेम नहीं किया । मैं सोचता हूं–मेरी ही गलती रही मैं तुम्हें यह इसलिये बता रहा हूं कि तुम मेरे अनुभव से कुछ शिक्षा (सीख) लो। यह भी सदैव याद रखो–कि तुम किसी के गुलाम नहीं । क्योंकि तुम्हें धन दौलत की कोई इच्छा नही । ईश्वर ने तुम्हें पर्याप्त ख्याति–प्रसिद्धि दी है । इस सम्बन्ध में स्पर्धा वाले हमारे वर्ग में अधिक नहीं होंगे । तुम कभी किसी के आश्रय के लिये नहीं रहे—न भविष्य में ही कभी किसी के एहसान से दबना और अधिक मैं कुछ नहीं कहना चाहता–लोग–जो भी विधियां–या साधन वे जानते हो उनके द्वारा चाहें तो परीक्षा कर देखें—और जिस प्रकार हो, यथानुरीत्या अपने को सहमत कर ले–

फिर कुछ आध्यात्मिक वन्धुओं के सम्बन्ध में लाला जी ने अवगत कराया उन्होंने प्रत्येक की लाक्षणिक वृत्ति का विवरण भी दिया—उन्होंने इसके सम्बन्ध में भी गंभीरता से कहाकि–लोग लोभ के जंजाल में ऐसे कैसे फंस जाते हैं कि यदि उन्हें संसार का समस्त धन/वैभव दे दिया जावे तो भी वे और अधिक-और–अधिक –चिल्लाते रहेंगे ।

एक अवोध दशा विद्यमान–मैं दूसरों की कमी नहीं देख पाता । मुझे शत्रु मित्र का कोई विभेद नहीं - लयावस्था के साथ ही—अभिप्रसार भी है । इस मर्त्य-पिंजर से उड़ जाने की उत्कट आकांक्षा है । कुछ समय बाद यह दशा—तिरोभूत हो गई—और पूज्य लाला जी ने यह शरीर छोड़ने के विचार को मुझसे हटा दिया । १०–८–४४

पूज्य गुरू महाराज से कहा—, 'जो कुछ भी तुम्हें चाहिये हो–मुझसे कहो'—मैंने निवेदन किया ' मुझे अपने परमेश्वर अपने सद्गुरू से कुछ भी मांगने में संकोच नहीं । लेकिन आपकी दिव्य कृपा ने सभी कुछ तो दे दिया है और आपकी दिव्यात्मा—मुझमें समाहित (लय) हो चुकी है । अब और अधिक मांगने को क्या बचता है । उन्होंने कहा 'परमेश्वर—तुम्हें आशिष देवें –' मैंने तुममें प्रत्येक चीज पाई और तुम मेरी स्मृति को जीवन्त रखोगे । मैंने यह उस समय के अत्यधिक प्रेम

के कारण कहा । मैंने तुम्हें सभी कुछ प्रदान कर दिया और तुमने भी अपना सब कुछ मुझे दे दिया । जो कुछ तुमने दिया है—मेरे पास है-और जो कुछ मैंने दिया है—तुम्हारे पास है ।

यह एक दर्शन है कि जब मानव अपना सभी कुछ समर्पित कर देता है तो-जिसे यह (समर्पण) दिया जा रहा है उसकी परिसम्पत्तियां-देने वाले में-समाहित हो जाती है ।

यह एक सत्य सिद्ध तथ्य है कि जिस सीमा तक अभ्यासी--गुरू के प्रति समर्पण में कमी करता है--उसी अनुपात में बदले में (विनिमय) भी उसे कम ही मिलता है । एक हाथ दो-दूसरेहाथ लो-।मुझे किसी ने जो भी दिया-मैंने उसेप्रतिफल पूर्णरीत्या वापिस कर दिया । मैंने उनका कोई ऋण अपने सिर नहीं रखा । मुझ पर किसी का कोई ऋण/अधिभार अवशेष नहीं । लेकिन तुम्हारे समूह में देने वाले अनेकों/मैंने सभी को अपना समझा—लेकिन किसी ने मुझको-अपना नहीं समझा । जिन्हें इसके अपवाद में लिया जा सकता है-उन्हें मैं इनमें सम्मिलित नहीं समझता हूं ।-अनेकों हमारे सत्संगी भाई 'सुल्फिया यारों' की तरह रहे । वास्तविकता के आकांक्षी बिरले ही हुये ।-जब कहीं उन्होंने अपनी अभिरुचि का वातावरण देखा वे उधर-मुड़ गये । उन्हें केवलऐन्द्रिकनशे-से लगावरहा-उन्हें इससेअधिक कुछ नही चाहिये था।यह समाज की दशा है जो इस समय निकृष्टतम है-कुछ लोग 'ब्रह्म विद्या' को अपने धन से खरीद लेना चाहते हैं-यद्यपि कि वे गुरु पद पर तो क्या अभी शिष्य के पद पर प्रतिष्ठित नही हुए फिर भी गुरु बनने की मिथ्या भावना दृढ़ हो गयी—रबड़ी हलुआ सभी चाहते रहे—भखरा—किसे भाए । अभ्यासी तो क्षमा योग्य हो सकते है किन्तु आध्यात्मिकता का संस्थापक क्षम्य नही हो सकता ।"

११—८—४४

घटनाओं के रुपान्तरण में सदैव समय लगता है-जब ईश्वर कुछ करना चाहता है—तो घटनाक्रम के अनुसार—परिस्थितियों का (उद्भव एवं) विकास होता है—तब यथानुरुप वास्तवत्तासार अथवा घटना क्रम घटित होता है । यदि कोई सन्त तत्क्षण ही अपने शुभाशिष अथवा शाप के द्वारा परिवर्तन ला देता है तो इसका आशय है कि एतदर्थ भूमिकाएं—(तैयारियाँ) पहले ही (पूर्वतः) प्रशस्त कर ली गई ।

१२-८-४४

लालाजी—"मेरे जीवित रहते हुए एक इच्छा रही—कि मुझे कोई ऐसा मिलता जो मेरा नाम अमर करता ।-यह इच्छा पूरी होने को है-और ईश्वर ने यह मुझे आज दिखा दिया ।

१३-८-४४

मेरे स्वभाव भी अदम्य आग्रह प्रवृत्ति मेरे लिये चिन्ता का कारण बन

गई है–इसके संदर्भ में लालाजी ने कहा–"शरीर धारण किये रहने के लिये यह आवश्यक है–एतदर्थ तुम्हें क्षुब्ध होने की आवश्यकता नही मैं प्रत्येक प्रकार से उत्तरदायी हूं—तुम्हारी प्रगति की कोई बराबरी नही । यहाँ तक कि सन्त लोग भी इसके लिये गौरवान्वित हैं । लेकिन तुम्हारी प्रगति तुम्हारी संचित निधि में–मेरे साथ समन्वित रहेगी ।

अब तुम्हें ऐसे स्तर पर ला दिया गया है जहाँ–प्रत्येक चीज तुम्हारे नियंत्रण में है । यदि तुम कम देना चाहते हो तो कम दे सकते हो । अथवा यदि तुम अधिक देना चाहते हो तो अधिक भी दे सकते हो । पहले यह तुम्हारे वश की बात नहीं थी । जिसको भी तुमने दिया- वह तत्क्षण ही आपूरित पूर्ण हो गया । अन्यथा उससे आगे उसका मस्तिष्क नष्ट हो गया होता ।

यह ईश्वर की कृपा रही कि तुम्हारा झुकाव आरम्भ से ही आध्यात्मिकता की ओर रहा–जब कोई धन सम्पत्ति उपलब्ध कर लेता तो–आध्यात्मिकता की ओर नही मुड़ता यही कारण है–कि ईश्वर के चाहने वाले सदैव कष्टों में रहते हैं । सामान्यतया यह देखा जाता है किवे सड़े गलेनिकृष्टजीवन की कमीही पूरी करते हैं ।

तुम्हारा सन्दर्भ अपवाद स्वरुप है । और मुझे प्रसन्नता है कि मैं उसकी देख–भाल करने योग्य रहा जो–सर्व सम्पन्न है ।

१४–८–४४

मेरा हृदय अनुभवों से आपूर्यमाण है–मैंने बहुत सारे संस्कारों का भोग स्वप्न द्वारा सम्पन्न कर लिया–और मुझे अनुभव हुआ कि नवीन संस्कारों का निर्माण तो बहुत पहले ही–बन्द हो चुका था । कुछ केवल नाम मात्र के लिये रह गये । ताकि इस संसार में जीवन बना रहे । मैं यह अनुभव करता हूं कि कतिपय अन्य बन्धन दृढ़ हो गये है—जिससे कि मैं देह त्याग न कर सकूं । कोई मानव–संस्कारों पर बंधन डालकर उच्चतम स्थिति तक पहुंच सकता है । इसका अभी अनुभव किया जाना है–चूंकि यह बिल्कुल नई बात है इसलिए लोग इसे समझ नही पायेंगे ।– लालाजी ने इसकी प्राविधि मुझे दिखाई भी लेकिन इसे करने से मना कर दिया ।

१५–८–४४

लालाजी ने प्रशिक्षण की कुछ विधियाँ समझाई–उन्होने कहा अन्यत्र यह विधियाँ उपलब्ध नही होंगी । और यह भी बताया कि अपने जीवन का बहुमूल्य भाग उन्होने इनके अन्वेषण में लगाया है ।

१६–८–४४

मैंने अपने एक आध्यात्मिक बन्धु को निम्नलिखित उत्तर लिखा "जब लयावस्था की दशा अभ्यासी में आरम्भ होती है तब गुरु के प्रति प्रेम का प्रादुर्भाव होता है—समयानुसार (उचित समय में)यह अनुभूति इस सीमा तक दृढ़ हो जाती है कि दोनों में एकत्व का विकास होने लगता है यदि तुम निकट से देखते हो तो श्री–अमुक में एक सूत्र बन्धन पाओगे जो कि ध्यानाकर्षण हेतु पर्याप्त है । एक प्रसिद्ध

कहावत है कि गरजने वाले बरसते नही –(जब तक विचार–छिन्न भिन्न नही हो जाते कुछ भी उपलब्ध नही होता)

प्रशिक्षण का प्रयोजन—सभी ओर से विचार हटाकर एक दिशा में निर्दिष्ट करना है जिससे कि उस ओर की समस्त शक्ति संप्रवहमान हो उठे । शिष्य के लिये गुरु की स्थिति उच्चतम है । उसे उच्च अथवा निम्न के भाव से सम्बन्धित नही रहना चाहिये । सभी विचार गुरु में संन्निहित कर दिये जाने चाहिये । यह त्रैत-वाद का विचार तुम्हारे मन में क्यों?-लक्ष्य पर अपना दीठि दृढ़ स्थिररखो–प्रेम केवल एक के प्रति हो सकता है । तुमने लैला–मजनू की कहानी सुनी होगी कि मजनू के मन में लैला के सिवा दूसरा विचार नही था ।–क्या उन दिनों लैला से अधिक सुन्दर स्त्री उपलब्ध नही थी ?–लेकिन जो प्रसन्नता—आनन्द मजनू को मिला–वह सब उसे काली भद्दी स्त्री से ही उपलब्ध हुआ । एक से अधिक को अपना हृदय देना प्रेम परम्परा के प्रतिकूल है ।

"क्या तुम यह सोचते सकते हो कि हमारा गुरु पूर्ण नही है—क्या वह तुमको सभी दआओ/विन्दुओं को पार कराने में–समर्थ नही है । तुम्हारे लिये–गुरु के अतिरिक्त अन्य कोई भी विचार–समीचीन नही है । जो कुछ भी तुम्हें आशा है केवल उन्ही से रखनी चाहिये । जो कुछ भी तुम्हें प्रदान किया जायेगा–वह सब उन्ही के द्वारा । एक शिष्य के लिये गुरु के अतिरिक्त अभ्येतर कोई सम्पत्ति नही । उन्हें सभी कुछ समझो । मुझे और अधिक कुछ भी नही कहना है । यदि तुम अपने गुरु को प्रेम करते हो–तो मैं प्रसन्न रहूंगा । इसमें सभी कुछ पाओगे । गुरु की जो कुछ भी आज्ञा हो–तुम्हें उसका पालन करना चाहिये । अपने को केवल उसमें ही लय करने का प्रयास (अभ्यास) करो । इससे सभी कुछ सम्पन्न हो जायेगा ।"

उस अवस्था में लय होना जहाँ कि समस्त अनुभूतियां शांत (उपरत) एवं इन्द्रिय संचेतना अपने मूल में प्रसुप्त एवं निष्प्रयोजन प्रतीत होती है—यदि यह दशा निष्क्रियता का परिणाम होती तो — इन्द्रियां—निष्प्रयोज्य प्रतीत नही होती । 'हदीस–ए–नफ्स' वह अवस्था है — जहाँ कि प्रत्येक व्यक्ति—मकड़ी की भांति जाल में आवद्ध है । यह डोरी (जाल) जब तक झटका नही दिया जाता—नही टूटेगी । इससे किसी को सुरक्षित रखने का एक ही उपाय है कि जैसे ही यह अवस्था उत्पन्न हो–उसे (अभ्यासी को) विचार में लय हो जाना चाहिये—विचार जो कि जीवन में प्रत्येक पदार्थ का उद्भव (स्पन्दन) करता हैं । इसे शुद्ध करने की विधि यह है कि जाल के समस्त ताने -वाने तोड़ देने चाहिये—इसे स्वप्रयास से भी किया जा सकता है । बड़े–बड़े लोग इसके शिकार हो जाते है । इससे स्वयं को सुरक्षित रखने की एक और विधि यह है कि यह धागे—गुरु में लयकर दिये जाय–यह शक्ति पूर्ण उपचार है ।

"दूसरी बात अभ्यासी कभी—कभी अपनी दशा में गिरावट महसूस करता है। इस अवस्था में बहुत लोग अभ्यास बन्द कर देते हैं। इसके लिये सम्बन्ध स्थिर करने की विधि अत्यन्त प्रभावशाली है। हमारी प्रणाली में–जैसे ही यह दशा आती है सामान्यतयालोग–अभ्यास छोड़ बैठते हैं किन्तु जब हृदय सुविकसित होता है औरइसमें वास्तवत्ता का प्रभाव झलकने लगताहैतब सूक्ष्मता बढ़ती है।नशे की(आच्छ-दनीय) अनुभूति विरल होने लगती है। तब यह दशा बढ़ती है—जब यह दशा उत्पन्न हो–तो आनन्दानुभूति को प्रगाढ़ता दे देनी चाहिये ताकि अभ्यासी उस कमी को जो वास्तव में वहाँ नही है—न अनुभव कर सके।"

गुरुजी ने 'जीवन में मृत्यु' (जीवित मृत) की दशा का साक्षात्कार कराया। और यह बताया कि यह अवस्था (जीवनमुक्त) प्रत्येक को नही मिलती। और यह भी कहा कि महान सन्त इसके लिये लालायित रहे–और बिना इसे पाये ही—प्रस्थान कर गये।

१७–८–४४

क्रोध (गुस्सा) स्वयं में कोई बुरी चीज नही। इसे–केवल सदुपयोग में लगाना चाहिये। मानव जीवन के सिद्धान्त इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक अपनाये जाने चाहियें कि उनसे व्यवहार में सौम्यता की झलक मिले। जबकि पांचों ज्ञानेन्द्रियां भी पूर्णतया साम्यता में होती है–आक्रोश (क्रोध का भाव) तब भी विद्यमान रहता है। यह मानव अस्तित्व की आवश्यकता है–जो कभी कभी असहनीय हो जाती है।

लालाजी के द्वारा दिये गये सिद्धान्त :–

१– प्रत्येक को अपने बच्चों का पालन पोषण इस भाँति करना चाहिये कि इससे अपना हृदय प्रभावित न हो। और उनके प्रेम के कारण कष्ट न हो।

२– अपनी पत्नी को सहयोगी बना लेना चाहिये। और गृहस्थ जीवन के रथ के एक पहिये के रुप में अपने को समझना चाहिये।

३– पड़ोसियों से ऐसा व्यवहार–सम्बन्ध बना लेना–चाहिये कि वे अपने ही अनुभव हो और वे भी अपनत्व अनुभव करें। मित्रों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही सिद्धांत लागू होता है।

४– सम्बन्धियों से इस प्रकार सूत्र संस्थापित करना चाहिये कि आन्तरिक बंधन खुला हुआ प्रतीत हो। उसके सुखदुख का सहभागी रहना चाहिये। यह प्रत्येक के साथ होना चाहिये। रुपये के लेन देन से दूर रहिये। जब उन्हें अत्यन्त आवश्यकता हो तो उतनी ही धनराशि देनी चाहये जितनी कि यदि वापिस न मिले–तो कोई आर्थिक दबाव न पड़ता हो।

५– उच्चाधिकारियों के प्रति व्यवहार इस भाँति होना चाहिये कि वे–अधीनता के नियम का भंग होना कभी न समझें। उससे विनिमय में जो कुछ भी उपलब्ध हो उसे ईश्वरीय उपहार समझना चाहिये।

६– जहाँ कि राय (सम्मति) पर ध्यान न दिया जाय अथवा—जहाँ आवश्यकता न हो—सम्मति प्रकट नही करना चाहिये—यदि आप चिकित्सक न हों-तो औषधि उपचार नही निर्देशित करना चाहिये ।

७–उतनी सेवा दूसरों से लेनी चाहिये जितनी कि उनकी की जा सके । परिस्थितियों का प्रभाव दूसरी बात है ।

८– अपने गुप्त भेद किसी को नही बताने चाहिये और ऐसा भी नही होने देना चाहिये कि लोग यह समझे कि कुछ रहस्य छुपाया जा रहा है ।

९–सरल एवं पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिये ।

१०– जहां तक सम्भव हों चिन्ता से दूर रहना चाहिये । फिर भी यदि चिन्ता पैदा ही होती है तो इसे ईश्वरीय देन समझे । और उसकी (ईश्वर की) कृतज्ञता प्रकट करें ।

११– आहार—विहार के संदर्भ में—सम्यक् (Moderate) रहना चाहिये- पवित्र भोजन का उचित ध्यान रखना चाहिये ।

१२– गुरु को अपना सर्वस्व समर्पित कर देना चाहिये । इसका आशय यह नही कि अपना सारा धन गुरु को दे देना चाहिये । (यहां धन द्रव्य आदि से संकेत का आशय नही है) और गुरु की प्रत्येक सम्पत्ति को अपना समझना चाहिये ।

१३– सत्संगी भाइयों के प्रति व्यवहार प्रसन्नता परक एवं आत्मोन्नति में सहायक सिद्ध होने वाला होना चाहिये–सीधे विरोध करना–नितान्त निन्दनीय है ।

यदि कोई उपर्युक्त नियम सिद्धान्तों का अनुसरण करता है तो—उसका जीवन (शानदार) वैभवपूर्ण हो जायेगा और यह संसार उसके लिए–त्याज्य स्थान नही रहेगा ।

लालाजी :-केवल एक ही 'गौसउल आजम' (महापार्षद)एक समय में हो सकता है–यह पद प्रत्येक को नही दिया जाता । गौस (पार्षद) का पद भी असाधारण है–कुतुबुल किताब–संख्या में कुछ अधिक होते हैं—और कुतुबु, अपेक्षा कृत और अधिक होते हैं लेकिन इन्हें भी उंगलियों पर गिना जा सकता है । प्रकृति का प्रशासन इन्ही के द्वारा चलता है—प्राचीन समय में–जब हिन्दुओं का अभ्युदय हो रहा था तब व्यवस्था ऐसी ही समान थी किन्तु विधि भिन्न थी । आवश्यकतानुरुप वे मूलोद्भव की ओर उन्मुख होते थे —और मूल दशा में स्पन्दन उत्पन्न कर दिया करते थे—उन्हें एक नियत क्षण पर आवश्यकताओं का यथानुरुप ज्ञान रहता था ।-और तदनुकूल प्रकृति से सहायता प्राप्त कर लिया करते थे । यह शक्ति अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) रुप में कार्य किया करती थी । अधः पतन के कारण ये शक्तियां ओझल (तिरोहित) हो गयी । जब उससे—तुलना की जाती है तो–सूफी मत–दूसरे स्थान पर आता है ।

मूल के अभाव में जो कुछ था–वह स्वीकार्य हो गया। अब प्रकृति स्वयमेव इस ओर प्रवृत्त हुई है।

१८–८–४४

लालाजी ने कहा—"मानवी की शालीनता इसी में है कि वह स्वयं को भक्त के रुप में समझे–और 'उसे' अपनी अर्चना/उपासना का ध्येय। लोग इसे भूल जाते हैं और ईश्वर को – कार्य सम्पन्न करने का संयंत्र समझने लगते हैं। देवताओं और गुरुओं के सम्बन्ध में भी ऐसा ही है। लोग उनके चित्रों की पूजा–फूल मालाओं से करते हैं। ऐसे लोग पशु श्रेणी में आते हैं। वस्तुतः परावर्तन (चमक) में कोई वास्तवत्ता नही–इससे वास्तवता का प्राकट्य नही हो सकता।

१९–८–४४

लालाजी ने अपना उत्कट आकांक्षा व्यक्त की कि मैं कुछ लोगों को दिव्य रूपान्तरण के आदर्श के रुप में तैयार करूं।–तब उन्होंने अपने लेखों के छापने और प्रकाशित करने को निर्देशित किया। जो कि उनके जीवन में धनाभाव के कारण छप नही सके थे। उन्होंने कहा कि मुझे भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों सम्पत्तियाँ भरपूर भरपूर प्राप्त होंगी।

वर्तमान समय की जटिलताओं की बात करते हुये लालाजी ने कहा–"तुमने प्रत्येक को अपने की भांति अपनाया लेकिन वैसा प्रत्युत्तर तुम्हें नही मिला। यदि किसी ने तुम्हें कुछ दिया भी तो इसके पीछे स्वार्थ परक वृत्ति छिपी रही। तुम्हें वास्तव में किसी ने प्रेम नही किया प्रत्येक ने तुम्हें बोझा लादने वाला पशु बना दिया। और तुमने प्रत्येक प्रकार से उनकी सेवा करने हेतु स्वयं को तत्पर कर लिया लेकिन किसी ने इसकी सराहना नही की।—इतना होते हुए भी–सबसे सुन्दर तो यह बात रही कि तुमने उनके प्रति अपने हृदय में कभी विरोधी विचार नही बनने दिया और इसे अपनी ही कमजोरी (त्रुटि) समझा—लोगों को भली भाँति हृदयगम कर लेना चाहिये कि यह लक्षण असाधारण व्यक्तित्व के हैं—जो—सभ्यता–संस्कृति की उपलब्धियों में सर्वोच्च शिखर पर है। और उन्हें तुमसे लाभान्वित होना चाहिये—एक विशेष बात तुम्हारे संदर्भ में यह भी है कि तुमने अपनी इन्द्रिय चेतना को इस सीमा तक प्रसुप्त कर दिया है कि तुम्हें इसकी किंचित् भी अनुभूति नही होती।

खुदा का—शास्त्रीय–शाब्दिक अर्थ—स्वम्यभू—अर्थात जो स्वयं ही प्रकट हुआ है—होता है। अन्य सभी वस्तुएं उसके बाद आईं। हिन्दुओं ने ईश्वर के पीछे—सन्निहित इस शक्ति को माया/और महा माया नाम दिये हैं।—वह स्पन्दन (क्षोम) जो शाश्वत सत्ता (ULTIMATE) में हुआ होता है—वह गतिमय—स्पंदनशील होता है यद्यपि कि मूलोद्गम स्रोत गतिहीन—स्थिर होता है।—इस क्षोभ के प्राकट्य के तत्काल बाद — तरंगे—स्पन्दन संस्थापित हो उठे–यह माया

की चरम अवस्था है। तब संरक्षण की शक्तियाँ आती हैं। इस प्रकार सृजन और प्रलय का यह क्रम चलता है।

मूसा के ईश्वरीय प्रकाश देखने कीं प्रशंसा में बहुत कुछ कहा गया। लेकिन यदि ध्यान से प्रेक्षण किया जाये तो यह माया की ही सूक्ष्मतम दशा है। यह उस बिन्दु का प्रकाश था जहां कि परम तत्व का बिम्ब महामाया के क्षेत्र में सन्नि–पातित होता है जब कोई आगे अग्रसर होता है–तो सभी अवस्थाएं परिसमाप्त हो जाती है। केवल धार रहती है—और यह धार ही परमतत्व (पद) का सिंह द्वार है—तुम्हारी यह प्रकाश देखने की प्रबल इच्छा थी—और चूंकि तुम्हारी इच्छा थी इस लिये यह तुम्हें दिखाया गया यद्यपि कि तुम इसके कहीं आगे पहुंचे हो यह सब लिखवाने का मेरा (आशय) अभिप्राय यह है कि जो कुछ तुम इस समय उपलब्ध रखते हो उसकी तुलना में यह सब नगण्य (कुछ भी नहीं) है।

२२--८--४४

लाला जी ने मुझे सूचित किया कि परम तत्व से मेरा सम्बन्ध सूत्र दृढ़ हो गया है। मुझे यह निर्देशित किया गया कि जैसे ही किसी का कुछ भला करने का विचार उत्पन्न हो तो तत्काल बिना किसी अन्य समय की प्रतीक्षा किये कर देना चाहिये।

विष्णु के क्षीर सागर में शयन (शेष–शयन) करने और लक्ष्मी द्वारा उनके चरण दाबने--सहलाने के प्रश्न पर लाला जी ने कहा-यह सब प्रतीकात्मक हैं। आदि शेष शय्या--पार्थिव इच्छाओं का द्योतक प्रतीक है--और लक्ष्मी जो पैर दाबती दर्शायी गई है--वह--माया है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो अपनी पार्थिव इच्छाओं पर स्वामित्व प्राप्त कर लेता हैं लक्ष्मी उसकी--सेवक--अनुचरी बन जाती हैं।

शेष चीजें–उन लोगों ने बनाई जो अन्य लोगों के मध्य अपनी मान्यता बनाये रखना चाहते थे। जैसे–जैसे समय गिरता गया–स्थूलता बढ़ने लगी। लोगों की बुद्धि–जड़-हो गई–और उन्होंने इन कहानियों को ही सब कुछ समझ लिया। यह अधः पतन का लक्षण है। ब्रह्माण्डीय मस्तिष्क–जहाँ से मन को प्रकाश मिलता है–कैलाश कह–लाता है। यहाँ आत्म सम्मान का प्रश्न नहीं—मेरी दृष्टि में सब बराबर हैं। मैं सभी के प्रति प्रेमपूर्वक व्यवहार करता हूं।

२३–८–४४

नितान्त सावधानी पूर्वक कार्य करना चाहिये–संसार अत्यन्त भ्रमपूर्ण है–तुम सभी को शुद्ध हृदय समझते हो–लेकिन ऐसा नहीं है—जब तक मेरी आज्ञा न हो–शक्तियां प्रदान न की जायें। मेरा समय अच्छा रहा लेकिन तुम्हारा ऐसा नहीं है–सत्संग में केवल संख्या बढ़ा लेना आवश्यक नहीं।–जिन्हें सम्मिलित किया जाये वे–योग्य हों–कम से कम वे तुम्हारा नाम तो बदनाम न करें–यह प्रत्येक का कर्तव्य है कि वह अपने को यथासम्भव कुसंग से बचाये–यह संसार संकुचित एवं–काले–अणु-

कणों से आवद्धमान है। किन्तु उन अणुकणों में-आभा-(विद्यमान) संकेन्द्रित है। इसका अर्थ यह है कि प्रकृति और पुरुष सृष्टि आरम्भ से ही साय्युज्यरूपेण अस्तित्व में है। जो दूर दृष्टि की प्रतिभा सम्पन्न-दिव्यता की ओर अग्रसर है—उन्हें स्वतः ही आभापूर्ण प्रभाग प्रत्यक्ष होता है जिससे कि वे लाभान्वित होते हैं—।

दूसरी ओर जो सांसारिक एवं निष्प्रयोज्य प्रकरणों में व्यस्त हैं उनकी दृष्टि में मात्र अंधकार पूर्ण प्रभाग ही परिलक्षित होता रहता है।—वे उस कालिमा (कलुष) का प्रभाव एकत्र करते हैं—परिणाम स्वरूप आपाद शिखा वे—तमसावृत ही रहते हैं। दशा के विकसित होते होते—स्थूलता बढ़ती जाती है—

कोई भी अपने विचार के अनुसार ही प्रभाव ग्रहण करता है-और उस सीमा तक विचारों को वलशाली बनाता है—परिणामतः पूर्णरीत्या वे अन्ध तमस से आच्छादित होते रहते हैं। शनैः शनैः मायावी प्रभाव उनमें भलीभांति प्रविष्ट हो जाता है-यह प्रविष्ट हुए-चेतना कण उचित वातावरण पाकर विकसित-विस्तृत होते रहते हैं।

इस तत्व-(चेतनाकणों) का प्रभाव-देह के अणुपरमाणुओं पर पड़ता है। जहां से इसका प्रभाव मस्तिष्क (मनोपटल) की सूक्ष्म पाटलियों—झिल्ली-पर उतरता है-जब मनोपटल प्रभावित हो जाता है तब मेरुदंड—सुषुम्ना प्रभावित होता है-जिसके परिणाम में संस्कार चित्त निर्माण होता है-जब संस्कार सघन हो जाते हैं—तो जो इसका प्रवृत्तिवश आखेट हो गया है-वह बाह्य प्रभाव शीघ्रतया ग्रहण करने लगता है।-जब इस स्थिति तक संस्कार निर्माण होता रहता है-और उसे कोई भी सत्संग नहीं मिलता कि उस दुष्प्रवृत्ति से उसे मुक्ति मिले—तो उसकी दशा नितान्त दयनीय (निन्दनीय) हो जाती है—यदि सौभाग्यवश किसी को पूर्ण गुरू मिल गया-तो वह-प्राणाहुति से तमसावृत क्षेत्रों को प्रकाशित करता रहता है—अभ्यासी का विचार जो तमसावृत था रूपान्तरित एवम् प्रकाशित हो जाता है।

सबसे पहला लाभकारी परिणाम यह होता है कि जो शक्ति अन्ध तमस को आकर्षित कर बटोर रही होती है-अब-इस दिशा में समन्वित हो जाती है—यह प्रकृति का रहस्य है।

२६-८-४४

इस संसार में रहते हुये चूंकि संस्कार भोग आवश्यक है अतएव कष्ट अभाव आदि तो आते ही हैं। वही केवल श्रेष्ठ पुरुष है जो सब कुछ करते—सहते भी उन सभी—लगावों-आसक्तियो से परे—(अछूता) निस्पृह रहे।

लगभग 2.15 P. M. दोपहर को मुझे निर्देश मिला कि आँख बन्द कर लो और बैठ जाओ। निर्देश का परिपालन किया गया। शाम को भोजन करने से मना कर दिया गया—लेकिन कुछ दूध और कन्द खाने को कहा गया।

लाला जी ने कहा "सभी शक्तियों के होते हुये भी मैंने अपने को एक नगण्य–तुच्छ—भक्त (सेवक) समझा। मैंने उसकी इच्छा की अधीनता स्वीकार की और प्रत्येक परिस्थिति में सन्तुष्ट रहा—और उसे धन्यवाद दिया—परिणामतः कुछ भी सोचना नहीं पड़ा। और कार्य स्वतः ही यथानुरूप सम्पन्न हो गया। और यह भी–ईश्वरेच्छा पर निर्भर होना मानव का शिष्टाचार है—यह भक्ति का मूल आधार भी है—क्या यह तुम सब लोगों के लिये अधिग्रहणीय नहीं है-?"

"जब मानव एक दशा से दूसरी में पहुंचता है तो कुछ ठहराव की अनुभूति विकसित होती है। इसे एवम्विधि समझिये—कि एक व्यक्ति नदी तीर पर खड़ा हुआ है—दूसरे किनारे पर पहुंचने के लिये नदी पार करनी-आवश्यक हैं–सर्व प्रथम इसके लिये एक नाव की आवश्यकता होगी—जब वह नाव में बैठता है तो उसे वह गति नहीं मिलती प्रतीत होती जिस गति से वह किनारे तक दौड़ता हुआ आया था। इसे—मर्जक—पड़ाव कहते हैं—जो हमारी साधना में प्रत्येक अवस्था में आता है। कुछ लोग इस सरिता को तत्क्षण ही पार करने योग्य हो जाते हैं—जिसका कि उन्हें किंचित आभास भी नहीं होता। कुछ अन्य होते हैं—जिन्हें समय लगता है। जैसा भी हो–यदि विश्वास सुदृढ़ है और गुरू प्रेम दिन व दिन बढ़ता है तो कभी न कभी लक्ष्य (मंजिल) तक पहुंचना सुनिश्चित ही है।"

"इस पथ में अनगिन रहस्य (गुप्त–भेद) हैं एक सच्चे अन्वेषी (साधक) के लिये जो कुछ भी मार्ग में आता है-उत्साहवर्धक होता है। उसकी उन्नति गुरू के प्रति प्रेम और विश्वास के अनुपात में होती है। आध्यात्मिक दशाओं के विषय में भी ऐसा ही है। मान लो कि कोई व्यक्ति 'अ' से 'ब' विन्दु पर पहुंचता है-तो उसे वह अनुभूति नहीं होती जो दूसरा व्यक्ति उन्हीं विन्दुओं की यात्रा के मध्यान्तर करता है। जहां तक मंजिल पर पहुंचने की बात है–दोनों मंजिल पर पहुंचे हैं—सर्वश्रेष्ठ विधि सर्वस्व गुरू पर छोड़ देना है। दूसरे कि जो कुछ अच्छा भला हो रहा है—गुरू की देन समझते हुये रहें।"

"मेरी विशिष्ट मुस्कान (स्मिति) का रहस्य यह है कि मैंने सदैव स्वयम् को उसकी उपस्थिति में निरत रखा—और स्वयम् को एक नगण्य सेवक समझता रहा मुझे वाह्य प्रदर्शन से कोई सरोकार नहीं रहा। मैंने अपनी—सभी परिसम्पत्तियां/क्रियाविधियां, घरेलू भी–उन्हीं की समझीं-और सभी परिस्थितियों में प्रसन्न रहा। तुम्हें भी ऐसा ही समझते हुये कृतज्ञता पूर्वक रहना है।"

२२–९–४४

लाला जी—ध्रुव लोक एक स्थान है-जहां उच्चतर उपलब्धियों की आध्यात्मिक विभूतियां निवास करती है–यह जगत अपने कार्य क्षेत्र में ले लो। इस लोक के निवासी कोई भी (गुरू) नहीं रखते हैं—

आज मैं तुम्हें वातावरण से सम्बन्धित स्थिति पर पूर्ण स्वामित्व दे रहा हूं।

चित्र प्रत्यक्ष हुआ जिससे कि वातावरण के क्षेत्र का विचार प्रकट होता था।

जो क्षेत्र तुमने चित्र में देखा है–उससे आगे का क्षेत्र सूक्ष्मतर है—यहाँ से वायु को—गति मिलती है–यदि इसे वायुमनस कहें तो अधिक समीचीन होगा । यह क्षेत्र मानव शरीर में भी विद्यमान है ।

अवतार काल और महाकाल क्षेत्र से आते हैं–जब अधिक कठोरता की आवश्यकता होती है तो अवतार महाकाल क्षेत्र से आते है, जब हमें इस की आवश्यकता कुछ कम रहती है । तो काल क्षेत्र से आते हैं–उनके पास समस्त शक्तियां होती हैं—और उन पर पूर्ण स्वामित्व होता है । वे भगवद–प्रेम स्वरुप अथवा कालरुप किसी भी रुप में प्रकट हो सकते हैं–जिसके कि एक हाथ में तलवार एवं दूसरी में शंख होता है जो सत्य पद से अवतरित होते है–उनके पास यह शक्तियाँ नही होती ।

क्या तुम्हें ज्ञात है कि दुर्वासा को रुद्र के अवतार के नाम से क्यों कहा जाता है । उनकी आत्मोन्नयन अवधि में उनका उस क्षेत्र से सम्बन्ध हो गया जहां से विध्वंसक–शक्तियां अवतरित होती हैं । इसलिये वे जहां भी गये यह शक्ति जो उनमें कूटस्थ थी, बाहर–फैलने लगती थी-अब चूंकि यह विध्वंसक शक्ति रही अतएव दूसरे इससे हानि उठाते रहे–और उन्हें दुख और कष्ट सहना पड़ा । लोगों को दुखी करने, रुलाने के लिये यही शक्ति उत्तरदायी थी । यह दिव्य शक्ति थी अत: निम्न–कोटिक सन्त भयवश उनका सम्मान करते रहे । उनकी शक्ति की बराबरी नही ।
१४–१०–४४

भगवान कृष्ण ने अन्त: सम्पर्क किया और बताया कि महाभारत की आख्यायिका (कथा) में किंचित् संशोधन की आवश्यकता है उन्होंने अर्जुन को विराट स्थिति का साक्षात्कार (दर्शन) कराया यही वह क्षेत्र है—जहां भौतिक जगत में घटित होने से पहले घटनाएं प्रकट होती है ।

लालाजी:—वेदों का प्राकट्य उसी भांति हुआ कि जैसे अब तुम्हें विभिन्न रहस्य प्रकट किये जा रहे हैं । केवल समयानुकूल रुप भिन्न था । यदि उसी भाँति बाते तुम्हें समझाई जाती तो तुम उन्हें समझ भी नही सकते थे । चूंकि पीढ़ी दर पीढ़ी ब्रह्मचर्य का अभ्यास किया जाता रहा । तो लोगों की स्वाभाविक धारणा ऐसी बन गई कि यह दिव्य नीति है—अन्तर्जागरण के लिए केवल संस्पर्श की आवश्यकता थी ।

तो लोगों की स्वाभाविक धारणा ऐसी बन गयी जो ईश्वरीय (दिव्य) नियम के समैक्य में रहती थी, तो उन्हें अन्तर्जागरण के निमित्त मात्र संस्पर्श चाहिये था । यही कारण रहा कि श्रुतियों ने दूसरा रूप ले लिया ।

मानव का प्रत्येक कार्य मस्तिष्क पर छाप (प्रभाव) अंकित करता है जो कि कारण शरीर मनोपटल आत्मा से सम्बद्ध है जब आत्मा एक देह से दूसरे में स्थानांतरण

करता है तो यह सब पदार्थ (अंकित छाप) साथ ही जाता है यदि किसी ने वर्तमान समय में कोई अच्छा सद्कार्य नही किया होता है तो पूर्व जन्म के संस्कार तदनुकूल वातावरण पाकर भोग प्रक्रिया को तीव्र करते है—और वर्तमान जीवन के कुछ कर्मों का परितोषितक एवम् दण्ड उसी अवधि में प्राप्त हो जाता है । शेष संस्कार भविष्य के भोग के लिये रहते हैं । यही क्रम महाप्रलय तक चलता है । एक भोग के उपरान्त दूसरा यदि किसी भांति भोग श्रखला भंग नही हो जाती, तो यही क्रम चलता रहता है । अब प्रश्न है कि भोग की इस श्रंखला (कड़ी) को कैसे समाप्त करें? सर्वोत्तम हल यही है कि किसी को समर्पित कर दो, और उनसे असम्बद्ध रहो प्रकृति के पास कोई लेखा जोखा नही (कोई खाता नही खुला है) एक व्यक्ति अपना भाग्य स्वयं निर्माण करता है । अपने भोग भाग का स्वरुप भी, यहाँ ब्याज, चक्रवृद्धि ब्याज का प्रश्न नही, ऊष्मा (उत्तेजना) उष्णता से प्रत्येक वस्तु पोषण जीवन पाती है, सच्चे प्रेम की ऊष्मा से जितने ही अधिक संस्कार संस्पर्शित होते जाते हैं, उतनी ही शीघ्रतया वे भोगार्थ प्रवृत्त हो जाते हैं । हमारी संस्था में यदि किसी में सच्चे प्रेम ईश्वर (गुरु) के प्रति का विकास हो जाता है तो संस्कार निर्माण बन्द हो जाता है । केवल विगत कर्मों का परिणाम ही भोगना रहता है। इस सबकी व्याख्या स्वयं ही एक दर्शन है ।

१५–१०–४४ भगवान कृष्ण: यद्यपि माँस खाना स्वास्थ्यप्रद है किन्तु दिव्य तत्व के अन्वेषी को इसका प्रयोग नही करना चाहिये उनके लिये यह हानिकर है । "राधा से अधिक प्रेम मुझे किसी ने नही किया उसके बाद गोपियाँ रहीं । रासलीला कीकहानी विकृत की गयी है । श्रंगारिक कवियों ने अपनी कल्पना की उड़ान से मूल विषय को तिरोभूत कर दिया । भीष्म का गंगा नदी से जन्म होना सत्य नही है । गंगा देवी नही है, यह केवल जल की धारा है, औषधीय गुणों से समन्वित है । गंगा को नदी की महत्ता सम्मान वृद्धि हेतु देवी कहा गया भीष्म एक राजकुमारी का पुत्र थे जिसे पाडु देश से निष्काषित कर दिया गया था । वह अत्यन्त वीरांगना स्त्री थी, उसने तपस्या की और तय किया कि ऐसा पुत्र उसे मिले जिसकी बराबरी कोई दूसरा न कर सके । इसी विचार से वह अपने पति के साथ रही, इसके बारे में शेष सभी कुछ अतिशयोक्ति है । मछुआरे की कन्या होने की कथा आख्या सत्य नही है । वह एक क्षत्रिय की कन्या थी जो कुछ प्रतिबन्धों के साथ सान्तनु से विवाह करने को सहमत हुई । भीष्म के सिवा अन्य कोई उनसे अच्छा क्षत्रिय धर्म का निर्वाह नही कर सका । राजा दशरथ के पुत्र राजा रामचन्द्र के बाद उनका उदाहरण दूसरा है । वेदों में भी बहुसंख्यक क्षेपक विकृतियाँ हैं,

१८–१०–४४ समय बहुत शीघ्रता से रुप बदलता जा रहा है । ब्रिटिश का भाग्य सितारा धूल में मिल चुका है । प्रकृति की विभिन्न कार्य शक्तियाँ देश में राजनैतिक परिवर्तन को प्रभावी करने के लिये नियत कर दी गयी है । भगवान कृष्ण के अनुसार

लिखाये गये सहजमार्ग के सिद्धान्त:-सच बोलने की आदत डालें, बच्चों से प्रेम करें । बड़ों का सम्मान माता पिता की सेवा करें । ईमानदारी से निर्वाह करें, भावना में शुद्धता लाएं, दूसरों की सम्पत्ति का लोभ न करें, दूसरों को हानि न पहुंचाएं, दूसरों को चोट पहुंचाने वाला एक भी शब्द न बोलें, इसके साथ ही शत्रु का मुकाबला तलवार से भी करना मना नही है । लेकिन ध्यान रहे यह किसी की रक्षा के लिये होना चाहिये । पूज्य लालाजी ने यह और बताया कि एक ईश्वर के प्रति विश्वास सुदृढ़ होना चाहिये निष्प्रयोज्य उपासना की पद्धतियां नही अपनानी चाहिये । केवल उसकी उपासना की जानी चाहिये जो इसके योग्य हो अर्थात्/ईश्वर अलंकारिता से परे दूर रहना चाहिये गुरु का सम्मान करना चाहिये और दूसरों को लाभकारी व्यवहारिक नियमों का पालन करना चाहिये । अपना जीवन इतना सरल बना लो कि लोग दयाभाव का प्रभाव ग्रहण कर सकें, मूर्ति पूजा स्थूलता उत्पन्न करती है और हृदय को (मन को) नष्ट भ्रष्ट कर डालती है । अपने संगठन का नाम' सहज मार्ग' रखो । ध्यान रहे कि किसी मायावी प्रभाव को स्वीकृति/छूट न दी जाए, ताकि भविष्य में कोई कमी त्रुटि न आये ।

२४–१०–४४ लालाजी ने ब्रह्मांड, परम ब्रह्मांड एवं सत्यपद क्षेत्रों की प्रकृति के संबंध में अवगत कराया । उन्होंने कहा पहले प्रत्येक को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिये कि उसे इस विधि से लाभ हो रहा है । जब यह अनुभव सिद्ध होताहै तब उसे अपना विश्वास सुदृढ़ कर लेना चाहिये । चरित्र निर्माण का विशेष ध्यान रहे ब्रह्मचर्य (इंद्रिय संयम) भी अपेक्षित है ।

२५–१०–४४ लालाजी ने कहा कि एक विशिष्ट दशा मुझे प्रदान की गयी है और सभी संस्कारों से मुझे मुक्ति मिल गयी है ।

२६–१०–४४ अभ्यासियों को उच्च उपलब्धियां देने की विधि खोजी—
१– पहले पिण्ड देश के सभी बिन्दु शुद्ध कर लिये जाये, तब जिस उच्च विन्दु तक उन्नति देनी हो, विन्दुओं को चक्रो को शुद्ध अनावृत कर दिया जाय ।

२– अभ्यासी की दशा उसी सीमा तक अनावृत, प्रकाशित, उन्मुक्त करनी चाहिये जितनी कि उसके मन मस्तिष्क में सहन करने की क्षमता हो ।

२८–१०–४४ मथुरा से नीमसार जाने का आदेश मैंने प्राप्त किया भगवान कृष्ण ने अन्त: सम्पर्क किया और कुछ रहस्य प्रकट किये "वास्तव में मैं जमुना नदी को प्रेम करता था, इसके किनारे मैं बहुत खेला, यद्यपि इसका अस्तित्व नदी से अधिक कुछ भी नही है फिर भी दृश्य इतना जीवन्त है कि हर कोई भी मथुरा में रहना चाहेगा नदी का बहाव बदलने का प्रयास करो तुम्हारे सामने लाल मन्दिर जो है वह मेरा जन्म स्थान है । कंस के समय यही कारागार थी, मेरी मां इसी में बन्दी थी, नन्दगाँव में एक स्थान है धोबी घाट वहां तुम्हारे ससुर के घर के पास एक चट्टान है, कुब्जा

का कुआं, जमीन के समतल पट चुका है।

३०–१०–४४ आज ९-४५ प्रात: भाई क को ब्रह्मांड मण्डल की यात्रा पूरी करा दी गयी, और परम ब्रह्मांड के क्षेत्र में प्रविष्ट करा दिया गया लगभग १०-३५ मैंने भगवान कृष्ण से प्राणाहुति प्राप्त की, लगभग ७ मिनट। ४–६ मील तक जमुना के किनारे प्रकाशित करने के लिये मुझे निर्देशित किया गया, वृन्दावन में भी यही कार्य करने हेतु कहा गया। हृदय पर प्राणाहुति देने की एक विधि मैंने खोज निकाली, जिससे कि अध: पतन का भय कम रहता है और अन्तिम निर्गीत अवस्था, लक्ष्य तक पहुंच सुनिश्चित हो जाती है। प्राणाहुति देने वाले व्यक्ति को समय नियत करते हुए विचार निर्दिष्ट करना चाहिये ताकि आगे अधिक समय तक (प्राणाहुति) जरी न रहे, प्रशिक्षक की पहुंच के अनुसार यह विधि कार्य करेगी।

३१–१०–४४ लालाजी जी को अपनी समस्त संचेतनाओं पर सभी अवस्थाओं में में ऐसा अधिपत्य रहा कि वह सोते समय भी कार्य करते रहते थे। कृपापूर्वक उन्होंने वैसा ही अधिपत्य मुझे प्रदान किया है। और इसकी मुझसे परीक्षा भी ली। मैं केवल इतना ही जान पाया कि इस प्रकरण में मेरा उपयोग किया जा सकता है। उनकी कृपा से इस परीक्षा में मैं सफल रहा। लालाजी ने कहा, तुम्हारे जैसे व्यक्ति से गुप्त रहस्य छुपाना भी नितान्त कठिन है। क्योंकि तुम सदैव 'विचार' से सम्बद्ध रहते हो। और किंचित् भी असावधान नहीं रहते। सायं ५.३५ पर मेरा अंतिम बन्धन भी खोल दिया गया। और मैंने इसे बिना बताये ही जान लिया। लेकिन निर्धारित समय से पूर्व मुझे शरीर त्याग न करने हेतु सचेत कर दिया गया।

१–११–४४ ११-३५ दोपहर पर लालाजी ने मुझे सूचित किया कि उन्होंने समस्त शक्तियां जिनकी मेरे कार्य में आवश्यकता थी, हस्तान्तरित कर दी हैं। लालाजी:- प्रकृति के दो सिद्धान्त (नियम) हैं, एक धनात्मक (सृजनात्मक), स्त्रीरात्मक दूसरा ऋणात्मक, नकारात्मक, प्रलयमान। जब स्थूल (भौतिकता) तत्व बढ़ता है, तो यह इसी नैसर्गिक शक्ति से अपसृत (दूर) किया जाता है, (हो जाता है) अभाव, कमी, त्रुटि की पूर्ति, निराकरण करना धनात्मक सिद्धान्त है और यही सिद्धान्त सृष्टि के आत्मा से प्रचलित रहे हैं, जो भी अभाव त्रुटि कमी होती है, उसकी सम्पूर्ति भक्तों द्वारा होती है, और जब कोई भी अधिकता (अवांछनीयता) होती है तो इन्ही (भक्तों) के द्वारा उसका सन्तुलन समायोजन सम्पन्न होता है। प्रकृति के पास कोई हाथ पैर (कर्मेन्द्रियाँ) नही। यह एक यंत्रशाला है जो निरन्तर गतिशील रहती है। तुम प्रकृति की इस यंत्रशाला को क्षीण अथवा सशक्त करने की क्षमता रखते हो। जब प्रकृति की यंत्रशाला पूर्णरीत्या सशक्त होती है, तो इसे (सतयुग) अच्छाकाल –समय कहा जाता है। जिस सीमा तक यह निर्बल अशक्त हो जाती है उसी अनुसार पतन काल बुरा समय कहा जाता है। सतयुग त्रेता, द्वापर और कलियुग ये इसी सिद्धान्त के अनुसार बने। इस समय यह यन्त्र–

शाला ढीली है। इसे उपकरण अशक्त हो चले हैं। इसलिये प्रकृति इस ओर उन्मुख है। परिणाम स्पष्ट हैं। वस्तुत: प्रकृति में कुछ भी गुप्त, रहस्य नही। यह (प्रकृति) तो सरल एवं सीधी सादी है।

२–११–४४ जमुना नदी का बहाव बदलने और मथुरा को अन्तर्प्रकाशित करने हेतु आदेश मिले। रेलवे पुल के निकट मुझे एक स्थान दिखाया गया जिसमें एक छिपा हुआ, स्नानागार है। मुझे समस्त कार्य एक साथ ही आरम्भ न कर देने हेतु सचेत किया गया ताकि शारीरिक दबाव न पड़े। मैंने अनुभव किया कि विभिन्न चक्रों की कौन कहे, मैं प्रत्येक अंगोपांग से प्राणाहुति प्रदान कर सकता हूं, लालाजी ने इसकी संपुष्टि यह कहते हुये की कि मैं दिव्य ऊर्जा का अजस्र भंडारागार बन चुका हूं यहाँ तक कि यदि मैं अपनी उंगलियों से भी इंगित दूं तो प्राणाहुति प्रारम्भ हो जायेगी। ३–११–४४ ८.०० बजे सायं पर मुझे सूचित किया गया कि मथुरा में कार्य करने हेतु मेरा क्षेत्र तैय्यार कर दिया गया है और यह भी अवगत कराया गया कि कार्य में विलम्ब नही होना चाहिये।

४–११–४४ मथुरा के लिये प्रस्थान —

५–११–४४ वृंदावन का प्रत्येक स्थान अन्तर्प्रकाशित कर दो वृंदावन में राधा कुंड नामक एक स्थान है, उस स्थान पर निश्चय ही पहुंचना और पवित्र कर देना। भगवान कृष्ण ने मुझे सम्मति दी, कि पवित्र स्थानों की खोज में मुझे जैसी कि लालाजी आज्ञा देते हैं तदनुकूल ही करना चाहिये। लालाजी महाराज ने किसी को भी प्राणाहुति देने से मना कर दिया जब तक कि वे स्वयं ही मुझे आदेश न करें। मुझे बताया गया कि कुब्जा के कुयें के पास बैठे हुए मैंने जो दशा अनुभव की थी वह उस स्थान के प्रभाव के कारण थी। दशा संवेगात्मक थी और विचार सघन केन्द्रीभूत होने लगा था। उस समय हृदय प्रेम से आकंठ आपूरित था। मैंने अनुभव किया कि स्थान ध्यान के लिये उपयुक्त है। बहुतेरे ऐसे स्थान है जिन्हें लोग नही जानते यहां कृष्ण की दिव्यता पग–पग पर आपूर्य माण है। और धरातल से इसका प्रसार होने लगा है। कुब्जा के कुएं का नक्शा दिखाया गया।

६–११–४४ भगवान कृष्ण:—द्वारिकाधीश के मन्दिर के सामने एक स्थान है। जिसे देखना आवश्यक है। जहां कि इस समय तुम बैठे हो। वहाँ से हाथ भर दूर मेरा नार गाड़ा गया था। तुम्हारे गुरु ने तुमको भलीभाँति पथ प्रदर्शन दिया है। और तुम बिल्कुल ठीक स्थान पर बैठे हो।

७–११–४४ वृन्दावन के जितने अधिक सम्भव हो सभी मन्दिर देखने के लिये मुझे आदेशित किया गया। लगभग सभी मन्दिरों में वातावरण शुद्ध, साफ था। मैंने कल वृन्दावन से प्रस्थान करने का विचार किया।

८–११–४४ मथुरा वापिस आया। भगवान कृष्ण ने मेरे कार्य के प्रति अपनी

प्रसन्नता प्रकट की । उन्होंने कहा, समस्त मथुरा संतत्व की स्थिति में थी । मथुरा के भक्त को आदेश दिया गया कि जहाँ भी मैं जाऊं, वह मेरी सुरक्षा व्यवस्था तीन माह तक करें । मथुरा के कई स्थानों को देखने का आदेश मुझे नहीं दिया गया क्योंकि इससे मेरे जीवन को खतरा होता। जहां मैं ठहरा उन सभी स्थानों को अन्तर्प्रकाशित करने हेतु मुझे आदेश दिये गये ।

९–११–४४ गोवर्धन पहुंचा । मुझे सभी स्थानों में जहाँ से कि मैं गुजरूं, प्राणाहुति से सम्पृक्त कर देने हेतु आदेश दिये गये । जिन प्राकृतिक दृश्यावलियों को मुझे प्रकाशित करना था, उसके मानचित्र प्रदर्शित किये गये । मैंने सोचाकि गोवर्धन पर जूते पहने हुये चढ़ना असभ्यतापरक है इसलिये जूते उतार दिये । महाशून्य से एक विराट धारा मेरे अन्तरम में प्रविष्ट हो गई जिससे कि समग्र पर्वत प्रकाशमान (आभायित) हो उठा । वहां सम्यक् शान्ति विद्यमान थी । इस क्षेत्र के लिये मुझे सृजन एवम् प्रलय दोनों का कार्य भार सौंपा गया । मुझ आदेश दिया गया कि राधाकुण्ड प्रकाशित कर दिया जाये । मुझे अपने पैर इसमें धोने हेतु आदेशित किया गया ।

१०–११–४४ मथुरा एवम् अन्य स्थानों पर मेरे कार्य की लाला जी ने सराहना की ।

११–११–४४ मथुरा में अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो गया । महावन जाने का कार्य–क्रम मैंने स्वास्थ्य में गड़बड़ी होने के कारण स्थगित कर दिया ।

१३,१४–११–४४ महावन के सम्बन्ध में—यही वह स्थान है जहां कृष्ण गायों और ग्वालों के साथ बैठा करते थे । गायें उनके चारों ओर घेर कर बैठती थीं । गायों के झुण्ड के साथ इसी टीले पर वह बैठा करते थे । उस समय यह टीला बहुत बड़ा था । जब मैं टीले पर गया, मैंने देखा कि भगवान कृष्ण टीले के शिखर पर वंशी बजाते हुये विराजमान हैं और गायों के झुण्ड उनके चारों ओर बैठे है । इसके नीचे वे गायें थीं जो पूर्ण स्वस्थ एवम् हट्टी कट्टी थीं । इस स्थान का दृश्य नितान्त मनोरम रहा । कृष्ण जी ने मेरी उपलब्धियों को संपुष्ट किया मेरे विचार शान्त थे । मेरे प्रयत्न से भी विचार उभर नहीं रहे थे ।

१६–११–४४ नन्दगांव के कुछ पवित्र स्थान देखे । मुझे रामेश्वरम् तक जाने के लिये आदेश दिये गये । समय परिवर्तन हो रहा है–और मुझे कई महत्वपूर्ण कार्य सौंपे गये । लाला जी—प्रकृति की समस्त शक्तियां तुम्हारे निर्देश पर क्रियाशील होंगी । यात्रा के मध्यान्तर इनके सम्बन्ध में विस्तार से ज्ञात हो जायेगा । धरती की हरियाली क्षीण हो रही है तीर्थ स्थान भ्रष्ट हो गये हैं । नैतिक अध:पतन अपनी सीमा पर है । लोग इच्छा, वासना के गुलाम होते जा रहे हैं । जाति अभिमान बढ़ रहा है । सहानुभूति तिरोभूत हो रही है । स्वार्थपरता विकसित हो रही है । छल छद्म मानव के मनमस्तिष्क में समाया पड़ा है । संभवत: जो भी कमियां हों, तुम्हें सभी का निराकरण करना है । तुम्हें समय–समय पर सुझाव मिलते रहेंगे । पुन: मुझे अपना कार्य दक्षिण से आरम्भ करने हेतु आदेश दिये गये । श्रीकृष्ण जी ने कहाकि दक्षिण का

भूभाग ही सर्व प्रथम समुद्र गर्भ से प्रकट हुआ था। और भारतीय संस्कृति पहले वहीं से आरम्भ हुई।

१८-११-४४ मथुरा की यात्रा सम्पन्न होने को हुई।

२२—११—४४ एक महान भूल जो सामान्यतधा हो जाती है। वह यह है कि छोटे (कम उम्र के) लोगों से निर्देश प्राप्त करना सम्मान के विरुद्ध समझा जाता है। आध्यात्मिकता में आयु का कोई महत्व नहीं। लाला जी ने-सत्संगियों में कार्य विभाजन करने हेतु कुछ निर्देश दिए। उन्होंने आश्वस्त किया कि जब भी मैं घर से बाहर रहूंगा मेरे घर और बच्चों की देखभाल की जाती रहेगी।

२४-११-४४ विभिन्न अवस्थाओं/स्थितियों पर लोगों ने आध्यात्मिकता को परिभाषित करने के प्रयास किये, उन्होंने इसकी परिभाषा अपनी दशा/स्थिति के अनुसार प्रस्तुत/व्यक्त की। लेकिन यह तो इतना सरल (सहज) पथ है कि इस पर चलने में सभी झाड़ झंखार, कांटे खुबड़े, उतार चढ़ाव आदि विचार से निकल से जाते हैं, और विचार इस प्रकार सुस्थिर हो जाते हैं कि अन्येत्तर कोई चेतना सजगता नहीं रहती। आखों के सामने कोई विन्दु/ग्रंथि नहीं होती। न तो बच्चों का ही विचार न ही कोई स्वत्व चेतना (अहम्मन्यता), वास्तविकता की भी कोई सजग चेतना नही। यह अत्युच्च अवस्था है जो बिरले ही उपलब्ध करते हैं। और वस्तुतः यही आध्यात्मिकता है। इस दशा को प्राप्त करने पर समस्त पंचेन्द्रियां अपने भूलोद्गम केन्द्र में लय हो जाती हैं। और मृत्यु की सी स्थिति की अनुभूति सबलता आविर्भूत होती है। धन वैभव आदि का परिग्रह उसे अनुभव चेतना में नहीं होता दूसरे शब्दों में ऐसा हो जाता है जैसे कि वह शाश्वत सत्ता से प्रथम बार अवतरित होने के समय रहा था।

२५-११-४४ राजनैतिक परिवर्तन करने हेतु भी मुझे आदेशित किया गया। इस कार्य प्रयोजन हेतु लाला जी ने पर्याप्त लम्बी अवधि तक मुझे प्राणाहुति दी। मुझे अनुभव हुआ कि मेरी देह के कण-कण में रग रग रोम रोम में शक्ति आपूर्यमाण हो रही है। अपने देश की सभी आध्यात्मिक संस्थाओं और सन्तों को देखने हेतु मुझे अनुमति मिल गई, लाला जी ने स्त्रियों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में कुछ निर्देश दिए।

मुझे प्रकृति की विभिन्न शक्तियों से कार्य लेने हेतु सम्मति दी गई।

१—इन्द्रः—दिन के समय इन्द्रियों को शक्ति प्रदान करता है। वह पूर्व दिशा का स्वामी है। पूर्वांचल का अधिपति देव है (इन्द्र)।

२—यमः—यह दक्षिण प्रदेश का शास्ता है। इसका कार्य विनाश करना है।

३—वरुणः—यह पानी का नियंत्रक है। सागर सरिता आदि इसके अधिपत्य में हैं। यह पश्चिम दिशा का स्वामी है।

४—आदित्यः—यहप्रकाश (ऊर्जा) देता है। यह इन्द्रियों एवम् अंगोपांगों को गति देता है।

५—कुबेर:—यह धन वैभव का स्वामी है। यह उत्तर का शासक है।
६—चन्द्रमा:—यह गुण धर्मिता प्रदान करता है और शीतलता/सौम्यता में वृद्धि करता है। यह इन्द्रियों में रात को भाव संवेग का संचार करता है।
७—अग्नि:—यह सृष्टि को सुदृढ़ रखता है, यह भोजन को पचाता है दक्षिण पूर्व दिशा का यह स्वामी है।
८—वायु:—यह जीवन तत्व है। यह मूर्तत्व प्रदान करता है। उत्तर पश्चिम दिशा का शासक है।
९—आकाश:—ऊपरी क्षेत्र (उच्चस्थ लोक)
१०—पाताल—निम्नस्थ जगत—शेष का क्षेत्र
११—ईशान—उत्तर पूर्व दिशा का स्वामी

१० या एक दो दिन बाद १२ दिसम्बर तक रामेश्वरम् के लिये प्रस्थान करने हेतु मुझे आदेशित किया गया।

२८—११—४४ 11.44 दोपहर कुछ दीक्षा सम्बन्ध सूत्र (Initiations) विच्छिन्न कर दिये गये, यात्रा के समय कार्य सम्पादन हेतु कुछ निर्देशक सिद्धान्त अवगत कराये गये।'

१-१२-४४ दिसम्बर ४४ (Inter ccmmene) श्री राधा जी ने अन्त:सम्पर्क सम्पर्क किया। और अपनी कुछ स्मृतियों से मुझे अवगत कराया। स्वामी विवेकानन्द ने अन्त: सम्पर्क किया। और मेरी अवस्था पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। मेरे कार्य को भी सराहा। राधा जी और स्वामी विवेकानन्द दोनों ने बताया कि उनके द्वारा अभ्यास में लाई गई विधि वही रही, जो हमारी संस्था में अपनाई जा रही है। स्वामी विवेकानन्द ने अपनी संस्था की देखरेख और कल्याण करने हेतु मुझे कहा।

२-१२-४४ कबीर साहब ने अपना पंथ (संदेश) ठीक करने हेतु कहा।

४-१२-४४ स्वामी विवेकानन्द ने अपनी समस्त शक्ति (शक्तियां) हस्तांतरित कर दीं। मुझे आध्यात्मिक कार्य निमित्त अगस्त मुनि ने अवगत कराया कि उन्होंने दक्षिण में मेरे कार्य हेतु क्षेत्र तैयार कर लिया है। और यह भी कहा कि मुझे शीघ्रातिशीघ्र वहां के लिये प्रस्थान करना चाहिये।

५—१२—४४ स्वामी विवेकानन्द ने आश्वस्त किया कि जब कभी मुझे सहायता की आवश्यकता होगी, वह उपस्थित होंगे।

६—१२—४४ स्वामी विवेकानन्द ने मुझे सौंपे गये अतुल उत्तरदायित्व का स्मरण दिलाते हुये मुझे सक्रिय (क्रियाशील) रहने की सम्मति व्यक्त की। तुम्हारी यात्रा की अवधि (समय) का उपयोग कार्य के हित में होना चाहिये। तुम्हारे सामने महान कार्य हैं। तुम्हें इसे अपने जीवन में ही सम्पन्न करना है। यात्रा काल में क्षण क्षण पर तुम्हें सम्बन्धित निर्देश मिलते रहेंगे।" उन्होंने कहा—

११–१२–४४ चैतन्य महाप्रभु ने कहाकि उनकी आशाएं मुझ पर निर्भर हैं और यह आकांक्षा व्यक्त की, कि उनका कार्य भी मैं ग्रहण कर लूं। उन्होंने मुझे उड़ीसा जाने को कहा– । स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि धर्म जिस रूप में इस समय प्रचलित है उसे आध्यात्मिकता से स्थानापन्न कर दिया जाना चाहिये । शुद्ध आध्यात्मिकता ही रहनी चाहिये और सभी अनावश्यक अवांछनीय तत्व तिरोभूत हो जाने चाहिये । हमारे देशवासियों की पश्चिमी संस्कृति की ओर प्रवृत्ति के प्रति उन्होंने असंतोष व्यक्त किया ।

१३–१२–४४ स्वामी विवेकानन्द ने मेरे कार्य की सफलता से प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया, केवल आध्यात्मिकता से कुछ नहीं उपलब्ध किया जा सकता इसके पार्श्व में नैतिकता सदाचारी भी होना चाहिये ।

१४–१२–४४ आज दक्षिण भारत के लिये प्रस्थान ।

१७–१२–४४ मदरास पहुंचा, मार्ग का दक्षिणी भाग अन्तर्प्रकाशित करने हेतु मुझे आदेश प्राप्त हुये । मैंने आध्यात्मिकशालीनता का आनन्द अनुभव किया ।

१८—१२—४४ नगर के अन्तर्प्रकाशन का कार्य सम्पन्न कर लिया । रामकृष्ण मिशन के अध्यक्षा से नही मिल सका । कल मुझे रामेश्वरम् के लिये प्रस्थान करने का आदेश मिला ।

२२—१२—४४ (रामेश्वरम्) स्वामी विवेकानन्द ने मुझे यह कहते हुये कि मेरा सारा कार्य प्रसंशनीय रहा, धन्यवाद दिया । लाला जी ने मुझे आदेश दिये कि केवल मन्दिर ही नहीं मुझे इतस्तत: परित:, आभ्यन्तर, वाह्य प्रत्येक स्थल को अंतर्प्रकाशित नवजागरित करना है ताकि तीर्थ यात्री लाभान्वित हो सकें । मुझे बताया गया कि धनुषकोटि जाना आवश्यक नहीं, लेकिन अन्य सभी स्थानों को देखना चाहिये ।

मुझे सम्मति मिली कि जो कहा जाये वही किया जाये । जो किया जाये वही कहा जाये मुझे यह भी सम्मति दी गईकिजोमैं उपयुक्त कल्याणकर (भला) समझता हूं उस पर दृढ़ रहूं

२३–१२–४४ स्वामी विवेकानन्द ने लंका के संत (ऋषि) को बुलाने हेतु सुझाव दिया, यदि किसी प्रकार भी सुरक्षा की आवश्यकता पड़े । रामेश्वरम् का मंदिर उजड़ी दशा में था, मुझे अनुभव हो रहा था कि कोई मृत्यु हुई है यहां लक्ष्मी कुण्ड, सीताकुण्ड, रामकुण्ड आदि जागरित कर दिये गये । चूंकि मेरे पास पैसा (धन) था अतएव मुझे कमरे के अन्दर सोने का आदेश मिला । जहां कि रात को मैंने निवास किया । लेकिन मच्छरों के कारण मैं सो नहीं सका । इसलिये लाला जी की अनुमति से मुझे बाहर बरामदे में सोने को विवश होना पड़ा । उस समय लंका के ऋषि ने मुझे अवगत कराया कि जब तक मैं रामेश्वरम् में रहूंगा, वह मेरी रक्षा करते रहेंगे ।

२४—१२—४४ मुझे बताया गया कि रामेश्वरम् में अधिक समय रहना आवश्यक नहीं, क्योंकि कार्य सम्पन्न हो चुका है । कल से मुझे लंका का कार्य लेना है ।

२५–१२–४४ लंका को अत्यधिक प्राण संचार किये जाने के प्रति लालाजी ने मुझे सचेत किया । ऐसा न हो कि लोगों के विचार ही समाप्त हो जाएं । मैं मदुराई पहुंचा । नगर को प्राण पूरित करने के उपरांत कल त्रिवेन्द्रम् जाने हेतु मुझे आदेशित किया गया ।

२९–१२–४४ त्रिवेन्द्रम:–चूंकि पेट में दर्द हो रहा था अत: यात्रा संक्षिप्त कर सीधे मैसूर जाने और वहां से हैदराबाद पहुंचने हेतु आदेश मिले लेकिन मैंने कन्याकुमारी (सेपकुमारी) तक जाने का निश्चय किया, और तब लौटना होगा ।

३०–१२–४४ केपकुमारी पहुंचा । वातावरण को संचरित किया और कल से कार्य करने का निश्चय किया ।

३–१–४५ मैं बंगलोर पहुंचा, चूंकि मैं नितान्त थका हुआ था अत: एक दिन बंगलोर में विश्राम किया । मैसूर राज्य में आध्यात्मिक कार्य हेतु विशाल (विपुल) क्षेत्र है । स्वामी विवेकानन्द ने अवगत कराया कि हैदराबाद में भी अनेकों लोग मिलेंगे किन्तु उनके मानस को तैयार (ढालने में) करने में समय लगेगा ।

४–१–४५ मैसूर पहुंचा, कुछ सम्भ्रान्त व्यक्तियों से भेंट करने को मुझे सम्मति दी गई और यदि चाहूं तो क्षेत्र में आध्यात्मिक कार्य करने हेतु कुछ व्यक्तियों का चयन करने हेतु निर्देशित किया गया ।

७–१–४५ हसन के लिये प्रस्थान । वेलूर मन्दिर को आध्यात्मिक शक्ति से आपूरित कर दिया ।

१०–१–४५ दक्षिण हैदराबाद पहुंचा । हैदराबाद में कार्य करने हेतु प्रकृति की विशिष्ट शक्ति मुझे प्रदान की गयी ऐसा कहा जाता है कि सामान्यतया यह शक्ति अवतार के लिये प्रदान की जाती है । किसी भी भक्त ने अब तक इसे उपलब्ध नहीं कर पाया । परिणित (परिवर्तन) से वायु एवं वातावरण को सम्पृक्त कर दिया ।

१४–१–४५ उत्तर भारत में कार्य करने हेतु आदेश प्राप्त हुये और दक्षिण भारत का भ्रमण सम्पन्न कर दिल्ली पहुंचने के निर्देश मिले । अजन्ता देखने की मुझे सम्मति दी गयी ।

१९–१–४५ मनमद से बाम्बे तक समग्र क्षेत्र अन्तर्प्रकाशित करने हेतु आदेश प्राप्त हुये ।

२१–१–४५ जब सूरत स्टेशन निकल गया तो गुजरात को भी अन्तर्जागरित करने हेतु आदेश मिले ।

२३–१–४५ भगवान कृष्ण ने द्वारिका को अन्तर्प्रकाशित करने हेतु मुझे आदेश दिये उन्होंने कहा, यहां इस क्षेत्र का कुछ भाग समुद्र के गर्भ में समा चुका है । 'ओखा' किला जाना और उस भाग को अन्तर्प्रकाशित करना ।

२४–१–४५ द्वारिका पहुंचा, मन्दिर को अन्तर्प्रकाशित किया । मथुरा को प्रस्थान ।

२९–१–४५ मथुरा पहुंचा ।

३१–१–४५ अब तक जो कार्य मैंने सम्पन्न किये भगवान कृष्ण ने उनकी सराहना की। उन्होंने मुझे सुझाव दिया कि उत्तरी भारत का आध्यात्मिक कार्य दिल्ली से आरम्भ किया जावे।

२–२–४५ शाहजहाँनपुर पहुंचा। लाला जी ने सम्मति दी कि मुझे आध्यात्मिक प्रशिक्षण के लिये प्रणाली बद्ध संगठन स्थापित करना चाहिये। उन्होने मुझे यह भी सुझाव दिया कि कुछ ऐसे व्यक्ति ढाले जाएं जो कि मेरा अनुसरण सर्वोपरि कर्तव्य भावना से करते हुये मेरे उत्तराधिकारी और प्रतिनिधि बनें। उन्होंने निम्नानुसार इंगित दिये। "जो संस्था स्थापित करें उन्हें चाहिये कि पहले वे स्वयं को वैसा ही ढाले जैसी कि दूसरों को ढालने की अपेक्षा रखते हों। मैंने अपने सारे जीवन भर यही किया। जो मैं दूसरों से करने की अपेक्षा रखता था उसे पहले मैंने स्वयं किया एक बात कभी नही भूलना चाहिये कि बाहरी या भीतरी कोई भी दोष यदि सिखाने वाले में है। तो वह अभ्यासी में भी जो सिखाने वाले के स्वरुप पर ध्यान करता हूं। प्रविष्ट कर जाएगा। अतएव केवल उसके ही स्वरुप पर ध्यान करना चाहिये जिसकी चित्तवृत्ति सन्तुलित हों। और उसे उन कमियों से जो आध्यात्मिकता के लिये हानि कर अथवा नैतिक जीवन में अवांछनीय है। मुक्त होना चाहिये। मैं समझता हूं, प्रत्येक अभ्यासी को जब तक सिखाने वाले को स्वत: ही वह स्थिति न उपलब्ध हो उसके स्वरुप (आकार) पर ध्यान करने को नहीं कहना चाहिये।"

४–२–४५ पूज्य लालाजी ने स्वामी विवेकानन्द से सम्मति लेने हेतु आदेश दिया। स्वामी विवेकानन्द :—"देखिये! तुम्हारे सामने एक विशाल (विराट) क्षेत्र है। तुम्हारे कार्य में आज से मैं सहायता करूंगा। मैं इसे अपना काम समझता हूं। और कर्तव्य भी। आज तुम्हारे गुरु ने अपने कार्य का अधिभार मुझे सौंपा है वह नियामक शक्ति रहेंगे। इस कार्य के सम्बन्ध में तुम्हें सीधे, समादेश प्राप्त होंगे। जैसा मैं तुम्हें बताउं अपने सहयोगी, साथियों को वैसे ही निर्देशित करना नकारात्मक विचार सर्वथा भूल जाना चाहिये। पहले तुम्हें अपने बन्धुओं को उपयुक्त बनाना सुधारना चाहिये। जो कि उच्च स्थितियों का आनन्द ले रहे हैं फिर अपने को कार्य में निरत करना है। मन की अस्थिरता सफलता के मार्ग में एक व्यवधान है, मैं कार्य के लिये दृढ़ विचार एवं सबल इच्छा शक्ति से सम्पृक्त व्यक्तियों को चाहता हूं।" तब लालाजी ने बताया कि उन्होंने विवेकानन्द को इस कार्य का सम्भार सौंपा है, जो आवश्यकतानुसार इसे यथानुरुप करते रहेंगे। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि स्वामी विवेकानन्द के आदेशों का परिपालन हमें करना चाहिये। अन्यथा इससे वह (लालाजी) अप्रसन्न होंगे। उनकी (लालाजी की) अप्रसन्नता का कारण बनेगा। उन्होंने सचेत किया कि बहुधा कुछ अभ्यासी/सत्संगी अपनी पुरानी आदतों/दशाओं में ऐसे आबद्ध घिरे रहते है कि वे दूसरों को आकर्षित नही कर सकते। उन्होंने कहा कि वह पहले अपने लोगों के प्रति कठोर होंगे जिससे ऐसा न हो कि वे अपने को

इस सीमा तक गिरा लेवे कि जिससे आने वाला प्रत्येक परिवर्तन उनके लिये व्यर्थ हो जाए। इस नाशवान संसार में कोई भी अभाव, कष्ट से मुक्त नही रहा । सारतत्व वही रहते हुए भी स्वरुप बदलना ही था । लालाजी:–"क्या मैं कष्टों से मुक्त रहा? क्या विविध अभावो । कष्टों के होते हुये भी मैंने कर्तव्य नही किये। एक सुस्थिर व्यक्ति की इच्छा भी उस वस्तु की ओर उसे खीचती रहती है जिसके प्रति उसका मन सम्बद्ध हो जाता है और कमजोर हो जाती है। चाहे वह कितनी ही स्वच्छ/शुद्ध क्यों न हो । इसलिये यह आवश्यक है कि ऐसे विचारों को प्रवेश न देते हुये इच्छा (शक्ति) का सदुपयोग (इसी भाँति) करना चाहिये कि और समय की आवश्यकतानुसार स्वयं को ढाल लेना चाहिये। पुरानी आदतें समाप्त हो जानी चाहिये । ऐसी दशाएं उत्पन्न करनी चाहिये जिससे सफलता शीघ्रतया हो सके। उनके लिये मैं तुम्हें एक सहज विधि दिखाउंगा । यह (सहज विधि) प्रार्थना है । उनके विचार में जो भी विकार परिलक्षित होते हों, उन्हें ईश्वर के समक्ष प्रस्तुत कर देना है। और उनसे मुक्ति के लिये प्रार्थना करना है । साथ ही साथ उन्हें ध्यान का अभ्यास भी करना चाहिये। क्या शीतलक पदार्थ चन्दन अग्नि नही उत्पन्न कर देता है? तदनुसार स्वामी विवेकानन्द ने तुम्हे अनुमति दे दी और अपने पास ही एक शिला को निर्देष्ट किया। लेकिन कतिपय कारणों से तुमने ऐसा नही किया। तुमने मेरा नाम अमर बनाया है। और सन्त समाज की दृष्टि में तुम्हें अत्युच्च पद प्राप्त है। उच्च उपलब्धियों के सन्तों की सूची में तुम्हारा नाम अंकित होगा। तुम्हारे कार्य से सभी सन्त प्रसन्न थे। यह नितान्त गौरव का विषय है कि तुम्हारी घर पर अनुपस्थिति की अवधि में भगवान कृष्ण का चक्र तुम्हारे निवास पर घूमता रहा। और भगवान कृष्ण ने सुरक्षा कार्य अपने उत्तरदायित्व में तुम्हारे जाने के दिन से तुम्हारी वापिसी ९.३० प्रात:।

२–२–४५ तक ले रखा था।

५–२–४५ पूज्य लालाजी:—स्वामी विवेकानन्द को साथ लेकर मैंने सारे क्षेत्र का सर्वेक्षण कर लिया, बहुत वस्तुयें- बातें, पके हुए अल्सर (फोड़े) की भाँति पीव भरी हुई प्रतीत होती हैं। बहुत से लोग आज्ञाद शिखा- सड़ चुके हैं, और मुझसे विमुख हो रहे हैं, वे उनसे सहायता ले रहे हैं जो अपना सड़ा गला तत्व उन्हें भर रहे हैं। पीव इतना गहरे पहुंच चुका है कि बहुतेरे लोगो की नसकस में रोमरोम में प्रवेश हो चुका है, इसे बाहर निकालना सामान्य व्यक्ति के लिये सम्भव नही है। न ही इसे तब तक दूर किया जा सकेगा जब तक कि लोग अपने विश्वास की कड़ी तुमसे नही जोड़ेगे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है वे सभी पुराने सम्बन्ध तोड़े जा चुके हैं।"

६–२–४५ अवनति के तत्व समाप्त कर दिये जाएं, स्वामी विवेकानन्द ने आदेश किया और कहा कि मानव जाति के आध्यात्मिक अभ्युदय के लिये हमारे कुछ अध्या-

नोट :– पृष्ठ–४७ पर चौदहवीं और पन्द्रहवीं पंक्ति के मध्य में पढ़ा जावे ।

अभ्यासियों को स्वयं इस प्रकार ढालना चाहिये कि दूसरे उनकी ओर आकर्षित हो सके दूसरी बातों के बारे में मुझसे तुम कभी भी सलाह ले सकते हो मैं तुम्हें उत्तर दूंगा । मुझे भय है कि यह विष दूसरों में भी फैल सकता है । अत: मैं तुम्हें विशेष रुप से सावधान कर रहा हू, केवल आध्यात्मिकता कुछ अधिक उपयोगी नही होगी । और बहुत ही कम लोग इसकी पहचान कर सकते है सामान्यतया बाहरी संकेत चिन्हों और बातों, (गुणों) से लोग आन्तरिक दशा का अभिज्ञान करते हैं । दूसरों से वार्तालाप करते समय आकर्षक, नम्रता एवं समर्पण का भाव प्रधान रहना चाहिये । यह मैं सभी के लिये बताता हूं । यदि कोई व्यक्ति आध्यात्मिकता में उन्नति कर चुका है, लेकिन उसका चरित्र (आचार) संतोषजनक नही है तो मैं उसे पूर्ण नही मानूंगा । अपनी वस्तु प्राप्त कर लेना दूसरी बात है, और यह नितान्त भिन्न है । मैं उस व्यक्ति को स्वार्थी कहता हूं जो अपना कार्य तो सम्पन्न कर लें और दूसरों को सुधारने के लिये अपने को ढालने में असमर्थ रहे । यह शब्द कठोर प्रतीत हो सकते हैं । लेकिन यदि इसका अभ्यास किया जायेगा तो इसमें मृदुता (मधुरता) मिलेगी । यह शर्त प्रत्येक के लिये है ।"

दक्षिण में (कृत) कार्य का संक्षिप्त विवरण–

लालाजी ने निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश डाला जो दक्षिण का दक्षिण का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हैं:–

"तुमने ऐसे कार्य किये हैं जिन्हें देखने के लिये आँखें चाहिये । तुमने सभी प्राप्त आदेशों का पालन किया है । तुम्हारे काम की विशिष्टता यह रही कि तुमने कुछ वर्जक विन्दु सभी स्थानों पर बना दिये ताकि कृत कार्य को कोई मिटा न सके । तुम्हारी प्रतिभा प्रसंशनीय है और दूसरी सराहनीय बात यह रही कि तुमने निर्दिष्ट स्थानों को धरती के कई गज अन्दर तक अनुप्राणित कर दिया । तुम्हारे कार्य की विधि प्रशस्त है । नियत स्थान पर आने से पहले ही तुमने उस स्थान की अशुद्धि को खींच लिया और इसके साथ ही कितनी सुन्दर बात यह कि उस अशुद्धि को तुमने वातावरण में भी नही रहने दिया । उन अशुद्ध तत्वों को भी तुमने शुद्ध किया

है जिनको कि खींच कर बाहरी तल तक तुम ले आये ताकि विष न फैल सके। हाँ एक स्थान पर तुम निश्चय ही भूलकर गये, वह यह कि जब तुम द्वारिका गये तो तुमने अशुद्धियों को खीचा और उन्हें शुद्ध करने के स्थान पर पश्चिम को स्थान्तरित कर दिया। यद्यपि कि अब मैं इसे भूल कहता हूं किन्तु उस समय मैंने भी यही चाहा। ऐसी विपुल शक्ति मन्दिर में सम्पूरित हो उठी है कि आगामी शतक तक समावेश की आवश्यकता नही है कुछ स्थानों पर जहाँ से तुमने भ्रमण किया ऐसी शक्ति आपूर्यमाण है कि वे स्थान ध्यान के लिये समुपयुक्त स्थल बन गये हैं। कुछ नगर तो इतने अधिक अनुप्राणित हो उठे हैं कि दीवारें और दरवाजे भी प्रभावित प्रतीत हो रहे है। एक बात सराहनीय यह है कि तुमने वातावरण के प्रत्येक कण परमाणु को अनुप्रमाणित कर दिया है और ऐसा वर्जक बिन्दु भी स्थापित कर दिया है कि कोई इसे अशुद्ध न कर सके। कुछ स्थानों पर ऐसा हुआ कि नगर के समस्त लोग आध्यात्मिकता की सभी दशाएं पार कर जाते लेकिन मैंने ऐसा इसलिये नही चाहा कि प्रकृति कार्य ही समाप्तप्राय हो जाता, और विविधता जो प्रकृति का मूल है, नही रहती लंका में एक मिनट के अन्तराल में सम्पन्न किया तुम्हारा कार्य दूसरे किसी द्वारा हजार वर्ष में भी नही किया जा सकता था। इतना दुष्कर कार्य करते हुये भी तुम्हें यह विचार भी नही हुआ कि तुमने इसे सम्पन्न कर लिया है। जब तुम केपकुमारी में पहुंचे तो तुम्हारे अन्तरम् में एक इच्छा उत्पन्न हुई कि एक शिला को इतना अधिक अनुप्राणित कर दिया जाय कि इसका उदाहरण कठिनता से मिल सके।

त्मिक व्यक्ति प्रोत्साहित किये जाने चाहिये, उन्होंने सुझाव दिया कि प्रत्येक को दृढ़ इच्छा शक्ति एवं अदम्य साहस का विकास करना चाहिये।

७–२–४५ भगवान कृष्ण :—संसार में परिवर्तन की आवश्यकता है, हमारा देश शुद्ध बना होना चाहिये। इस कार्य को करने में केवल तुम्हीं सक्षम, योग्य होगे। तुम्हारी पहुंच लगभग केन्द्र तक है।। तुम्हारा इस (केन्द्र) से सम्बन्ध भी स्थापित हो गया है।

८–२–४५ पूज्य लाला ने मुझे भगवान कृष्ण को आवश्यकता पड़ने पर सम्पर्क करने हेतु आदेश दिये, और कहा–"तुम्हारे पास अनेकों शक्तियां है जिनकी तुम्हें चेतना (ज्ञान) नहीं। इसका कारण यही है कि तुम मुझमें इस सीमा तक लय हो चुके हो कि, तुम इन सबकी अनुभूति नहीं कर पा रहे। मैं चाहता हूं कि जब तक विशिष्टतया आदेश न किया जाय, तुम्हें गुस्सा होकर असंयत नहीं हो जाना चाहिये तदनुसार मैंने तुम्हें ढाल भी लिया है। मैं यह भी चाहता हूं कि जितना आवश्यक हो उससे अधिक तुम्हें नहीं करना चाहिये। यदि मैंने किसी अन्य को यह सामर्थ्य दे रखी होती, तो उसने प्रलय ही खड़ा कर दिया होता। लेकिन आदेश केवल तुम्हारे ही लिये थे, और इसीलिये तुम्हें एवं विधि तैयार किया गया। यह शक्तियां किसी को भी नहीं दी जा सकती। आध्यात्मिक उत्तराधिकारियों को भी नहीं, वस्तुतः सर्वोच्च योग्यता के गुरु में भी यह शक्तियां नहीं होती। यह शक्तियां सृष्टि के आरम्भ से ही सुरक्षित रखी रहीं, मैं अब तक इन शक्तियों को संचय किये हुए रहा। एक चीज (बात) जो अन्यत्र अप्राप्य है वह यह कि तुमने मुझे हर सम्भव रीति से सर्वाधिक प्रेम किया है और इसी का यह परिणाम मैं तुम्हें इस अवस्था में देख रहा हूं। केवल प्रेम ही मूल वस्तु है, तुम्हें अपने साथियों में प्रेम का समावेश करना चाहिये। प्रेम से सभी कुछ उपलब्ध हो सकता है। इसकी तुलना में ध्यान व अन्य अभ्यास अधिक महत्वपूर्ण नहीं। आज मैंने तुम्हें बहुत सी गुप्त बातें अवगत कराई तुमने प्रकृति को इस भाँति अपने अधीन कर लिया है कि अपनी इच्छानुसार तुम इसे सीधे समादिष्ट कर सकते हो। (आज्ञा दे सकते हो) लेकिन यह तुम्हारी शालीनता है कि तुम कभी मुझे नहीं छोड़ते। हम (परस्पर लिये) एक दूसरे के अपरिहार्य बन गये है। यह उदाहरण अनुकरणीय है।

९–२–४५ मैंने अपने दिवगंत पिता को प्राणाहुति दी, लालाजी ने मुझे अवगत कराया कि बिना जाने हुये मैंने असीम शक्ति आपूरित कर डाली है—और यह कहा कि अकस्मात् आगे जब तक आदेश न किया जाय, मुझे प्राणाहुति नहीं करनी चाहिये। मेरी अस्वस्थता के होते भी मेरे द्वारा कृत कार्य की स्वामी विवेकानन्द ने सराहना की पूज्य लालाजी:—"अमुक म के संस्कार भोगने के लिये तुम्हें उनको भोगना आरम्भ करना है। इसका कुछ भाग तुम भोग भी चुके हो। आवश्यकता

इसलिये हुई कि तुम्हारे बहुत कम संस्कार शेष रह गये, और कार्य हेतु बहुत कुछ शेष है। 'म' के संस्कार ग्रहण कर लेने से उसे कष्ट से मुक्ति मिल जायेगी। और तुम्हारा जीवन लम्बा हो जायेगा, जिससे कि किये जाने वाले कार्य को तुम पूरा कर सकोगे। मैंने स्वयं तुम्हारे संस्कारों को अपने जीवन काल में भोगा है। "ऐसा समुपयुक्त ढला हुआ मस्तिष्क अब तक अस्तित्व में नही आया। भविष्य में भी इसकी आशा नही। इसलिये मैं सभी आबाल वृद्ध को तुमसे पूर्णरीत्या लाभान्वित होने की सम्मति देता है। आध्यात्मिकता के अन्तर्गत वे शंकाएं और कठिनाइयां जिनका निराकरण अब तक नही हो सका था तुमसे हल की जा सकती है। यह अवसर पुनः नही आयेगा। और नही ऐसे व्यक्तित्व के संसार में पुनः अवतरित होने की सम्भावना है। अतएव इस अवसर का पूर्ण सदुपयोग उन्हें करना चाहिये। मै-उन्हें आश्वस्त भी करता हूं कि इस हेंतु प्रकृति का विशिष्ट प्रयोजन है और तुम्हारे द्वारा उसकी सहायता प्राप्तव्य है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा, कि ईसा मसीह उनके साथ थे उन सबने मुझे कुछ कार्य सौपने का निर्णय लिया है। अन्ततः यह निष्कर्ष (अभिमत) प्रकट किया गया कि योरोप की सभ्यता जो उन्नति के चरम और विनाश की कगार पर है, अब और अधिक अस्तित्व में रहने वाली नही।

११-२-४५ दीक्षा विधि (अभ्यास करने की आरम्भिक स्थिति) मुझे बताई गयी।

१२-२-४५ विभिन्न उच्चस्थ क्षेत्रों को पार करने की विधि सरल बना दी गयी। इस विधि से व्यक्ति उच्चतम अनन्त शाश्वत स्थिति तक पहुंच सकता है।

१३-२-४५ (८.३० प्रातः) मेरे जीवन में एक नवीन दिशा-परम शाश्वत सत्ता से सीधे दिव्यता (कृपा) प्राप्त की। इसका आशय यह है कि मैंने परम शाश्वत वास्तवत्ता से नितान्त घनिष्ठ एवं अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। इसके लिये महानसन्त आकांक्षी रहे। भगवान कृष्णः— "भक्तों की श्रेणी में तुम्हारा सर्वोपरि स्थान (पद) है। तुमने वह सब कुछ कर दिखाया है। जिसकी किंचित् मात्र भी चेतना (विचार) तुम अब भी अनुभव नही करते हो। राधाजी का तुम पर अपार स्नेह है। तुम कितने सौभाग्यशाली हो कि उन्होंने तुम्हें अपना पुत्र बना लिया। तुम्हें भी उनसे मां के समान प्रेम करना चाहिये। स्वामी विवेकानन्द :-"हमारी प्रसन्नता असीमित हो चली है तुम्हें राधाजी का प्रेम प्राप्त हो गया। मैं उस मानव को अंधा कहूंगा जो, तुम्हारे पास अध्यात्म्य प्रशिक्षण हेतु नही आता।

१४-२-४५ एक पृथक प्रकार का कार्य मुझे सौंपा गया। मैंने अनुभव किया कि कार्यभार बहुत अधिक था क्यों कि मुझे सहायता पहुंचाने वाला अन्य कोई आध्यात्मिकता में पूर्णरीत्या विकसित नही रहा। अतएव मुक्तात्माओ -स्वामी विवेकानन्द आदि ने सहायता दी।

१७-२-४५ आध्यात्मिक (संदेश) संस्था की संगठनात्मक रूपरेखा नियत कर उसे

आरम्भ करने का निर्णय लिया गया । पत्र व्यवहार एवं प्रकरण संदर्भों की प्रणाली भी नियत कर ली गयी । लालाजी ने मुझे पढ़ने लिखने के प्रसंगों से पृथक रखना चाहा, उन्होंने यह भी चाहा कि उनकी आज्ञा बिना कुछ न किया जाय । जो मेरे द्वारा दी जायेगी, स्व० वी० एव० ने मुझमें लय होना चाहा लेकिन पूज्य लालाजी ने इसे मेरी प्रार्थना पर रोक दिया, क्योंकि यह 'म' का अधिकार था ।

प्रश्न– मुक्तात्माएं अथवा दिवगंत सन्तात्माएं किस प्रकार सब कुछ जानती रहती हैं । जबकि उनके पास भौतिक देह नहीं होती ।

उत्तर– जब एक सन्त की आत्मा देह त्याग करती है, तो देह के साथ कार्य करने वाले अवयम मूलस्रोत में गुप्त रुप से लय हो जाते हैं । उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ प्रसुप्त अवस्था में रहती हैं । दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि वे मूल स्रोत से साय्युज्जता स्थापित कर लेते हैं । और जो चेतना-कण वहां मूलउद्गम स्रोत में होते हैं, वे आत्मिक (कारण) देह में समाविष्ट हो जाते है । (यहाँ शब्द, चेतना कण केवल भाव सुस्पष्ट करने के लिये प्रयोग किया गया है) मूल के लक्षण कहना अधिक उपयुक्त है । अतएव उसका अभिप्रसार उसके जीवन काल में ही इतना व्यापक होता है कि देह त्याग के उपरान्त भी उसकी व्यापकता यथापूर्ववत रहती है । इसे अनन्त की स्थिति कहा जा सकता है । अतएव उनकी उपस्थिति, आकाश अथवा वायु की भाँति सर्वत्र एक समान रहती है । अब यदि कोई शब्द उत्पन्न करता है या कोई विचार बनाता है तो इससे एक तरंग या स्पन्दन उत्पन्न होता है, उदा– हरणार्थ एक व्यक्ति कुछ देखता है, तो उसकी क्रिया में कुछ संवेग/अथवा, झटका धक्का, बल, रहता है, और चूंकि वह संवेदनशील है, इसलिये उसे लक्ष्य के प्रति सजगता रहेगी । यही कारण है कि मुक्तात्माएं प्रत्येक प्रकार का ज्ञान रखती रहती है, सब कुछ जानती रहती है ।

सृष्टि के सम्बन्ध में आख्या–

सृष्टि रचना के पूर्व शाश्वत मूल केन्द्र समझने के लिये एक कन्दुक (गेंद) के समान व्यक्त किया जा सकता है । जब सृष्टि रचना का समय आया, स्पन्दन उत्पन्न हुआ और एक प्रकार की इच्छा का जिसमें समावेश था, जब तक स्पन्दन होता रहा शक्ति अणु, परमाणु के रुप में रही । खनिज पेड़ पौधे एवं अमूर्त सत्ताएं (वस्तुएं) इस पर गुलाब की पंखुड़ी की भांति उत्पन्न हो गये । अर्थात् उनके लिये इच्छा करते हुये केन्द्र के अति निकटस्थ भण्डागार से प्रक्षेपित वे सभी वस्तुएं, प्रकट अस्तित्व में आ गई । और उन अमूर्त वस्तुओं में शक्ति सन्निहित थी और लक्षणात्मक प्रवृत्तिया गुण-धर्मिता भी जो मुख्य धारा में ग्रंथि के समान विद्यमान थी, शक्ति से सम्पृक्त रही जो केन्द्र के निकटस्थ ग्रंथियाँ बनी उनमें अधिक शक्ति संचय था, और केन्द्र की सूक्ष्मता उनमें अधिक मात्रा में थी ।

अब वह मानव अस्तित्व जिसमें कि धारायें सीमाएं बांधती हुई जुड़ी हैं, उसी अनुपात में जिसमें कि धाराएं अवतरित हुई, अपने साथ वही शक्ति लेता आया वही धारा समझने के लिये सूक्ष्म, सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम रुप में वर्गीकृत की गई । वह धारा जो मानव के साथ उतरी अब ऊपर की ओर बहेगी, अर्थात् विपरीत रीति से ऊपर चढ़ती हुई बहेगी ।वह सूक्ष्म स्थिति तक जो केन्द्र के निकटतम है पहुंचेगा । और जैसे जैसे वह उच्चस्थ स्थितियों में पहुंचता जाता है, उसकी शक्ति बिकसित होती रहती है । लालाजी ने निम्नलिखित प्रश्न समस्या समाधान के लिये प्रस्तुत किये ।

१– आध्यात्मिक दशाएं कैसे निर्मित होती है? उन्हें एवम्विधि क्यों वर्गीकृत किया गया । क्या वर्गीकरण, की अन्य पद्धति नही हो सकती ?

२– हठयोग की आधार शिला कैसे रखी गयी और तदुपरान्त राजयोग कैसे प्रकाश में आया । मानव मनोविज्ञान प्रकृति से किस भांति सम्बन्धित है, प्रकृति के सिद्धांत क्या हैं ?

३– मानव जीवन कहाँ से प्राप्त करता है । अर्थात् जीवन के पोषण के लिये शक्ति या ऊर्जा कैसे उत्पन्न होती है ।

४– मनस कोश किस क्षेत्र से सम्बन्धित है, उस क्षेत्र की दशा क्या है ?

५– मानवीय प्रकृति किस प्रकार रूपान्तरित की जा सकती है ।

६– स्वभाव वृत्तियां भला/बुरा चरित्र निर्माण करने में क्या सहायता करती है ?

७– चरित्र सम्बन्धी अवयव क्या हैं ? इन्हें कैसे रूपान्तरित किया जा सकता है ?

१८–२–४५ मुझे आदेश किया गया कि अमुक 'व' को पूर्णतया नष्ट कर दिया जाय और उनके चक्र निष्क्रिय एवं उपरत कर दिये जाएं । आदेशों का परिपालन किया गया । सत्संग के सुधार पुनरुद्धार के लिये मैंने प्रार्थना की । भगवान कृष्ण:–तुम्हारे गुरु ने तुम सबकी कमी दूर कर दी हैं । और तुम्हें प्रोत्साहित करने में तथा आध्यात्मिक प्रकाश प्रदान करने में उन्होंने कोई प्रयास बाकी नही रखा । तब भगवान कृष्ण ने मेरे उत्तराधिकार की घोषणा का उल्लेख लालाजी को करवाया ।

१९–२–४५ पूज्य लालाजी ने मुझे २९–३–४५ को फतेहगढ़ पहुंचने का आदेश दिया।

२०–२–४५ स्वामी विवेकानन्द:— जो कुछ करना है शीघ्रतया सम्पन्न कर लेना चाहिये । समय का अपव्यय न करो । जो कुछ भी मैं आदेश करूं, बिना हिचक शंका संदेह के तुम्हें और तुम्हारे सहयोगियों को पालन करना चाहिये । तुम्हारी उदार हृदय प्रवृति के कारण कार्य में असुविधा बढ़ जाती है । दृढ़ होकर स्फोटक (Dynamite) की भाँति क्रियाशील हो जाओ ।

२२–२–४५ पूज्य लालाजी ने मुक्ति प्राप्त करने के लिये आत्मा को संस्कारों से अनावृत्त करने हेतु अनेक विधियाँ अवगत कराई । लालाजी:–आज कल, घटनाएं कुछ इस प्रकार हो रही है कि हमें उनसे अप्रभावित रह सकना नितान्त कठिन है मानव वही हैं जो जीवन की हर परिस्थति से निवटने को तैयार रहे । संस्कारों का प्रभाव

वातावरण में समादिष्ट हो जाता है, इस सीमा तक प्रविष्ट संस्कार लोगों के विचार स्थिर नही रहने देते । यह हमारी अपनी भूल है। हमारी इच्छा (शक्ति) इतनी कमजोर हो गई है कि पुनर्गठन की कोई आशा नहीं । कारण यही है कि लोग अपने विचार तितर–बितर, बिखरे हुये रखने में आनन्द अनुभव करते हैं। कार्य सम्पन्न कर लेने के उपरान्त कोई उससे स्वयं को मुक्त नही समझ पाता । मन की चिन्ता का कारण यह है कि एक ही समय अनेकों विचार ग्रहण कर लिये गये हैं, अथवा किसी विशिष्ट विचार पर अत्यधिक बल दे दिया गया है। जिससे परिणाम स्वरुप मनस प्रभावित होता है । इससे स्वयं को बचाने का उपाय यह है कि ईश्वर से सम्बन्धित किसी भी कार्य को इस भाँति अधिग्रहीत कर लिया जाय कि यह मुक्ति का साधन, स्रोत बन जाय । अपनी संस्था में हम यही चीज आरम्भ करते हैं, वह जो इस पर (अभ्यास) अमल करता है सफल होता है। दूसरी बात जो सबके अभ्यास करने योग्य है, वह यह कि प्रेम और भक्ति को मुख्य प्रयोजन मानते हुये स्वयं को इस भाँति ढाल लिया जावे कि हृदय उनसे (प्रेम और भक्ति से) सम्पृक्त रहे । अब एक प्रश्न आता है कि यह सब कैसे उपलब्ध हो सकता है ?

इसका उत्तर यह है कि जिसे वह पूर्ण दक्ष (सक्षम) समझता हो, उस व्यक्तित्व में ईश्वरीय स्वरुप का अधिग्रहण कर लिया जाय, और उससे प्रेम आरम्भ कर दिया जाय। फिर भी एक बात बचती है कि यह भाव कैसे उत्पन्न किया जा सकता है। उत्तर है- समुपयुक्त कार्य एवं व्यवहार से। प्रश्न अब भी हल नही हुआ। क्योंकि पुनः एक संदेह उत्पन्न होता है कि सच्चरित्र एवं सत्कार्य भावना का विकास कैसे किया जाय? पुनः उत्तर है, प्रार्थना से और दूसरों के प्रति श्रद्धाभाव से।

एक अन्य प्रश्न–इस स्थिति तक हमें कैसे पहुंचना चाहिये? उत्तर है–सत्संग सेवन से सन्त, भक्तों की कहानियाँ पढ़ना भी इसमें सम्मिलित है। "बिना किसी अभ्यास के इच्छा शक्ति कैसे सबल की जा सकती है।"

उत्तर–कोई एक कार्य सर्वोपरि महत्वपूर्ण मान लो और शेष अन्य द्वितीयक सबसे पहले यह भावना (इच्छा) होनी चाहिये कि इच्छा शक्ति सबल बनानी है, तब उसे नियत कार्य आरम्भ (सम्पन्न) करना चाहिये। विरोधी विचारों को ध्यान नही देना चाहिये। ५-२५ प्रातः लालाजी ने मुझे बताया कि मैंने केन्द्र के साथ नितान्त–घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लिया है अतएव अब आदेश दिव्यवाणी के रुप में सीधे प्राप्त हुआ करेंगे। तुम्हें दी गई प्रशिक्षण विधि के प्रकार और प्रणाली का अन्य उदाहरण नही है, महान सन्त भी इसे कल्पना में नही ला सके। और वास्तव में तुम उसके लिये उपयुक्त (सुयोग्य) हो। मैंने स्वयं को पूर्णरीत्या विश्वस्त करके कि तुम मेरे उत्तराधिकारी होने के योग्य हो–तुम्हें शक्ति से सम्पृक्त कर दिया ऐसा प्रशिक्षण केवल एक को दिया जा सकता है। यह तभी सम्भव होता है जब प्रशिक्षण एवं प्रशिक्षार्थी में पूर्ण एकत्व हो। यह ईश्वरीय उपहार है, यह कोई

प्रयासों का परिणाम नहीं नही यह योग्यता का परिणाम है । मेरे शिष्यों में एक कमी यह पैदा हो गई है कि वे केवल सिर (शीर्ष) का भाग ही ध्यान के लिये लेते है । जबकि ध्यान पूर्ण स्वरुप पर करना चाहिये । तुमने समीचीन अभ्यास किया फिर भी तुम असंतुष्ट प्रतीत होते हो । तुमने सदैव यही सोचा कि सही ढंग से तुम ध्यान नही कर सके । तुम्हारी सभी सीमावद्धताएं टूट चुकी हैं ।

२३–२–४५ पूज्य लालाजी ने मुझे अवगत कराया कि ईश्वरीय आज्ञानुसार जिन्होंने उनकी यथा सामर्थ्य सहायता की उन सबको ऊंची अवस्थाओं तक पहुंचा दिया । किसी अन्य के लिये यह सम्भव नही था । कुछ सहयोगियों को सौंपे जाने वाले कार्य के सम्बन्ध में कुछ दिशा निर्देश लिखाएं नैतिक चरित्र निर्माण पर बल देते हुये उन्होने अपने उदाहरण पर अनुसरण करने को कहा । "तुम्हें नैतिक जीवन का वैसा ही उदाहरण बनना है, जैसा कि मैं रहा । इस पर अधिक महत्व दिया जाय और प्रार्थना का उपयोग लक्ष्य की उपलब्धि के लिये किया जाय ।"

२५–२–४५ यदि अभ्यासियों के हृदय निराशामय हों यदि अभ्यासी हताशा अनुभव करे, तो भक्तिपूर्ण गीत गाना अनुमन्य है लेकिन यह सदैव प्रत्येक अवसर पर नही ।

२६–२–४५ पूज्य लालाजी ने फतेहगढ़ की स्थिति स्पष्ट की । ७-३० बजे सायं गुरुनानक साहब ने मुझे सिटिंग दी और मुझमें लय हो गये । गुरुनानक:–आज मेरी मुंह माँगी मुराद मिली । मैं तुम्हारे गुरु का अभिनन्दन करता हूं जिन्होंने तुम्हें इस भाँति ढाला है कि सभी की दृष्टि तुम्हारी ओर है । तुम्हें मुझसे भी सीधे निर्देश प्राप्त होंगे । लालाजी ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की ।

१–३–४५ भगवान कृष्ण ने अपनी पूर्णशक्ति मुझे देदी । स्वामी विवेकानन्द ने प्रसन्नता व्यक्त की ।

२–३–४५ आगामी कार्य हेतु फतेहगढ़ की स्थिति स्वामी विवेकानन्द द्वारा सरल कर दी गई । मुझे लालाजी की समाधि को पूर्ण आध्यात्मिक शक्ति से समावेशित करने हेतु आदेश हुआ, दयालशक्ति मेरे नियंत्रण में रही । अवाँछनीय तत्वों को समाप्त होने के आदेश दे दिये गये । लालाजी:– यह ईश्वरीय आज्ञा है, हम असहाय है— याद रखो-सन्त सम्बन्ध से नही बंधते जब कोई तुम पर आक्रमक हो जाय तो मैं क्षमा नही कर सकता, जब तक वह घुटने न टेक दे ।

३–३–४५ अमुक **N** का अपनी पीड़ा मुझे हस्तान्तरित कर देने का कुटिल भाव था लेकिन लालाजी की कृपा से मेरी सुरक्षा रही, और कुछ भी नही हुआ ।

४–३–४५ अन्तर्जागरण (पुनर्युवाकरण) की समस्या का समाधान कर लिया लालाजी उन लोगों को जिन्होंने उनके कार्य को नष्ट किया अथवा जिन्होंने मुझे हानि पहुंचाने का प्रयास किया कठोर दण्ड देगें, तत्काल ही मैंने प्रार्थना की और

दया करके उन्होंने मान लिया। मुझे आदेश दिया गया कि जब फतेहगढ़ भण्डारा में जाऊं तो अन्यत्र कहीं नही जाना है।

६-३-४५ लालाजी ने मुझे निम्नानुसार निर्देश दिये

१—कि N-का नाम आत्मकथा (जीवन चरित्र) में न लिखा जाय।

२—सभी पाँडुलिपियों के रुप में जो साहित्य हैं, शाहजहांपुर लाकर मेरे निर्देशन में प्रकाशित करा दिया जाय।

३—प्रकाशन से लाभ होने पर उस आय को सत्संग के विकास में लगाया जाय।

४-उन कठिन संदर्भों पर जिन पर उन्होंने संक्षेप में लिखा है, आख्याएं लिखी जाय।

५- उत्तराधिकारी के रुप में यह सब सम्पन्न करना मेरा कर्तव्य है।

प्रश्न- क्या ऐसी कोई विधि है कि जिससे जो विचार-भाव हमारे मन में उत्पन्न हों तत्काल गुरु के मन में स्पन्दित हो उठे ?

उत्तर- (लालाजी द्वारा) गुरु में व्यवस्था के द्वारा एकत्व स्थापित कर लेना ही एक मात्र विधि है। इस प्रकार सहज, सरल भाव में निमग्न रहना चाहिये। कि किंचित उतार -चढ़ाव की रेखा/तरंग न उभरे। यह अभ्यास पर निर्भर है। और अभ्यास के द्वारा ही अच्छी तरह समझा जा सकता है। यह दशा जीवित-मृत (जीवन मुक्त)। अवस्था कहलाती है। वास्तव में यह जीवन मुक्ति है, जबकि जीवित रहते हुए पूर्ण-रीत्या मृत अवस्था उत्पन्न हो गई हो। वास्तविकता इससे परे है। मैं (लालाजी) इस स्थिति में जन्मतः था और प्रिय रामचन्द्र में भी वही विद्यमान है।

प्रश्न- यह दशा कैसे उपलब्ध की जाय ? संक्षेप में मैं अभ्यास प्रस्तुत करता हूं-शनैः शनैः चित्तवृत्तियों का शुद्धीकरण (निराकरण) कर लिया जाना चाहिये। यह सामान्यतया बहिर्मुख परिलक्षित होती है, इससे यह स्थिति प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। यह एक महान उपलब्धि है, इसे पूर्ण निषेध भी कहा जा सकता है। इसके बाद मानव को कुछ भी अभ्यास करना शेष नही रहता। सेवकाई निस्सदेह कर्तव्य है। मेरा सबके प्रति ऐसा ही व्यवहार रहा। तुम्हें भी इसे नही छोड़ना चाहिये। चाहें जितनी ही तुम्हारी ऊंची स्थिति भले हो किन्तु स्वयं को सेवक समझो प्रिय रामचन्द्र जी का प्रशिक्षण इस स्थिति के परे से आरम्भ हुआ है। यह सब उसके पास जन्मजात था। इसे अनुमान करने की अर्न्तदृष्टि किसी में भी नही रही, मेरी समझ में भी यह बहुत समय में आया।

७-३-४५ लालाजी:- बातचीत करने का ढंग मेरे जैसा होना चाहिये। इसमें कोई उतार चढ़ाव या तीखापन नही रहना चाहिये। इसके विपरीत अध्यात्म (ईश्वरीय) धारा के समान जो सृष्टि के आरम्भ से अब तक एक सी बह रही है, बातचीत करने का ढंग होना चाहिये। मैंने इसकी नकल की है। इसके असंख्य लाभ है। जब बातचीत करने का ढंग मूलधारा के अनुरुप होता है, तो वार्तालाप एवं मूलधारा में परस्पर एकत्व स्थापित हो जाता है, और इसके द्वारा स्वाभाविक रीति से एक

सहजशैली का विकास होता है, जो प्रभावशाली होती है । जो कुछ भी कहा जाता है, प्रविष्ट होता चला जाता है । दूसरे शब्दोंमें मूलधारा के साथ एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है,और जब संबंध स्थापित हो जाता है तो प्रभाव अवश्यम्भावी है।यदि कोई इसका अनुकरण करता है,तो जिन शब्दों में अभिव्यक्त करने का भाव होगा वही शब्द समयुक्त रुप में मुंह से प्रकट होते हैं। इसे अभ्यास करने की पद्धति निम्नानुसार है।"सबसे पहले बातचीत के उतार-चढ़ाव या जिसे तीखापन या तेजी कहते हैं, को दूर करना चाहिये जिस सीमा तक यह दूर कर लिये जाएंगे, मुख्य धारा के साथ एकत्व स्थापित होता जायेगा । तीखे पन से मेरा आशय, स्थूल क्रोध से नही है । जो मेरा आशय है वह यह कि किसी प्रकार का दबाव या भार, बातचीत के प्रवाह में नही रहना चाहिये । शान्त वायु की तरंगे इसका उदाहरण हो सकती है- निस्संदेह इसे पाना नितान्त कठिन है । लेकिन निरन्तर प्रयास एवं साहस से सभी कुछ मालिक (गुरु) की कृपा से सम्भव हो जाता है ।

९-४० बजे सायं मुझे अग्नि तत्व पर नियंत्रण दे दिया गया। जो एक अनोखी भेंट है । सामान्यतया लोग इसकी शक्ति सहन नही कर पाते । स्वामी विवेकानन्द ने इसकी प्रशंसा की और मुझे बताया कि दक्षिण भारत में कार्य करने के दृष्टिकोण से अनेकों शक्तियाँ कृष्ण भगवान ने मेरे लिये सुरक्षित रख छोड़ी है ।

८-३-४५ पूज्य लालाजी ने मुझे अवगत कराया कि भगवान कृष्ण स्वयं पूर्णरीत्या मुझमें लय होना चाहते हैं, लेकिन मैंने ऐसा न करने के लिये प्रार्थना की कि ऐसा न हो कि शरीर ही समाप्त हो जाय ।

९-३-४५ चैतन्य महाप्रभु ने मुझसे संपर्क किया और अपनी संस्था का कार्य भी सौंप दिया । उन्होंने मुझे यह भी बताया कि जीवन के पूर्व भाग में वे भगवान कृष्ण से कैसे सम्पर्क करते रहे । तब उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर उनसे सम्पर्क करने बुलाने की अनुमति प्रदान कर दी । ५-५३ पर पूज्य लालाजी ने मुझे बताया कि भगवान कृष्ण मुझे कुम्भ मेला (पर्व)के समय पर हरिद्वार भेजना चाहते हैं ।

१०-३-४५ पूज्य लालाजी ने बताया कि जब मैं हरिद्वार पहुंचूं-तो तो वहां रुककर समस्त सन्दर्भों का नियंत्रण करूं । मुझे उन छद्मवेशियों की शक्तियां वापिस लेने को भी आदेश दिया गया जो कि अपनी निम्नस्तरीय उपलब्धियों से जन सामान्य को कष्ट (भ्रम) प्रदान करते हैं । मथुरा के संरक्षक (गौस) को तीन माह के लिये कार्य भार सौंपा गया था लेकिन उनसे चार माह तक कार्य लिया गया । उनके कर्तव्य के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते समय उन्होंने पारितोषिक के लिये प्रार्थना की किन्तु लालाजी से आदेश नही मिला । आज सायं एक दिव्य उपहार उन्हें प्रदान किया गया । पिंड एवं ब्रह्मांड क्षेत्र की समग्र (ग्रंथियाँ) स्थितियां अनावृत कर दी गयीं । मथुरा के भक्त ने अपनी दशा को समझ लिया, और कृतज्ञता प्रकट करते अश्रुधारा से सराबोर हो गया । उसने बताया कि इसी दशा/स्थिति के लिये उनकी साधना

उत्कंठा रही और यह कहा कि जीवन लक्ष्य पूरा हो गया है। उन्होंने अपना कार्य एक माह के लिये बढ़ाया था। लेकिन लाला जी ने पन्द्रह दिन और बढ़ा दिया।

१२–३–४५ ११.१५ बजे प्रात: पूज्य लालाजी ने सावधान किया कि कोई मुझ पर आक्रमण कर रहा है। ओर कहा कि मुझे सचेत रहना चाहिये। वह ब्रह्माण्डीय शक्ति को क्रियाशील कर मेरे मस्तिष्क को नष्ट करना चाहता है ताकि मैं पूर्णतया मस्तिष्क से शून्य-असंयत हो जाऊं (मेरा मस्तिष्क पूर्णरीत्या नष्ट हो जाय)। लेकिन अपनी अक्षमता के कारण वह ऐसा नही कर सका। उसने पुन: प्रयास किया लेकिन वह सफल नही हुआ। इस प्रकार व्यक्तिक्रम/खतरा टल गया। ११.३० बजे प्रात: लालाजी ने मुझे अवगत कराया कि परसिया में एक ईश्वर भक्त अन्तिम समय की सासों में अटका हुआ है, और मुझे आदेश दिया कि उसकी मैं देख रेख करूं। कुछ मिनट मैं उसके कार्य में निरत (संलग्न) रहा। जब उसने अन्तिम साँस ली तब मैंने प्राणाहुति बन्द कर दी। राधाजी एवं कृष्ण भगवान का आशीर्वाद प्राप्त किया। लालाजी ने मेरी प्रतिभा को ईश्वरीय कहते हुये प्रशंसा की।

१३–३–४५ लालाजी ने सुझाव दिया कि अमुक 'अ' को शून्यत्व (अ.त्म निराकरण) का कुछ कार्यभार सौंप दिया जाय।

१४–३–४५ स्वामी विवेकानन्द ने आदेश दिया कि समग्र भारत में इधर उधर फैले हुये ऋषियों को शक्ति प्रदान की जाय। उन्होंने मानवता के प्रति मेरे प्रेम को प्रच्छन्न काष्ठाग्नि की संज्ञा देते हुए सराहना की। जब भगवान कृष्ण मेरे समक्ष आये मैंने स्वयं को समग्र सृष्टि के कण कण में (अनावृत) संव्याप्त कर दिया। भगवान कृष्ण ने मेरी प्रसंशा की। स्वामी विवेकानन्द ने मुझे बताया कि सीमाबद्ध देह (बन्धन मय देह) में बहुत अधिक शक्तियाँ नही रह सकती।

१५–३–४५ पूज्य लालाजी:—शाँति क्या है? पूर्ण शाँति उसे कहते हैं जिसमें व्यक्ति दूसरों के आक्रोश और उपेक्षाएं (निन्दा आदि) सहन करले। इन्हें इस प्रकार सहन करना चाहिये जैसे उल्टे पात्र में डाला जा रहा जल। पात्र में किंचित भी जल एकत्र नही होता। विवशता में सहिष्णु हो जाना इस परिभाषा में नही। वस्तुत: सर्वप्रथम यह स्वभाव विकसित करना ही है। लय क्या है? लय उसे कहते हैं जिसमें शीघ्रता जल्दबाजी और दुराग्रह समाप्त हो जाते हैं। न तो एकत्व की कामना ही, न ही पृथकत्व का क्षोभ (दुख) ही। लेकिन आरम्भ में ही इसे अधिग्रहीत करना त्रुटि–पूर्ण है। एकत्व के लिये तो निश्चय ही आकांक्षा उत्कंठा होनी चाहिये। यह भक्ति की एक प्रक्रिया (प्रणाली) है। और सर्वशक्तिमान की दया कि वह किसी को इस उत्कंठा (महत्वाकाँक्षा) (एकत्व की कामना) से मुक्त कर दे। हल्कापन (सूक्ष्मता) अध्यात्म है। यह एक शब्द में सारांश है। मैंने अपने लेखों में अन्यत्र इसकी विस्तार से व्याख्या की है। उत्कंठा (लगन), बेचैनी क्या है? यह दो प्रकार की है। एक

निम्नतम है, दूसरी उच्चतम । निम्नतम प्रकार की लगन (बेचैनी) वह है जिससे हृदय में स्वभाव वृत्तियों की बाढ़ आ जाती है । आरम्भ में यह अधिक लाभकर है उच्चतम लगन वह है जिसे स्वामी विवेकानन्द ने प्रच्छन्न काष्ठाग्नि की संज्ञा कल दी । प्रयोजन यह है कि व्यक्ति (मानव) अपने अन्तस्तल (हृदय) में प्रेम (दिव्य) को प्रदीप्त कर सके । अन्तस्थ कोई उत्तेजना वांछनीय नहीं । लगन का मूलार्थ लगाव से है, सम्बन्ध जितना प्रखर, प्रज्जवल, प्रशस्त होगा, लगाव भी उतना ही अधिक प्रगाढ़, अविच्छिन्न, निष्कम्प होगा । ईश्वर अन्वेषण की समस्या (पहेली) क्या है? पहले प्रकार की समस्या यह है कि प्रत्येक वस्तु डूबी हुई–खोई हुई प्रतीत होती है । मेरा आशय है कि मानव की अपनी दशा । तब दूसरी समस्या है । पहले प्रकार की (पहेली) समस्या विरले ही मिलती है । विश्वास सुदृढ़ हुआ तब कहा जा सकता है जबकि ईश्वर के साथ स्थापित किया हुआ सम्बन्ध तोड़ने का प्रयास करने पर भी न टूट सके । ऐसा करने में स्वयं सर्वथा असमर्थ हो जाय । ऐसा विश्वास विकसित करने हेतु प्रयास किये जाने चाहिये । निर्भरता वह दशा (स्थिति) है जिसमें उसके और उसकी सहायता के सिवा अन्य कुछ भी दृष्टि में ही आता । कृतज्ञता–सभी परिस्थितियों में प्रसन्न रहना है ।

दया, कृपा, परोपकारिता–वह है जिसमें कि मानव उसे किसी भी क्षण याद करते रहने में असावधान न हो । सभी परिस्थितियों में संतुष्ट रहना चाहिये । और अच्छीश्रेष्ठतर परिस्थिति की याद नहीं करनी चाहिये। इच्छा:- ईश्वरके अतिरिक्त अन्य कोई इच्छा, कामना, भावना नहीं होनी चाहिये । बेचैनी:–इसका आशय अशाँति से है । और यह प्रेम की वास्तवता तक पहुंचती है । यह इसके अर्थ हैं । अब इसकी परिभाषा देखें–वास्तविक बेचैनी उसे कहते हैं जब हृदय में उसके अतिरिक्त अन्य कोई तरंग–विक्षेप/उभार न हो । संसार उसे कहते हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति बदला लेना चाहता है । दूसरा संसार वह है जहाँ मानव किसी दूसरे पर निर्भरता का अनुभव नहीं करता न ही–वहाँ परस्पर किंचित भी आसक्ति (लगाव) का भाव ही विद्यमान रहता है । स्वामी विवेकानन्द–परस्पर निर्भरता का विचार इस संसार (संसार) में लालाजी का है । इसके विपरीत दूसरा संसार है । स्वर्ग अन्य कुछ भी नहीं सिवाय इसके कि इन दोनों भावों से विमुक्त हो जाया जाय । स्वर्ग से मेरा आशय स्वयं की गति (दशा) से है । माया ईश्वर का तमसावृत परिप्रेक्ष्य है–पुरुष प्रकाशमय प्रभाग, दीपक के ज्वलन केन्द्र को पुरुष एवं तमसाच्छन्न क्षेत्र माया के रूप में जानना इस प्रकाश मय क्षेत्र के पार होकर तुम्हें प्रज्ज्वलन विन्दु केन्द्र तक पहुंचना है जहाँ आभा, प्रभा समाप्त होती है वहाँ अन्धकार छाया रहता है । जो एक क्षितिज बनाती है । इसे स्थूलमाया कहते हैं । मेरा आशय है कि जहां प्रकाश विन्दु–बत हो पहुंचता है– विस्तरित होकर (फैलता हुआ) नहीं । बहिर्वृत के इसी में भाग लोग सामान्यतया आबद्ध रहते हैं । गुरु प्रज्ज्वलन केन्द्र से प्रकाश लाता है। और कालान्तर

में इसे आभामय बना देता है। तो प्रश्न यह उत्पन्न होता कि गुरु जब अन्धकार के तीसरे वृत्त में उत्पन्न होता है तो वह प्रकाश कहां से लाता है? उत्तर यही है कि वह सदैव मूल केन्द्र के निकटतम रहता है। और जहाँ से वह गहनतमसाच्छन्न क्षेत्र में इसकी पर्त छोड़ देता है– लालाजी एवं स्वामी विवेकानन्द दोनों लोग मेरे शिष्ट व्यवहार से प्रसन्न हुये और उन्होंने आशीर्वाद दिया।

१६–३–४५ स्वामी विवेकानन्द ने मुझे बताया कि गुरु से अनन्य प्रेम करने पर सभी कुछ सम्भव है।

१७–३–४५ चैतन्य महाप्रभु ने अपनी शक्ति मुझे प्रदान कर दी। और आध्यात्मिक कार्य में अकेला न समझने के लिये कहा। उन्होंने कहा, कि कल उस व्यक्ति से बात करते हुये तुम्हें मैंने ही उत्तेजित किया था, जो कि गुरु की ईश्वर के रुप में उपासना करना भ्रामक मानता था और कहता था कि उसने हमारे सत्संग में कोई लाभ नही पाया। अभ्यासी ने और आगे कहा कि वेदों का सार रामायण पाठ में उसे अधिक आनन्द आता है। आदि आदि–मैं उससे गुस्सा हो गया था कि रामायण पढ़ना इन्द्रिय ज्ञान पिपासा को संतुष्ट करना है जब कि आध्यात्मिक साधन अतीन्द्रियता के भी परे है– तब महाप्रभु ने मेरी भूरि भूरि सराहना की और आशिष दिये।

१८–३–४५ पूज्य लालाजी ने मुझे अवगत कराया कि किस प्रकार मेरे उनके चरणों तक पहुंचने से बहुत पहले ही उन्होंने मुझे अपनी ओर आकर्षित करना आरम्भ कर दिया था। तुम्हारा स्वरुप मेरे समक्ष पहले एक वार प्रकट हुआ था। यह मेरी प्रार्थना का परिणामी प्रभाव था जो मैंने अपने योग्य सक्षम उत्तराधिकारी पाने के लिये की थी। इसी प्रत्याशा में मैंने तुम्हें यथार्थ में अपने पास पहुंचने के बहुत पहले ही आकर्षित करना आरम्भ कर दिया था। आरम्भ में मैं तुम्हारे प्रति उपेक्षा करता रहा ताकि तुमयह ज्वाला पूर्णरीत्या हृदयगम कर लो। मुझे पूर्णतया नियत था कि तुम एक दिन मुझे मिलोगे। लेकिन चूंकि मै यह शीघ्र देखना चाहता था इसलिये तुम्हें आकर्षित करने लगा। तुम्हारी स्थिति उसी क्षण से बदलने लगी। मैं अपने गुरु से संपुष्टि कर लेता था। एक कारण यह भी था कि तुम्हारी सम्पन्नता के विचार से मेरे मन में बहुधा क्षोभ होता था, इसलिये मैं तुम्हें पग-पग पर देखता रहता था। स्वामी विवेकानन्द ने मुझे अवगत कराया कि वे मेरे कारण शरीर से कार्य सम्पन्न करा रहे हैं। सूक्ष्म शरीर को बाहर निकाल कर इसे जीवन देने की नई विधि खोज की। और तब इसे थोड़ीसी उसकार्य को करने में शक्ति देकर-इससे कोई भी कार्य लिया जासकता है–ऋषि अगस्तय ने मेरा अभिनन्दन करते हुये इस खोज को श्रेयष्कर बताया और कहा कि मुझे अनेकों विज्ञान ज्ञात हैं। मैं इन्हें उचित समय पर तुम्हारे अधीन कर दूंगा। इस प्रश्न के उत्तर में कि विशिष्ट व्यक्तित्व कौन है? भगवान कृष्ण ने उत्तर दिया विशिष्ट व्यक्तित्व में प्रकृति की विशिष्ट शक्ति गुप्त रुप

से अवतरित होती है और विशिष्ट कार्य के लिये उसके द्वारा सक्रिय (क्रियाशील) होती है । उसकी स्थिति एक अवतार जैसी होती हैं। जब भी उचित अवसर होता है, तो दिव्य अवयवों की शक्ति उसके आदेशानुसार कार्यरत हो जाती है । १०-३० पर सीलोन (लंका) के ऋषि ने फतेहगढ़ में भण्डारा के विधि- विधान को जानना चाहा । विधि विधान बताने पर उन्होंने कहा कि भगवान कृष्ण ने उन्हें भण्डारे में मेरे साथ उपस्थित रहने का आदेश दिया है। लगभग ११-३० पर ऋषि अगस्त्य ने अवगत कराया कि उन्हें भी मेरे साथ भण्डारे में उपस्थित रहने को आदेश मिले हैं ।

१९–३–४५ स्वामी विवेकानन्द ने अवगत कराया कि भण्डारे की अवधि में समस्त भारत के दिवगंत सन्तों को मेरे साथ रहने को आदेश मैंने दे दिये हैं–मथुरा के संरक्षक को लालाजी की इच्छा के अनुसार मैंने 'प्राणाहुति' दी, इससे वे (मथुरा के संरक्षक) अत्यन्त प्रसन्न हुये । लालाजी ने कहा कि, वे मेरे मन में पैदा होने वाली प्रत्येक सही गलत इच्छा को पूरा कर देंगे । उन्होंने कहा कि उत्तराधिकारी के लिये कठिन परीक्षाओं से उन्होंने मुझे परखा, जिनमें मैं सफल हुआ अब लालाजी ने इस बात पर बल दिया कि मुझे पारितोषिक माँगना चाहिये–मैंने माँगा कि आपका दिव्य नाम जब तक संसार रहे, सूरज की भाँति प्रकाशित रहे । मुझे अपने जीवन की अवधि में किसी व्यक्ति को इस सीमा तक कठिन परीक्षा न लेने के निर्देश देते हुये उन्होंने आगे कहा, मैं ईश्वर को साक्षी करते हुये कहता हूं कि मैंने कुछ भी कसर नही छोड़ी । सब कुछ तुम्हें दे दिया । आज से मैंने स्वयं को तुम्हारे पास बन्धक रख दिया है, जो भी वैभव उपलब्ध हो सकता है, मैंने सभी तुमको प्रदान कर दिया है, तब मैंने तुमसे पूंछा कि तुम्हें मैं क्या दूं । तो तुमने उत्तर दिया अपनी कृपा का आश्रय जैसा कि सदैव से देते रहे । मैं तुम्हारी इस प्रार्थना से नितान्त प्रसन्न हूं । स्वामी विवेकानन्द ने मुझे बताया कि पूज्य लालाजी ने मुझे नियामक शक्ति, नियंता बना दिया है । इस पर मैंने कहा कि, चाहे इस सेवक को राज सिंहासन पर बिठा दिया जाय, उसकी स्थिति सेवक की ही रहेगी । इससे कोई महत्व नही, कि उसे राज्याधिकार प्राप्त है । इस उत्तर से लालाजी अत्यन्त प्रसन्न हुये ।

२०–३–४५ पूज्य लालाजी ने अपनी इच्छा प्रकट की कि वह मेरे जीवनकाल में दिव्य लोक को वापिस नहीं लौटना चाहते । और कहा–कि अधिकतर यहीं रहेंगे । स्वामी विवेकानन्द ने मुझे सूचित किया कि मेरे जीवन की अवधि बढ़ाई जाने की सम्भावना है । और कहा कि मुझे रात दिन दो या तीन घण्टे की नींद लेकर ही कार्यरत रहना होगा । (जोकि मेरे स्वास्थ्य के लिये पर्याप्त रहेगी) । वैसे तो तुम्हें विश्राम की कोई आवश्यकता नही । तुम्हारी आत्मा ने देह–बन्धन काट डाले हैं । तुम्हें शास्त्रों पर पुनर्विचार करना होगा । जिनकी निहित स्वार्थी बुद्धिजीवियों द्वारा भ्रामक व्याख्याएं की गई हैं । संक्षेपतः तुम्हें नया संसार बनाना है ।

२१–३–४५ स्वामी विवेकानन्द ने मेरे गुरुजी के प्रति प्रेम और मेरे प्रति उनके प्रेम की सराहना की । उन्होंने कहा, कि अपने जीवन भर उन्होंने ऐसा उदाहरण नही देखा । लोग ईश्वर के लिये अपने घर छोड़ देते है । जब कि लालाजी ने अपना घर तुम्हारे लियेछोड़ दिया है । मुक्तात्मा कायहमहानतम बलिदान है। भगवान कृष्ण:- आध्यात्मिकता के लिये दो प्रकार के व्यक्ति योग्य होते हैं । सर्वोच्च या श्रेष्ठ और मध्यम/निम्नतम भी है, और उन्हें स्वार्थी कहते हैं । उच्चतम योग्यता के व्यक्ति वे होते हैं जिनका प्रेम, ईश्वर की याद और प्रेम में प्रज्ज्वल है । मध्यम वह है जिसका प्रेम अपने प्रेमी के लिये प्रज्ज्वल होता है । हम निम्नतम से सम्बन्धित नही होते । उन्हें सभी जानते हैं । एक अन्य प्रकार के व्यक्ति भी होते हैं, जो इनसे पृथक स्वतन्त्र मुक्त होते हैं । ऐसा व्यक्ति हजारों वर्ष में, जब समय को उसकी आवश्यकता होती है तब विरले ही जन्म लेता है । उसके समान्तर कोई भी नही होता । ऐसा व्यक्ति ईश्वरीय आज्ञानुसार उत्पन्न होता है । तुम इसके उदाहरण हो, निम्नतम योग्यता के व्यक्ति निकृष्ट कहलाते हैं । उन्हें कभी आध्यात्मिक लाभ नही मिलता है मूढ़ इसी श्रेणी में आते हैं । सर्वोच्च योग्यता का व्यक्ति जैसा कि ऊपर कहा गया कभी ही पाया जा सकता है । ऐसा अधिकारी जब जन्म लेता है तो मूल केन्द्र में सदैव रहने वाले सन्तों से सम्बन्धित रहता है । लालाजी इसके उदाहरण हैं । लालाजी:–यह समय आगामी युग युगान्तरों तक नही आएगा जब ऐसा उदाहरण सत्य सिद्ध हो–– कि मजनूं ने जंगल को घर बना लिया । और मैंने अपने घर को जंगल । प्रेम की सर्वोच्च स्थिति क्या हैं ? तब उन्होंने अमुक की बीमारी ठीक करने की विधि अवगत कराई । और कहा कि यह विधि मेरे गंभीरतया बीमार हो जाने पर भी जब कि मैं महा समाधि से कुछ पहले मिलने आया था, प्रयोग की गई थी ।

२२–३–४५ आज १०-२० बजे प्रात: लालाजी ने मुझे वह शक्ति देकर स्थायी संबंध दृढ़ कर दिया जो कृष्ण ने मेरे लिए सुरक्षित रख छोड़ी थी । स्वामी विवेकानन्द न कहा कि यह विशेष भेंट (उपहार) है जो मैं अपने जीवन में किसी को नही दे पाया मैंने अपने को अत्यन्त परिवर्तित अनुभव किया । आज मुझे किसी को प्राणाहुति देने से मना कर दिया गया । मुझे यह भी सचेत किया गयाकि विचार,अभिव्यक्ति और कार्य से मैं सबके लिये कल्याण करूं ।

२३–३–४५ स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि परिणामों की चिंता किये बिना वह सभी व्यवधान समाप्त कर देंगे और कहा कि–मेरे आध्यात्मिक कार्य को हानि पहुंचाने वालों का विनाश देखने के लिये मैं तत्पर रहूं ।

२४–३–४५ भगवान कृष्ण :–अब समग्र प्रकृति प्रवहमान है, दिव्य कृपा की सरिता बहाव पर है, प्रतिक्षण शक्तियों के अवतरण के लिये आदेश प्रसारित किये जा चुके हैं । यह तुम्हारे गुरु की योग्यता रही है कि तुम्हारे हृदय को उन्होंने इस प्रकार

वलिष्ठ बना दिया कि यह उन शक्तियों का अवधारण कर सके। ८.२४ अन्त: पूज्य लालाजी ने मुझे सूचित किया कि इस समय परम शाश्वत केन्द्र से एक धारा अवतरित होना आरम्भ हुई है- और मेरे सारे जीवन यह प्रवाहित रहेगी– राधाजी, विवेकानन्द, चैतन्य महाप्रभु सभी ने अपना आह्लवाद प्रकट किया।
२५–३–४५ अमुक S का उनके गुरु से सम्बन्ध विच्छेद करने के आदेश मिले। अब तक मुक्तात्माओं द्वारा मुझे अनेकों श्रंखला बद्ध परीक्षाओं से गुजरना हुआ। मैंने पूज्य लालाजी को इस प्रकार निवेदन किया :–

"अन्ततोगत्वा मैं एक मानव हूं, मुझसे प्रति पग भूल हो सकती है, यह आपके स्वामित्व की सौजन्यता है कि मैं उन सभी परीक्षणों में सफल रहा– अब मेरा मन (हृदय) परीक्षण के विचार से घबरा रहा है। मेरी क्षमता उन परीक्षणों से गुजरने की नही है। ईश्वर इसे छोड़ दे यदि मैं आगे ऐसे परीक्षणों में असफल होता हूं। मैं अब अन्य कुछ कहना नही चाहता" लालाजी ने प्रशंसा करते हुये कहा कि मैंने उनका नाम अमर बना दिया है। फतेहगढ़ भंडारा की क्रियाविधियों के प्रति मुझे सचेत कर दिया गया। स्वामी विवेकानन्द :—मुझे अभी ज्ञात हुआ है कि तुम सृष्टि के निर्माता बनाये गये हो। तुम्हारे गुरुजी इसकी व्याख्या कर देगें। देखिये यह कोई सामान्य पद नही है। संसार में किसी को यह नही प्राप्त हुआ। यह उस परीक्षा के प्रतिफल में भगवान कृष्ण द्वारा प्रदत्त पारितोषिक है–जिसमें तुम सफल हुये। अब सृष्टि के आदि से प्रवहमान शक्तियाँ तुम्हारे अधीन कार्य करेंगी। मेरा आशय ब्रह्मा, विष्णु, महेश, की शक्तियों से है। अपने जीवन के उपरान्त भी तुम्हारा यही कर्तव्य रहेगा। एक अन्य शक्ति भी तुम्हें प्रदत्त की गई है। और वह राधाजी का आनुतोषिक है, कि देह त्याग के उपरान्त तुम प्रलय के लिए प्रतीक्षा नही करोगे अपितु सीधे मूल केन्द्र अर्थात आत्मा में जैसा कि तुम कहते हो प्रवेश कर जाओगे। यह एक असम्भावना थी। जो राधाकृष्ण ने तुम्हारे लिये सम्भव कर दी। तुम्हारा पथ–सहज बना दिया गया है। जिससे कि देह त्याग के उपरांत तुम सीधे प्रयाण कर सको। जैसा कि अन्यत्र कहीं तुम्हारे गुरु ने लेखों में स्पष्ट किया है, कि तुम्हारा कारण शरीर मुक्त कर दिया गया है। यह तुम्हारे गुरु द्वारा पूर्वत: स्थापित आधार शिला रही जिससे कि तुम वर्तमान इस स्थिति का आनन्द उपभोग कर रहे हो।"

पूज्य लालाजी ने मुझे कहा, कि इन सब बातों की अपने जीवन काल में ही उन्हें जानकारी थी। भगवान कृष्ण ने कहा कि वह इस सद्व्यवहार से नितान्त प्रसन्न है कि मैंने इस स्थिति में भी अपने गुरु को नही छोड़ा हैं। यह मेरी भावनाओं का परीक्षण भी था। जिससे कि वे अत्यन्त प्रसन्न रहे,उन्होंने कहा। आगे उन्होंने कहा कि अन्य लोगों को तुमसे गुरु का सम्मान करना सीखना चाहिये। वस्तुत: सच्चा प्रेमी अपने प्रिय के सिवा अन्य कुछ भी नही देखता और इसे ही वह सर्वस्व समझता है।

इसका आशय (प्रयोजन) यह है कि महातम भेंट जो मेरे पास है, वह मेरे पूज्य गुरू लालाजी है, जो सदैव मेरे साथ हैं। और उन्हें देखने का मुझे सौभाग्य उपलब्ध है। अतिरिक्त इसके अन्य मुझे क्या चाहिये था ?

२६–३–४५ मुझे सूचित किया गया कि भगवान कृष्ण के उपहार स्वरुप मुझे एक अन्य शक्तिभी मुझसे सम्बद्ध करदीगई पूज्य लालाजी ने नष्ट किये जाने वाले लोगों के नाम सुझाये–लालाजी ने कहा :–महापार्षद की स्थिति से पूर्व अभ्यासी का अध्या–पतन कभी भी हो सकता है।लेकिन सामान्यतया ऐसा नहीं होता। अन्यंत्र अभ्यासी को गिराया (नष्ट किया) भी जा सकता है, लेकिन केवल वही जो महापार्षद की स्थिति में परे मूल केन्द्र के सम्पर्क में संतरित हो रहा हो, इसे कर सकता है, लेकिन महा–पार्षद की स्थिति को पहुंचा हुआ मानव नष्ट नही किया जा सकता है। इसके विपरीत उसे नष्ट करने वाला ही नष्ट हो जायेगा, अर्थात् नष्ट करने वाले की शक्ति स्वत: ही उस व्यक्ति से स्वयमेव सम्बध हो जायेगी जिसे कि वह नष्ट करना चाहता है। और इसे वह जान भी नही पायेगा। (संकेत भी नही पाएगे) स्वामी विवेका–नन्द :–मैं तुम्हें एक बार पुन: विश्वास दिलाता हूं, कि जो कुछ भी तुम करना चाहते हो या चाहते हो कि जो जाएं वह सब हमारे लिये शिरोधार्य है। देखिये तुम निया–मक स्रोत हो। तुमने अपने गुरु से प्रार्थना कर रखी है कि तुम उनकी आज्ञानुसार रहो। लार्ड कृष्ण से उत्तर प्राप्त हो रहा है, प्रतीक्षा करो। भगवान कृष्ण :– तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई, भविष्य में ऐसा ही होगा। पूज्य लाला जी मुझे थपकी देते हुये कहा कि मैंने भी ऐसी ही प्रार्थना की थी। मेरी प्रार्थना थी कि मैंने अभी तक अपने गुरु को नही छोड़ा है। मैं प्रार्थना करता हूं कि भविष्य में भी मैं उन्हें न छोड़ सकूं। उन्होंने इच्छा प्रकट की कि मेरा नाम भी उनकी भाँति आने वाली पीढ़ियों में अमर बना रहे, "पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति तुम्हारा नाम प्रज्ज्वल हो। तुम्हारी संताने (शिष्य) सद्गुणवान, चरित्रवान बने। मैं तुम्हारी दोनों आध्यात्मिक एवं पारिवारिक संतानों को आशीर्वाद देता हूं। तुम्हारा घर अध्यात्मिकता की स्थायी समाधि बनें। और तुम्हारे परिवार में कोई ऐसा बच्चा उत्पन्न हो जो कि हम दोनों के नाम अमर करे। ईश्वर की कृपा सदैव तुम पर बर–सती रहे। एक अन्य बात मैं कहूंगा, ईश्वर इसे पूरा करे, जिस भूमि पर तुम चलोगे अथवा जिस स्थान से तुम गुजरोगे वह स्थान सुरभित हो उठे। जहां भी तुम जाओगे तुम अपनी छाप छोड़ोगे। वे सब जिनके साथ तुम रहो, प्रसन्न रहेंगे। उन्हें कभी निर्धन दीनता का सामना न करना पड़े विश्वास रखो कि यह सभी आशीर्वाद भविष्य में मिलने वाले हैं, और कभी व्यर्थ नही जायेंगे। भगवान कृष्ण और स्वामी विवेकानन्द ने भी वही आशीर्वाद मुझ पर बरसाये जो कि लगभग उन्ही शब्दों में व्यक्त किये गये।

२७–३–४५ ११-४५ बजे सायं एक अन्य शक्ति समाहित होती हुई प्रतीत हुई (अनुभव हुई) स्वामी विवेकानन्द के निम्नलिखित आलेख लिखाया "जो अपने शिष्यों को अपने अधीनस्थ समझता है वह गलती करता है, उनमें भी आत्मा है, अतएव अपने गुरु से समानता का उन्हें भी अधिकार है। केवल बाधा व्यवधानों की पर्त (आवरण) पृथक किये जाने हैं, इसीलिये शिष्य गुरु के पास आता है ।, वस्तुत: गुरु को इसके लिये ऋणी होना चाहिये कि शिष्य ने उसे सेवा का अवसर प्रदान किया है। अतएव शिष्य को अपने अधीनस्थ कभी नहीं समझना चाहिये। वह जो इसका पालन नहीं करता, अपने कर्तव्य का समुचित निर्वाह नहीं करता उदाहरणार्थ अपने गुरु लालाजी को लीजिये इस प्रकरण में उन्होंने सबके लिये उदाहरण स्थापित कर दिया है, तुम सभी को उसका अनुकरण करना चाहिये। तब स्वामी विवेकानन्द ने कहा, कि अब तुम्हारा जीवन खतरे में है। अमुक'अ' के घर के अतिरिक्त तुम्हें अन्यत्र कुछ भी भोजन ग्रहण करने की स्वीकृति मैं नहीं देता, तुम बाजार से भी कोई वस्तु नहीं खरीदोगे। खाद्य पदार्थों को बाजार से मंगाने में अपने सेवकों का विश्वास न करना, जब तुम सोना कोई जागते रहना चाहिये। और सावधान रहे। लोगों ने अंदाज कर लियां है कि तुम लालाजी के प्रतिनिधि बन गये हो, जहां कहीं तुम ठहरना तुम्हारा स्थान (आसन) मध्य में होना चाहिये। किसी समय तुम्हें अकेला नहीं छोड़ा जा सकता। अन्य कोई सतर्कता जो आवश्यक हो, व्यवहार में लायी जाय, जब तुम बोलाना या सत्संग प्रयोग करना किसी को तुम्हारे पीछे पूर्णतया सावधान खड़े रहना चाहिये। जो तुम्हें प्रेम करते हैं उन्हें सत्संग में भीड़ में बैठने की आवश्यकता नहीं है । लालाजी ने भी इसकी संतुष्टि की विवेकानन्द द्वारा अवगत कराई गई सावधानिया प्रत्येक मूल्य पर ध्यान में रखी जाएं ।

२८–३–४५ स्वामी विवेकानन्द ने मुझे अवगत कराया कि फतेहगढ़ में कुछ लोग है जो मेरी वरिष्ठता को या लालाजी के कार्य में अग्रणी सहयोग को वे नहीं सहन करते हैं । उन्होंने मुझे बताया कि भगवान कृष्ण ने स्वयं कार्य ग्रहण कर लिया है, और सभी मुक्तात्माएं उनके अधीनस्थ कार्य कर रही हैं। उन्होंने आगे कहा कि पूज्य लालाजी उन व्यक्तियों को क्षमा नहीं करेंगे जो कि उनके द्वारा मुझे प्रदत अधिकारी का तिरस्कार करेंगे ।

२९–३–४५ स्वामी विवेकानन्द ने मुझे सुझाव दिया कि एक दिन केवल दूध और पके हुए फल ही ग्रहण करना है, "मैं तुम्हारी इस क्षमता योग्यता की प्रशंसा करता हूं। कि तुम प्रदत अनुभव के तुम तत्क्षण ही अनुभूति पटल पर अंकित कर लेते हो। मैं तुम्हें सत्यता बताता हूं । हमारी प्रत्येक क्रिया एवं विचार सीधे तरंगो के रूप में तुम्हारे पास पहुंचता है। जिसे श्रुति कहते हैं; और तब शब्द व्यक्त होते हैं। पूर्व समय में हमारे देश के ऋषिगण श्रुति श्रवण करते थे तुम्हारा प्रसंग विशिष्ट

है। तुम दोनों चीज अर्थात् श्रुति एवं शब्द अल्पक्षणों में साथ-साथ ही ग्रहण कर सकते हो। गौतम बुद्ध ने आत्मिक सम्पर्क किया और कहा कि उनके प्रशिक्षण की वही पद्धति थी जो हमारे पूज्य लालाजी महाराज की। उन्होंने कहा कि यह युगान्तर प्राचीन प्रणाली है, जिसे लोग विस्मृत कर चुके हैं।

३०-३-४५ फतेहगढ़ के लिये प्रस्थान का आदेश मिला पूज्य लालाजी ने सम्मति दी कि जो कुछ में समय-समय पर कर रहा हूं उसकी नकल जब तक पर्याप्त एकत्व स्थापित न हो जाय, दूसरे लोगों द्वारा अनुकरण नहीं किया जाना चाहिये।

३१-३-४५ आज फतेहगढ़ में भण्डारे का दिन था। लालाजी के आदेशानुसार ८.४० प्रातः पर ध्रुवाधिपति रामेश्वर प्रसाद द्वारा सामान्य सत्संग में यह घोषणा की गई कि शाहजहाँनपुर के बाबू रामचन्द्र जी पूज्य लालाजी के उत्तराधिकारी हैं।"

१-४-४५ स्वामी विवेकानन्द ने सुझाव दिया कि अपने आध्यात्मिक बन्धुओं में कुछ परिवर्तन करना चाहिये और अभ्यास की विधि भी संशोधित की जानी चाहिये। जिससे कि लोग प्राचीन जड़ प्रणालियों से चिपके न रहें।

३-५-४५ दक्षिण भारत के कार्य का अनुसरण करने हेतु मुझे एक वर्ष का समय दिया गया था अपने सत्संग में रचनात्मक कार्यक्रम के निर्धारण हेतु मुझे आदेश दिये गये। जिसे स्वामी विवेकानन्द के निर्देशनमें एक व्यक्ति को सौंपने का आदेश मिला। मुझे यह भी सुझाव दिया गया कि दक्षिण भारत की यात्रा मैं पुनः करूं।

५-४-४५ लालाजी ने सूचित किया कि हमारे सहयोगी बन्धुओं को मेरे कार्य का दिव्य एवं पवित्र भाव में ग्रहण करना चाहिये। और आत्मा एवं मन से तदनुसार कार्यशील रहना चाहिये।

६-४-४५ स्वामी विवेकानन्द ने विगत की ध्यान सम्बन्धी विधियों के विषय में संकेत देते हुये हमारे सत्संग में सम्प्रति प्रवेश कराये जाने वाली प्रणाली के सम्बन्ध में बताया।

११-४-४५ पूज्य लालाजी ने मेरी देह में अपने निवास की इच्छा से अवगत कराया और इस भांति अपना कार्य सम्पन्न करने हेतु कहा एतदर्थ उन्होंने मुझे समुपयुक्त संग्राहक बना लिया है। यह सर्वथा नवीन बात है। देहरादून एक्सप्रेस से हरिद्वार के लिये प्रस्थान किया।

१२-४-४५ पूज्य लालाजी आदेश देते हैं :-यहां सभी स्थानों को शुद्ध कर दो। पृथ्वी की स्थूलता भी दूर कर दो। तुम वहां जाकर साधुओं से घुलमिल सकते हो १४ अप्रैल को हरिद्वार छोड़कर दिल्ली चले जाना। दिल्ली में बहुत कार्य है। १०.३० रात्रि में लालाजी ने कहा :-कल ८.०० बजे प्रातः तुम्हारी उपस्थिति घाट पर होगी। वहाँ कम से कम एक घण्टे तक तुम्हें रहना है। हरिद्वार की स्थूलता दूर हो चुकी है दिन में हरिद्वार को अन्तर्जागरित करना और रात्रि में

विनाशक कार्यों का संचालन करना है ।

१३–४–४५ पूज्य लालाजी ने कहा कि मेरे दिल्ली पहुंचने का समाचार प्रेषित किया जा चुका है । और यह अवगत कराया कि मेरे वहां पहुंचने की तिथि और समय की प्रत्येक सन्त प्रतीक्षा कर रहा है। मुझे आदेश दिये गये कि कल बाद दोपहर मुझे प्रस्थान करना चाहिये । और जब तक मैं हरिद्वार में रहूं । इसे प्रकाशित करते रहना चाहिये । मुझे सचेत किया गया कि जैसे एक दो स्थानों पर हुआ है मुझे समग्र शक्ति का आहरण नहीं कर लेना है । मुझे बताया गया कि दिल्ली के दिव्य संरक्षक देवता ने मेरे वहाँ पहुंचने की तिथि और समय जानना चाहा है और यह कहा कि उनको मेरी रक्षा के लिये आदेश प्राप्त हो चुके हैं ।

१४–४–४५ दिल्ली के लिये प्रस्थान (डायरी में अनुपलब्ध) गढ़ मुक्तेश्वर पर ही दिल्ली का कार्य मुझे सौंपा गया । जैसे ही मैं रेलवे स्टेशन के बाहर जाया एक सन्त मेरे पास यह कहते हुए आये कि वे दिल्ली के ईश्वरीय संरक्षक हैं । और यह अवगत कराया कि उन्होंने अपना कार्य (कर्तव्य) आरम्भ कर दिया है ।

३-०० सायं पूज्य लालाजी :–दिल्ली में अधिक परिश्रम की आवश्यकता वाला बहुत सा कार्य है। कल दिल्ली को शुद्ध कर दो, और कृपाधार प्राणाहुति से प्रत्येक कण को इस प्रकार सम्पूरित कर दो कि यह वास्तविकता का प्रत्यावर्तन करने लगे । कुछ अन्य कार्य भी इसके बाद करने को मिलेंगे । दो घण्टे विश्राम कर लो कार्य रात्रि में आरम्भ किया जायेगा ।

१६–४–४५ (दिल्ली) पूज्य लालाजी :– दिल्ली का कार्य संतोषजनक रहा । दैवी अधीक्षक का आसन उखाड़ फेंकों आज का मात्र यही कार्य है । मुझे आदेशित किया कि कल से दिल्ली को पुनः अन्तर्प्रकाशित करना है दिल्ली पर ईश्वरीय कृपा की धार अनवरत बहती रही । १०.३० बजे रात्रि लालाजी ने सूचित किया कि दिल्ली का प्रत्येक कण कण प्रकाशित किया जा चुका है ।

१७–४–४५ दिल्ली का कार्य सम्पन्न हो चुका है । मुझे कल प्रस्थान करने के आदेश मिले । नगर के नीचे मैंने आध्यात्मिकता का भण्डार स्थापित कर दिया है । समस्त भू–भाग शुद्ध कर दिया गया और दिल्ली के दैवी प्रभारी का कहना है कि दिल्ली की भूमि दिव्य कृपा का संचार कर रही हैं लेकिन किसी के पास इसे देखने की क्षमता नहीं है । पूज्य लालाजी–"रामचन्द्र मैंने तुम्हें वह सम्पत्ति प्रदान की है जो राजा महाराजाओं को उपलब्ध नहीं । आने वाली पीढ़ियाँ तुम्हें याद करेंगी कोई जन्म लेगा ही, जो तुम्हारे संदेश को पूरा करेगा । मथुरा में तुमने जिन स्थानों की खोज की है इन्हें खोजने की क्षमता/योग्यता किसी अन्य में नहीं थी । यह चीजे (बाते) तब तक बाहर नहीं जानी चाहिये जब तक समुचित समय न आ जाये, और कोई उन्हें अपसृत करने पर न तुला हुआ हो । तुमने स्वयं को सरलता में इस भाँति ओझल कर लिया है कि लोग तुम्हारी क्षमता धारिता का अनुमान भी

नही कर पाते । मैं एक बार पुन: कहता हूं कि वे सौभाग्यवान हैं, जो तुमसे लाभान्वित होते हैं । और तुम्हारा सत्संग करते हैं । आने वाले युग युगान्तरों तक ऐसा अवसर अनुपलब्ध रहेगा । नही ऐसा व्यक्ति प्रकट हो सकता है । तुम्हारी स्थिति अवतार की स्थिति है । उच्चतम योग्यता के सन्तों ने तुम्हें पूर्ण निष्ठा से अपना उत्तराधिकारी बना दिया है उन्हें अपनी महत्वाकाक्षाओं के पूरा होने की तुमसे आशा है । मैं पूर्णरीत्या अपने प्रत्येक अवयव सहित तुममें लय हो चुका हूं, और स्वयं को पूर्णतया नकार दिया है । (शून्य कर दिया है) अन्यत्र कहीं ऐसा शून्यत्व देखने को नही मिल सकता । न ही ऐसी सम्भावना भविष्य में है । तुमने भी अपनी ऐसी कोई वस्तु नही रखी जिसे मुझको समर्पित नही कर दिया । तुम्हारे सत्संगी/सहयोगी तुमसे इसका अनुकरण करने की सीख लें । मैंने दिल्ली का कार्य सम्पन्न कर लिया है, छत्तीस घण्टों से दिल्ली पर ईश्वरीय कृपा की धारा सम्प्रवहमान रही ।

१८/१९–४–४५ शाहजहाँनपुर के लिये वापिसी प्रस्थान यात्रा ।

२१–४–४५ स्वामी विवेकानन्द ने मुझे सूचित किया कि वे और लालाजी कानपुर में कार्य में सलग्न है, और यह कहा कि उचित समय में मेरे कार्य का प्रभाव प्रकट होगा जब कि यह पूरा हो चुकेगा ।

२२–४–४५ मैंने भगवान कृष्ण से प्रार्थना की "मुझे नितान्त छोटी बातों के लिये पारितोषिक प्रदान किये गये, जो कि तुम्हारे कथनानुसार सभी मेरे गुरुजी के सौजन्य से मिले जिन्होंने मुझे इस योग्य ऐसा बनाया है। इसलिये मुझे कोई कारण नही समझ में आता कि क्यों मेरे गुरु को उनके परिश्रम का फल नही दिया जा सकता,और चूंकि स्वामी विवेकानन्द ने भी कुछ बाकी नही रखा । इसलिये उन्हें भी इस पारितोषिक में भाग मिलना चाहिये । स्वामी विवेकानन्द और लालाजी मेरी इस प्रार्थना से अत्यन्त प्रसन्न हुये ४.१५ सायं पर ऋषि अगस्तय ने मुझे एक सम्पूरक प्रदान किया और कहा कि मेरे गुरु लालाजी ने मेरे अन्दर कोई कमी नही छोड़ी है । और यह उनकी चतुरता के सौजन्य से ही हैं कि मैं ऐसी उत्कट समझ की शक्ति रखता हूं ।"

२५–४–४५ ११.१५ प्रात: पूज्य लालाजी ने अमुक M को मेरी अनुपस्थिति में शक्ति सम्पूरित करने हेतु नियुक्त किया वह (M) एवम्विधि आवश्यकतानुसार स्वयं में यह शक्ति भर सकता है । ११.४० प्रात: लालाजी ने अपनी नवत: अधिग्रहीत स्थिति का प्रत्यावर्तन करने की इच्छा की । और मेरे प्रति अतिशय प्रेम के वशीभूत होकर ऐसा ही कर दिखाया । स्वामी विवेकानन्द:—इस प्रकार का प्रेम कभी नही देखा गया । शिष्य उपलब्ध हो सकते हैं लेकिन इस योग्यता के नही, कभी कभी मुझे उनके लिये खेद भी होता है जो इस अवसर का उपयोग नहीं कर सकते हैं । ऐसा समय कभी नही आयेगा वे सौभाग्यवान है जो इस अवसर को उपलब्ध करते है । पूज्य

लालाजी ने कुछ निर्देश उस संगठन के सम्बन्ध में दिये जो उनके नाम से तैय्यार करना है। और इसकी क्रिया पद्धति के बारे में निर्देशित किया। मुख्यालय शाह–जहांपुर ही रहेगा। और जब तक मैं आदेश नही करता इसे बदला नही जायेगा। शेष स्थानों को केन्द्र कहा जायेगा।

२६–४–४५ स्वामी विवेकानन्द ने निम्नलिखित आदेश दिया, अब तुम्हारी देख रेख प्रत्येक उपाय से करना आवश्यक हो गया है। हमें तुमसे कार्य लेना है। मैंने एक महान ऋषि को नियुक्त किया है जो तुम्हारे स्वास्थ्य की देख रेख तब तक करता रहेगा जब तक वह इस संसार में रहेगा। अपने इस संसार से विदा होने के बाद भी वह अपना कर्तव्य करता रहेगा। यदि एक क्षण के लिये भी वह अपने कर्तव्य से असावधान होगा तो उसके विरुद्ध गम्भीर कार्यवाही की जायेगी। लंका के एक ऋषि ने मुझे सूचित किया कि मेरे स्वास्थ्य की रक्षा के लिये उन्हें नियुक्त किया गया है लेकिन भोग अनिवार्य है इसमें कोई सहायक नही। अपने सारे जीवन इस कर्तव्य का निर्वाह करते रहने का ऋषि ने आश्वासन प्रसन्नतापूर्वक दिया।

उन्होंने कहा–उस प्रसन्नता को अभिव्यक्त नही किया जा सकता जो मैंने कर्तव्यभार ग्रहण करने के तत्क्षणोंपरान्त ही अनुभव की। यह बात और ऐसी स्थिति अन्यत्र मेरे अभिज्ञान में नही उभरी। तुम्हारे गुरु ने तुम्हें पूर्णरीत्या आपूर्य माण कर दिया है। और कोई स्थान रिक्त नही रहा। तुम्हारे शरीर के प्रत्येक कण (अवयव) में पूरी शक्ति सन्निहित है। मैं तुम्हें बताता हूं कि यह कार्य मुझे क्यों सौंपा गया। तुमने स्वयं को समग्रतया नकार दिया है अतएव सन्तों ने विवश होकर यह कार्य मुझे सौंपा है। मैंने इसे आरम्भ कर दिया है तुम्हारी दशा उस बच्चे की भांति हैं जो अपनी मां के अतिरिक्त अन्य किसी को नही पहचानता।

तुमसे आयु में अधिक होने के कारण (नाते) मैं तुम्हे आशीष देता हूं कि जब तक तुम जीवित रहोगे, लोग दीवानों की भांति तुम्हारे प्रेम में उसी भांति आसक्त रहेंगे जैसे कि ज्वाला के प्रति शलभ। जिस कार्य के लिये तुम आए हो, पूरा होगा। इसमें ही हम सब की भलाई है। अतएव अपने लिये मैं यह प्रार्थना करता हूं। प्रकृति की शक्ति स्वत: ही तुममें अवतरित हो चुकी है। मै तुम्हें आश्वस्त करता हूं कि ऐसी शक्तियां मानवीय तंत्र में नही रह सकती। यह तुम्हारे गुरु की क्षमता एवं योग्यता है कि उसने तुम्हें इस भांति ढाल दिया है।

२७–४–४५ गौतम बुद्ध ने मुझे नौकरी छोड़ने का सुझाव यह बताते हुये दिया कि वह अपने राजमुकुट को लात मारकर ही तथागत हुये थे।

२९–४–४५ पूज्य लालाजी ने विभिन्न बिन्दुओं पर प्राणाहुति देने की विधि विस्तार से समझाई। "अब तक सन्तों ने प्राणाहुति का प्रयोग हृदय पर करने की सम्मति दी है। और उन्होंने पिण्ड प्रदेश को लिया ब्रह्माण्ड को लिया और इसके आगे परम ब्रह्माण्ड आदि प्रक्षेत्र बिन्दु को लिया अन्त में वे निम्नस्थ केन्द्र (चक्र) लिया करते थे।

विशिष्टतया नाभि (मणि पूरक) के नीचे वाले अब समय की आवश्यकता यह है कि निम्नस्थ केन्द्र चक्र भी साथहीसाथ लियेजाएँ। निस्संदेह तुमने कुछ सन्दर्भित स्थानों में शुद्धीकरण के लिये निम्नतम विन्दु लिये है। आज से मैं तुम्हें सम्मति देता हूं कि हृदय के शुद्धीकरण के उपरान्त पिण्ड भी शुद्ध कर लेना चाहिये इसके बाद हृदय में प्राणाहुति दी जाय जैसा कि तुम इस समय कर रहे हो। निम्नस्थ चक्र भी लो– ताकि मन की चंचलता कम की जा सके। लेकिन सावधानी रहे कि इन विन्दुओं पर अधिक बल न दिया जाय। कारण यह है कि ऐसा करने पर तत्काल ही चमत्कार जागरित हो जायेंगे। और इस संदर्भ में ईश्वर से विमुख हो जाने की प्रत्येक संभावना है। तुम सभी को यह सावधानी रखनी चाहिये। तुम ऐसी बातें प्रकाश में लाओगे। जिनसे तुम्हारे बाद संसार आश्चर्य चकित हो उठेगा। तुम्हारे जीवन काल में तुम्हारी परवाह कौन करेगा ? देखने में तुम मुट्ठी भर हड्डियों से अधिक नही हो। लेकिन मैंने तुम्हारे अन्दर प्रत्येक वस्तु भर दी है। आज से उपरिवर्णित विधि का पालन करो।

३–५–४५ मुक्तात्माओं द्वारा अपनाई जाने वाली प्राणाहुति की विधि मैंने जान ली। यह इस भाव में दुष्कर है कि मुक्तात्माओं की भांति देहधारी वैसी प्राणाहुति नही दे सकता।

४–५–४५ राजपूताना सहित सम्पूर्ण उत्तर भारत को कार्यक्षेत्र में लेने के आदेश मिले।

५–५–४५ पूज्य लाला जी ने प्राणाहुति की सहज प्रणाली प्रचलित करने हेतु निर्देश दिये।

९–५–४५ अभ्यासी में सजगता विकसित करने की विधि मुझे परिलक्षित हुई पहले यह विचार स्थिर कर लेना चाहिये कि एक चमकता हुआ (प्रज्ज्वल) नक्षत्र अभ्यासी के हृदय में प्रविष्ट हुआ। तब उसकी प्रज्ज्वल आभा इच्छा शक्ति द्वारा बढ़ाई जाय, इस प्रकार बढ़ाई जाय कि नक्षत्र की स्थिति (दशा) अधिकाधिक प्रकाशमान हो उठे और इसके प्रकाश को शनैः शनैः हृदय में फैलने देना है। नक्षत्र (सितारे) का सम्बन्ध मस्तिष्क से बना लिया जाना चाहिये। विचार बहुधा कुछ दिनों तक बनाकर दृढ़ कर लिया जाय। कि यह स्थायी रुपाकृति ग्रहण करले। यदि और अधिक आभामय बनाना हो तो सितारे के स्थान पर सूर्य का विचार प्रयोग किया जाय। चन्द्राभा का विचार कभी नही बनाना चाहिये क्योंकि यह शक्ति को क्षीण करता है और ग्रंथिल हो जाता है। इसी प्रकार सूर्य के विचार में भी अत्यन्त सावधानी बरतनी चाहिये। इन दोनों विधियों का अपनाया जाना अनुमति बिना मना है।

१०–५–४५ प्रकृति का निम्नलिखित नियम प्रत्यक्ष हुआ— "सृष्टि के आरम्भ में क्षोभ (स्पन्दन) उत्पन्न हुआ, इस (स्पन्दन) ने विविधि रुप ग्रहण कर लिये, पृष्ठ भाग में आधार रहा और अब भी है। इसका अधिकाँश भाग मनस के रुप में प्रकट

हुआ। आधार इस मन के पीछे जहां से विविध रूप प्रकट हुये, गति शील होने लगा। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति ने अधिकाँश रुपेण–प्रथम क्षोभ के साथ अवतरित स्थिति, जिसे मनस कहते है, (उपलब्ध) ग्रहण कर ली। मनस के पृष्ठ तल में भी वही स्थिति विद्यमान है जो प्रथम क्षोभ के पीछे है। चूँकि मानव में यह कम अंश में है अतएव यह शक्ति स्पष्टतया परिलक्षित नही होती। ऐसा कहा जाय यह धुंधले रुप में है। जब प्रथम प्राणाहुति दी जाती है, तो वह स्थिति शुद्ध कर ली जाती है। जिससे कि कणों का अवांछनीय प्रभाव परिसमाप्त हो जाय, जो कि क्षोभ के समग्र आयामों में सम्प्रवहमान रहता है– अपने आत्मिक बल से मन की ओर प्रवाहित कर दिया जाय। यह अभ्यास प्रत्येक चक्र पर किया जाय। इसका परिणाम यह होगा कि आधार की शक्ति अपनी छाया स्वत: प्रसारित करने लगेगी। और जो भी उन्नति उपलब्ध होगी स्थायी एवं पूर्ण होगी। इतकी बारीकियां, सूक्ष्मताएं केवल इस विधि से प्राणाहुति देने के बाद ही समझी जा सकती हैं।

११–५–४५ यदि एक सूक्ष्म वस्तु को अनेकों घुमाव दिये जायेंगे तो इसमें स्थूलता प्रविष्ट हो जाती है। लाखों वर्ष तक ऐसे घुमाव आधार के झटके के बल से धारा में प्रवहमान रहते है, कणावयव परस्पर घूमते रहे और शक्ति (ऊर्जा) के अतुल भण्डारागार बनगये।मध्यस्थ शक्ति उस ऊर्जा का अधीक्षक देवता बनगयी। अर्थात् समान प्रकृति के कणों को आकर्षित करते हुए कणावयव परिभ्रमण करते हुये विशाल पिण्ड/शक्ति बन गये। यह कार्य वर्षों तक होता रहा जिससे कि वस्तुएं अन्तत: विभिन्न गोलकों के रुप में आ गईं। परिभ्रमण फिर भी नही रुका, लेकिन जब तक कि वाँछित रूपाकार में वस्तुएं प्रकट नही हो गयी-निरन्तर प्रचलित रहा, परिभ्रण एवं विखण्डन अब भी रुका नही है। यह लगभग पूर्ण महाप्रलय तक होता रहेगा। मानव स्वयं एक विशाल द्वीप समूह है जिसमें यह सब सूक्ष्मतया विद्यमान हैं। अतएव सन्तों ने इसे लघु ब्रह्माँड कहा है। परिभ्रमण करते हुये कणों की स्थूलता और इसके पृष्ठ तल में शाश्वत स्थिति के रुप में उसे कहा जा सकता है। अब प्रलय काल में क्या होता है ? कि उनकी स्थूलता समाप्त होने लगती है। अर्थात् परिभ्रमणीय बल से समुत्पन्न ऊर्जा स्वत: ही नष्ट हो जाती है। जो कि प्रलय के आरम्भ और अन्त का कारण बनती है। कल बताई गई प्राणाहुति की विधि के आलेख में आगे इस प्रकार स्पष्ट किया गया।

परम शाश्वत आधार शक्ति जो मानव में आपाद शिखा संचरित हैं उसे उन विन्दुओं की ओर आकर्षित कर लिया जाय जिनमें परिभ्रमण के कारण स्थूलता उत्पन्न हो गयी है। लेकिन उन कणावयवों के रुप यथावत् रहने दिये जाय, रूपाकार नष्ट नही करना है। सावधानी शीघ्रता पूर्वक मेरी प्राणाहुति नही देनी चाहिये। नही प्रत्येक इसके लिये समुपयुक्त हो सकता है। यह विधि मूलसार (नाभिकीय विधि)

कहलाती है ।

१२–५–४५ पूज्य लालाजी ने मुझे इस (सहज) साधना के विज्ञान वैज्ञानिक पक्ष को सम्पन्न करने हेतु निर्देश दिये "यदि तुम स्वयं को उस दशा में लय करने के उपरान्त, जो क्षोभ के पीछे (पृष्ठतल में) विद्यमान है, प्राणाहुति देते हो तो इसका शक्तिपूर्ण (सबल) प्रभाव होगा लेकिन यह विधि सब कोई अभ्यास में नहीं ला सकते । इस पर मुझे सुधार इस प्रकार परिलक्षित हुआ, किसबसे पहले जोक्षोभ (स्पन्दन मानव में विद्यमान हैं, उसके कारणों की कालिमा–कलुष, को नष्ट, समाप्त कर दिया जाना चाहिये, तब प्रभा, आभा या प्रकाश जो कि स्थूल भौतिक तत्व ही कहा जा सकता है, उसे बाहर निकाल फेंकना चाहिये। किन्तु रुप बनाये रखना चाहिये अथवा एक अन्य सभीचीन विधि यह होगी कि चमक या आभा को जो (चेतना) कणों में चिरन्तन काल से विद्यमानहै, उसे हटा देना चाहिये । और इनका वह प्रभाव भी जो इन्होंने (कणों ने) सन्निहित कर रखा है हटा देना चाहिये, तो अब केवल शुद्धता शुचित, ही बचती है । इस विधि से वह दशा (विन्दु) जिसे सन्त एवम् ऋषि गण भी उपलब्ध नही कर पाये और जो वर्षों की उपासना व ध्यान के बाद भी नितान्त दूर रहती है, प्रथम चरण में ही प्राप्तव्य है ।

जायेंगे । वे बातें जिनकी वेद और अन्य शास्त्रों में प्रशंसा की गई है, और परेजाने का सम्मति पूर्ण विचार किया गया है । इस विधि से प्राणाहुति द्वारा तत्क्षण ही सुस्पष्ट (प्रशस्त) हो जायेंगी । यह विन्दु क्या है यह अव्यक्तगति कहलाती है । या माया विरहित दशा मुस्लिम इसे आलमे कुद्स (Alam-e-Kudus) कहते हैं, यदि यह विधियाँ प्रयोग में लाई जाती है तो माया के बन्धन टूट जाते हैं । सर्वप्रथम बाधा व्यवधान समाप्त होंगे, इस विधि से प्रशिक्षक का बहुत सा परिश्रम बच जाता है ।

नोट:—तीसरी अवस्था की प्राणाहुति बहुत दिनों बाद में देनी चाहिये । पहली के लिये सामान्य अनुमति है । और दूसरी विधि कुछ चुने हुये लोगों के लिये अनुमन्य है लेकिन सर्वरूपेण सुरक्षित विधि हृदय के विन्दु को लेना है । और अन्य बिन्दुओं का भी शुद्धीकरण उपरि निर्देशित विधि द्वारा करते रहना चाहिये । संसार के रूपान्तरण की विधि प्रकट हुई । (किन्तु चूँकि उसे कोई भी प्रयोग नही कर सकता अतएव उसका उल्लेख नही किया जा रहा है) सर्वोत्तम विधि यह है कि परम शाश्वत (केन्द्र) की उस दशा में स्वयं को लय कर देना चाहिये और परिवर्तनीय वस्तुओं का विचार ग्रहण कर इस प्रकार विकीर्ण कर देना चाहिये कि वह वस्तुयें समस्त शक्ति क्षेत्र में फैल जाएं । तब फिर कणों के प्रभाव को दूर करने के लिये एक सबल धक्का (प्राणाहुति से) देना चाहिये जब तक कि प्रभाव पूर्णतया बाहर न निकल जाय, समाप्त न हो जाय। यह कार्य विधि केवल उन्ही के द्वारा प्रयोग में लायी जा सकती हैं जो इस कार्य हेतु नियुक्त किये गये है ।

१५–५–४५ मुझे एकान्त में किसी स्थान पर पाँच दिन तक बिना किसी से मिले हुये केवल एक समय भोजन ग्रहण करते हुये रहने के निर्देश दिये गये।

१५–५–४५ पूज्य लालाजी:—"यदि केवल एक व्यक्ति ही पूर्णरीत्या तैयार कर दिया जाता है तो वह गुरु के ऋण को पूरा कर देगा। मेरे संदर्भ में यह बात बिल्कुल सत्य सिद्ध होती है। मैं अपने पूरे जीवन भर में केवल एक आदमी तैयार कर पाया लेकिन खेद है कि किसी ने इसका मूल्य नही समझा। इस समय (जमाने) की सामान्य रीति–प्रवृत्ति है कि लोग रंगीनी (चमक दमक) पसन्द करते है। अध्यात्म जैसी शुष्क वस्तु के लिये कोई पसन्दगी नही। तुम मेरे जीवन के मूल प्रयोजन बन गये हो और इस सीमा तक कि सन्तों की दृष्टि तुम्हारी ओर लगी हुई है। मैंने तुमसे कुछ भी पृथक नही छोड़ा।"

मन (जो सन्तुलन से बाहर हो जाता है) की चंचलता दूर करने की एक विधि "मन की क्रियाशील दशा अधिकतर हृदय में रहती है। मन को परम शाश्वत का अंश भाग इस रूप (प्रकार) से समझना चाहिये कि यह और वह दोनों एक ही रुप रंग के हैं, रंग का तात्पर्य लाल पीले हरे से नही अपितु इस प्रकार से कि यदि परम शाश्वत प्रकाश है तो मन भी उसी भांति एक अंश भाग है। जैसी कि इसकी व्याख्या (वर्णन) की गई है। मन: प्रवृत्ति इस प्रकार से परमशाश्वत (केन्द्र) की ओर आकर्षित कर देनी चाहिये, कि जैसी यह पहले थी कि मूल केन्द्र पर ध्यानान्वित होती रहे। जब तक उपवेशन Sitting दिया जाय तब तक यह विचार बनाये रखना चाहिये। इस विधि से मन की सभी शिकायतें (उपालम्भ) सम्यक् तया दूर हो जायेंगी। एक दूसरी विधि—परम शाश्वत केन्द्र की दशा से एक एक कर समग्र चक्रों को अनावृत्त एवम् शुद्ध कर लेना चाहिये। और उन्हे मूल केन्द्र से इस भाँति एकत्व स्थापित करने देना चाहिये कि मूल अवस्था की झलक का उद्भव होने लगे तब जैसा कि पहली विधि में बताया गया है एकत्व की दशा को मूल दशा में लय कर देना चाहिये। "क्या मनोहारी विज्ञान है कि जब एक अणु (छोटी चीज)–बड़ी चीज द्वारा चारों से दबाई जाती है अथवा डुबोई जाती है। तो बड़ी चीज छोटी चीज को घेर (परिव्याप्त कर) लेती है। यदि ऐसा ही उपचार लम्बे समय तक जो विकृति से बड़ी चीज बन गया है, के साथ किया जाय तो दोनों चीजें एक हो जाएगी इसी भांति जब सभी चक्र पार कर लिये जाते हैं और मूल केन्द्र से उन्हें एकत्व मिल जाता है। तब यह समग्र दशा पूर्णरीत्या मूल केन्द्र में लय कर देना चाहिये। कुछ दिनों तक अभ्यासी पर इसका प्रयोग किया जाना चाहिये। तो इसका परिणाम होगा कि जो दशा नितान्त सक्षम अधिकारी पुरुष कठिन स्वप्रयास से भी प्राप्त नही कर सकते। वर्षों की वह स्थिति अभ्यासी को प्राप्त हो जायेगी। दूसरी विधि अत्यत जटिल है, और हर किसी द्वारा अभ्यास में नही लानी चाहिये। जिसे ईश्वरीय कृपा से इस ओर अग्रसर किया जा चुका है, केवल वही इसका प्रयोग कर सकता है।

१७–५–४५ प्राणाहुति की कतिपय प्राविधियों का स्वामित्व लाला जी के हस्तान्तरित कर दिया। उन्होंने इस तथ्य पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट की कि कोई भी अभ्यासी अपनी आन्तरिक स्थिति संकाय इस अवस्था तक न विकसित कर पाया, कि उनकी कृपा पूर्ण शक्ति के साथ उस पर बरसाई जा सकती वस्तुतः उन्होंने अपने से अधिक प्रत्येक को प्रेम किया और प्रत्येक को वे अपने समान बनाने की प्रबल इच्छा रखते थे। उन्होंने समस्त मार्ग को सहज (सरल) सीधा बना दिया था। केवल पूर्ण शून्यत्व के निमित्त विभिन्न अवस्थाएं पार करने की एक दृढ़ इच्छा की आवश्यकता थी। एतदर्थ उन्होंने समाधान प्रस्तुत किया, हर किसी को यथा सम्भव स्वयँ में प्रत्यावर्तित अन्तस्थ हो जाना चाहिये, उसे अपने त्रुटियों का प्रमाण करते रहना चाहिये और उन्हें सुधारते रहना चाहिये।

१९-५-४५ भगवानकृष्ण ने हठयोग एवं राजयोग पर प्रकाश डाला पहले को उन्होंने स्थूल (भारी) और दूसरे को सूक्ष्म, हल्का बताया। दोनों पर पूर्ण स्वामित्व रखते हुये भी उन्होंने राजयोग को श्रेयकर बताया। राधा जी ने मुझे प्राणाहुति दी। (ध्यान कराया)

२०–५–४५ स्वामी विवेकानन्द ने श्री रामचन्द्र मिशन की क्रिया पद्धति कार्यों के सम्बन्ध में निर्देश दिये और कहा कि इसे पंजीकृत करा लेना चाहिये।

२२–५–४५ निम्नलिखित विधि आविष्कृत की गई:– जब पिण्ड क्षेत्र से अभ्यासी को ब्रह्माँण्ड क्षेत्र में ले जाने की आवश्यकता हो, तब ध्यान केवल ब्रह्मक्षेत्र की दशा उत्पन्न करने पर देना चाहिये, न कि उसे पिण्ड से ब्रह्माण्ड क्षेत्र में खींचा जाय। और साथ ही साथ दोनों दशायें (पिण्ड व ब्रह्माण्ड की) पूर्ण कर देनी चाहिये। यह सामान्य विधि है, दूसरी विधि है, कि विचार का एक सिरा पिण्ड क्षेत्र में तथा दूसरा सिरा ब्रह्माण्ड क्षेत्र की ओर मोड़ देना चाहिये, और विचार जो पिण्ड क्षेत्र में है, के छोर से धाराएं निम्नस्थ केन्द्रों में सन्निर्दिष्ट कर देनी चाहिये, इसका प्रयोजन यह है कि पिण्ड क्षेत्र की यात्रा भी सम्पन्न कर ली जाएं, और ब्रह्माण्ड भी खोल देना चाहिये। इस प्रकार साथ ही साथ दोनों क्षेत्र शक्ति प्राप्त कर लेता है। इससे परे के क्षेत्र बिन्दुओं के संदर्भ में भी यही विधि समुपयुक्त हैं।

२५–५–४५ पूज्य लालाजी ने निर्देश दिये कि नवीन प्रवेशी अभ्यासी को २–३ दिन एकान्त में रहने दिया जाय और तब समूह में बैठने की अनुमति दी जावे। प्रशिक्षक को भी एकाकी बैठकर शुद्धीकरण सम्पन्न कर लेना चाहिये।

२६–५–४५ स्वामी विवेकानन्द ने मुझे अवगत कराया कि मुक्तात्माएं उनके लिये प्रतीक्षारत है। और यथा आवश्यकतानुसार वे मेरे पास आएंगी।

२९–५–४५ इसकी परीक्षा ली गई और प्रमाणित सिद्ध हुआ कि निम्नलिखित बिधि के अनेकों लाभ हैं। इनसे कई आत्मिक एवं शारीरिक रोगों का उपचार हो सकता है। विधि इस प्रकार है :–मस्तिष्क में एक शक्ति अन्तर्निहित है जो मूल स्रोत से सम्बन्ध है–उस शक्ति का एक अंश प्रकाश संग्राहक रुप में ग्रहण कर अवतरित

कर लेना चाहिये । इसे हाथ पैर एवं सभी स्थानिक बिन्दुओं में प्रवाहित करते हुये देह के बाहर निसृत कर देना है, निकाल फेंकना है । तब पुनः दूसरा अंग भाग ग्रहण करना चाहिये, यदि देह के किसी अंग में रोग है तो प्रकाश को उस अंग से होकर इस विचार के साथ सम्वहित करना है कि इसके साथ ही बीमारी भी इससे बाहर खींच फेंकी गई, निस्तृत कर दी गई ।

पूज्य लालाजी :—तुम्हारा जीवन उन्हीं बातों के लिये समर्पित होगा अनेकों समस्याओं का समाधान करना है, तुम्हारे समक्ष प्रकृति नतमस्तक है, तथा कथित महान धुरंधर व्यक्ति भी इसे उपलब्ध नहीं कर सकते ।

३०—५—४५ लालाजी ने भौतिक समृद्धि के लिये कतिपय यन्त्रों (ताबीजों) के लिये सुझाव दिये ।

३१—५—४५ अत्यधिक कमजोरी को दूर करने की उपचार पद्धति प्रकट की गयी । निराशा, हताशा एवं उदासी दूर करने की विधि भी प्रकट हुई । पूज्य लालाजी:-इस समय की प्रवृति और आजीविका संघर्ष इस भांति कठिन (दुष्कर) हो गये है कि उनके प्रभाव से सुरक्षित बच पाना सम्भव नहीं, लेकिन, मानव केवल वही है जो इनके चंगुल में नहीं फंसता जिन्होंने मेरे जीवन को देखा है वे जानते है कि मैं कितना प्रसन्न रहा करता था । मेरे चेहरे से सदैव प्रसन्नता झलकती बिखरती रहती थी । बाधाएं और कठिनाइयां (कष्ट) मेरे जीवन में कम रहे । लेकिन बात यह थी कि मैंने हर परिस्थिति में प्रसन्न रहने का स्वभाव विकसित कर लिया था, और प्रत्येक कठिनाई को ईश्वर द्वारा भेजी गयी समझता था, और उसकी इच्छा के प्रति समर्पित रहता था, अपने प्रियतम द्वारा प्रेषित वस्तु से किसी को अप्रसन्न नहीं होना चाहिये। प्रेम की परम्परा (रीति) के यह विरुद्ध है । क्या अन्यत्र मेरे द्वारा अभिव्यक्त की गयी मीराबाई की आख्यायिका इसका समीचीन उदाहरण नहीं ? उसने जहर यह कहते हुये पी लिया कि यह कृष्ण का उन्हीं के द्वारा प्रेषित प्रसाद है? मित्रता के लिये कोई अपरिचित नहीं चाहे वह सम्बन्धी हो या प्रिय/प्रेम का सम्बन्ध ही मित्रता कहलाता है । यदि गहन विचार (दृष्टि) से देखा जाये तो शत्रुता भी एक सम्बन्ध है । जो कि किसी को भी पार उतार सकती है, बशर्ते कि इसे समुपयुक्त रीति से प्रयोग (उपयोग) किया जाय ।

२—६—४५ स्वामी विवेकानन्द "तुम इस समय शिथिल हो चले हो, चूँकि तुम परम शाश्वत केन्द्र से एकीभूत हो चुके हो । इसलिये यह स्थिति बनी है । यह अवस्था सामान्यतया किसी को मरणोपरान्त उपलब्ध होती है । आगे के लिये एक हलका सा धक्का तुम्हारे जीवन को समाप्त कर देगा । अतएव माया के हलके सम्पर्क को तुम्हारे अन्दर संवहित करने हेतु सजग सतर्क रहना है। कभी कभी इससे ऊहापोह की अवस्था उत्पन्न हो जाती है । परिणाम स्वरुप तुम्हारे जैसी योग्यता वाले पुरुष से वे बातें (वस्तुएं) जिनकी अपेक्षा नहीं की जा सकती उत्पन्न हो जाती हैं ।

५–६–४५ पूज्य लालाजी ने भूचाल के विचार को ग्रहण न करने की सम्मति प्रदान की ।

७–६–४५ कल से मुझे यह अनुभव में आ रहा है कि जैसे ही सत्संग के लिये बैठता हूं दिव्य कृपा चक्रवर्तुल रूप में परम शाश्वत केन्द्र से आविर्भूत होने लगती है । वैसी ही हालत आज भी है । पूज्य लालाजी ने कहा–कि इस दिव्य कृपा के लिये फरिश्ते आने लगे हैं ।

८–६–४५ पूज्य लालाजी ने आध्यात्मिक लाभ जन सामान्य को पहुंचाने हेतु विधि प्रकट की । हिन्दुओं के धार्मिक इतिहास के पतन काल में यह विस्मृत हो गई थी । इस विधि का आविष्कारक भगवान कृष्ण को कहा जा सकता है। विधि–दूसरे के सूक्ष्म शरीर कर उसके दैहिक कणावयवों को यथावत रखते हुये विचार दृढ़ करना चाहिये । तब जो भी, नैतिक या नियमत: अनुकूल बातें (सिद्धांत व्यवहार) जो कि किसी व्यक्ति में उतारने हों, प्राणाहुति (सम्प्रसारण) के द्वारा अन्तर्प्रविष्ट करा दी जाय, लेकिन पहली ही बार में यह विधि उपयोग में न लाकर जब प्रकाश स्वत: अन्तर्प्रवाहित होने लगे तब इसका प्रयोग करना चाहिये । भगवान कृष्ण के द्वारा एक आदेश जारी किया गया किन्तु यह सुस्पष्ट नहीं था । लालाजी:–अब तुम्हें अपनी स्थिति के अनुसार कुछ परिवर्तन कर लेना चाहिये । अपने को इस प्रकार दिखाओ कि लोग तुम्हें सम्मान करने लगे । तुम्हारे प्रति अनादर सभी सन्तों और मुक्तात्माओं का तिरस्कार है । प्रकृति तुम्हारा अनादर करने वाले को दण्डित कर सकती है । अतएव मैं तुम्हारी उच्च उपलब्धियां जन सामान्य तक पहुंचाता हूं । दिव्य ईश्वरीय शक्तियों ने तुम्हारे समक्ष घुटने टेक दिये है । प्रसन्न रहो । स्वामी विवेकानन्द–किसी के विचारों का समग्र योग भाग ही चरित्र कहलाता है । जो कुछ तो उसके प्रशिक्षण और कुछ उस पर्यावरण पर निर्भर होता है जिसमें कि वह रहता है । समर्पण ऐसी चीजों को गुरु के कोष में संग्रह करने और उससे असम्बद्ध रहने की परिकल्पना है । विचार है । इसे कैसे प्राप्त किया जाय, यह प्रश्न है ? इसका उत्तर है कि:–अपने गुरु पर छोड़ दो । इसे कैसे करना है ? उसके सिद्धांतों, नियमों रीतियों के प्रति दृढ़ लगाव उत्पन्न करके यह आरम्भ करने वालों के लिये प्रथम चरण है । अभ्यासी को (अभ्यासियों) अपनी शिथिल आदतें छोड़ देनी चाहिये । सुस्त बैठे रहने का आशय कूड़ें दान की सामग्री बन जाना है । देखिये आगे से हिन्दुओं से सम्बन्धित सभी आध्यात्मिक मार्ग कृष्ण से सम्बन्ध रहेंगे । कार्य तुम्हें सौंपा जायेगा ।

१०–६–४५ स्वामी विवेकानन्द ने मुझे एक इंगित दिया कि अध्यात्म्य प्रशिक्षण की विधियाँ नये परिवर्तनीय समय के अनुसार नवीन रुप से तुम्हें प्रत्यक्ष कराई जायेगी । पूज्य लालाजी :–"यदि किसी को सर्वोत्तम प्रकार का प्रशिक्षण देना हो, तो उसका सम्बन्ध उसके अन्तर तक हृदय से स्थापित करा देना चाहिये । उस सम्बन्ध को अपने विचार के सम्बन्ध (परिप्रेक्ष्य) में रखते हुये मूल स्रोत में उसे गहरे पैठ जाना चाहिये

गहनतल में उतर जाना चाहिये । यदि दशा विकसित की जानी हो तो पूर्वत: स्थगित सम्बन्ध को अपने हृदय तक आकर्षित कर लेना चाहिये और वही उसे स्थिर कर दिया । इस प्रकार वास्तविक कृपा का निर्भर जिसे कि यहां तक लाया गया है । उत्प्रेरित हो जायेगा । और अभ्यासी को कृपा लाभ होगा । यदि विधि मेरे द्वारा किंचित सुधार दीं गई सम्बन्ध उस स्थान पर स्थिर करना चाहिये, जहां कि प्रशिक्षक की स्थिति है–लालाजी:–यदि किसी चक्र का अनावरण किया जाना है, शुद्ध किया जाना या कृपान्वित किया जाना है तो अपने विचार की धारा एवं अभ्यासी के विचार की धारा को उस बिन्दु तक खींच लाना चाहिये, और उस चक्र पर उसका विचार छोड़ते हुए अपना विचार वापिस कर लेना चाहिये । त्रिपादीय ध्यान की विधि (आविष्कार) प्रकाश में आई, हृदय में प्रकाश की धारणा दृढ़ कर लेना चाहिये । उस प्रकाश का एक अंश मस्तिष्क की ओर खींच लेना चाहिये, और वहां उस बिन्दु पर 'ओइम्' उच्चारण करना चाहिये, तब उसी प्रकाश को नीचे उतारते हुए 'तत्' उच्चारण मध्य में करना है, नाभि पर सतशब्द से एक धक्का दिया जाना चाहिये । यह पहली अवस्था है, अब दूसरी अवस्था– प्रकाश जो हृदय में स्थापित किया गया था पैंसे तीन चौथाई भाग तक (लगभग आधा से०मी०) संकुचित कर लेना चाहिये, तब इसे उसी भांति ऊपर ले जाना चाहिय और मस्तिष्क में ओइम् का और नाभि पर सत का उच्चारण करना चाहिये, अब तीसरी अवस्था– यदि विधि पूर्वक किया गया हो तो सक्षमतम व्यक्ति भी इसे सहन करने में कठिनाई अनुभव करेगा । जो प्रकाश पैंसे के तीन चौथाई भाग तक कम कर दिया गया है । इस स्थिति तक निराकरित कर लेना चाहिये कि केवल प्रकाश का विचार ही विद्यमान रहे । तब इसे ऊपर ले जाना चाहिये उसी भांति नीचे उतारना चाहिये ।

अब चौथी अवस्था–केवल कल्पना तक जो विचार रह गया था, कल्पना से भी पूर्णतया विसृत हो जाना चाहिये, जो कुछ बचे उसे उसी भांति ऊपर ले जाकर नीचे उतारना है–यह समझने के लिये भी अत्यन्त कठिन है, केवल कल्पना बनाने की तो बात ही क्या ?

११–६–४५ भगवान कृष्ण ने मुझे यह कहते हुये कि मैंने उत्तर भारत के कार्य में बहुत मन्द कार्य किया, सारीरात प्रकाशन अमुक को प्राणाहुति दी ।

१२–६–४५ मैंने उस सिद्धांत (नियम) को समझ लिया । जिसके अनुसार हमारे संगठन की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है । लालाजी– अभ्यासियों में परस्पर मतभेद हो सकता है, समुपयुक्त निर्णय पर पहुंचने हेतु यह नितांत आवश्यक है । किन्तु अन्ततोगत्वा सभी को एकीभूत एकत्व निष्ठ हो जाना चाहिये । एक प्रकार का प्राणप्रवाह जो अन्य विभिन्न से विशिष्ट है, सभी में अन्तर्प्रविष्ट करा देना चाहिये । और यह नैतिक नियम होना चाहिये । उदासी, हताशा निराशा दूर करने की एक अन्य विधि आविष्कृत हुई । चेहरे पर उस विशिष्ट शक्ति से जो सभी को

आधार है, सभी में सन्निहित है, प्राणाहुति देना चाहिये। आंखो की सुरक्षा हेतु सावधानी रखनी चाहिये। एक विचार यह बना लेना चाहिये कि चेहरे पर उल्लास आ रहा है। लालाजी–प्रत्येक अभ्यासी को आरम्भ से ही अपनी नैतिक दशा सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये, जो शब्द दूसरों को आघात पहुंचाने वाले हो उन्हें नहीं कहना चाहिये। और जो दूसरों द्वारा पसन्द न की जाएं। वैसी क्रियाविधियाँ नहीं करना चाहिये। यह दोनों बातें ध्यान में रखते हुए अपनी आन्तरिक (नैतिक) स्थिति सुधारने की चेष्टा करनी चाहिये। नैतिकता का मूल्य गँवाते हुये मैंने आध्यात्मिकता को कभी वरीयता नही दी अपनी अन्तस्थ इन्द्रियों के शमन का प्रयत्न कोई नहीं करता।य द एक व्यक्तिध्रुवपद की स्थिति तक पहुंच चुका है,फिर भी नैतिक व्यवहारमें कमजोर है तो मैं यही कहूंगा कि उसने वास्तविक रत्न को उपलब्ध नहीं कर पाया। पूर्ण नैतिकता उसे कहते हैं जबकि मानव की अन्तस्थ सभी वस्तुएं सन्तुलन में आ जाएं–यदि इसे भी नकार (निराकरित) किया जाय, तो उसकी बराबरी कोई नही कर सकता। यह वास्तव में नितान्त कठिनहै–लेकिन इसका आशय यह नही कि कोई इसके लिये अग्रसर न हो। यह सब बातें (दशाएं) प्राणाहुति से भी आविर्भूत की जा सकती है।

१३–६–४५ एक बार समग्र अवाँछनीय तत्वों को परिसमाप्त नष्ट करने हेतु आदेश प्राप्त हुये, और ईश्वर की इच्छा विद्यमान रखने हेतु भी आदेश प्राप्त हुये लालाजी ने 'सहज मार्ग' नाम का अनुमोदन किया-इस मिशन में अपनाई जाने वाली साधना पद्धति का नाम लालाजी ने 'सहजमार्ग' अनुमोदित कर दिया।

१४–६–४५ लालाजी ने मुझे मानसिक दवाब से मुक्ति दिला दी और सौंपे गये कार्य को स्वत: सम्पन्न होने योग्य कर दिया।

१५–६–४५ श्री M को तीन महीने तक बिना कोई पूजा ध्यान किये अपनी दशा लिखने हेतु सलाह दी गई, सहज मार्ग साधना में अभ्यासी के प्रवेश निमित्त स्वामी विवेकानन्द ने विस्तार से व्याख्या प्रस्तुत की। विधि नियम बताये।

१७–६–४५ लालाजी ने संपुष्ट किया कि अमुकSअधिचेतन क्षेत्र तक यात्रा कर चुके हैं। आवश्यकता विवश कर रही थी जितनी भी जल्दी हो सके उसे पूर्णरीत्या तैयार, सन्नद्ध कर दिया जाय। फरिश्ता जिब्राईल– अपने कार्यक्षेत्र के रुप में समग्र जगत को ग्रहण करने का आदेश परम शक्तिमान से दिया गया है।

१८–६–४५ स्वामी विवेकानन्द:-मानवता के आधार के परे जाना आध्यात्मिकता है। वहां पहुंचता कौन है, वही जो शून्य हो जाता है इससे परे एक कल्पना विचार के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही है। इससे आगे कोई नही जा सकता भगवान कृष्ण ने कहा– सन्यास समय की रीति के अनुकूल नही था अतएव इसे प्रोत्साहित नही किया जाना चाहिये। स्वा० वि० ने मुझे सलाह दी कि मुझे समग्र जगत के लिये कार्य करना है, जो कि सौंपा जा रहा है। "तुमने सभी कामनायें समाप्त कर दी है,

अतएव तुम प्रसन्न रहोगे । सारे जगत का कार्य तुम्हें सौंपा जा रहा है । इसका आरम्भ हो चुका है । तुम अपनी स्थिति की महानता जानने में असमर्थ हो । यही वास्तविक गौरव है । जो इस योग्य हो जायेंगे और तुमसे लाभान्वित होंगे वे सौभाग्य-शाली है ।

१९–६–४५ पूज्य लालाजी ने आध्यात्म्य, प्रशिक्षण के प्राविधान नियम प्रस्तुत किये, जो कि वस्तुत: एक कठिन प्रशिक्षण है । "पहले पच्चीस वर्ष अन्वेषी साधक को ब्रह्मचर्य से रहना चाहिये, और उसे शरीर सम्पुष्ट बना लेना चाहिये । तदुपरान्त १५ वर्ष तक गृहस्थ रहना चाहिये । सन्तान प्राप्ति के उपरान्त पति पत्नी को धार्मिक शास्त्रों के अनुसार अपना सम्बन्ध नियमानुकूल बनाते हुये एवं स्वास्थ्य की समुचित देख भाल रखते हुये ध्यान का अभ्यास करना चाहिये । चालीस वर्ष तक दिव्य सत्ता की उपस्थिति, विद्यमानता का ज्ञान अथक परिश्रम से उपलब्ध करलेना चाहिये । ४१वें वर्ष के आरम्भ में उसे परिवार त्याग देना चाहिये । और अपने गुरु के निवास में रहना चाहिये । और सभी सम्बन्ध भंग कर देना चाहिये । अब मेरे अनुसार विचार की गई प्रशिक्षण पद्धति आरम्भ होती है । विधि (पद्धति) इस प्रकार है । प्रत्येक चक्र बिन्दु पर पूरी सामर्थ्य से कार्य करना चाहिये । इस प्रकार कि परम शाश्वत शक्ति कण कण में सम्प्रवहमान हो उठे । प्रत्येक कणावयव को पृथक पृथक लेना चाहिये । और पूर्णरीत्या शुद्ध कर देना चाहिये । यही विधि प्रत्येक प्रत्येक चक्र के संदर्भ में अपनानी चाहिये । जब पिण्ड क्षेत्र के समग्र चक्र शुद्ध हो जाएं ब्रह्मांड क्षेत्र के चक्र ग्रहण करना चाहिये । इसके बाद परम ब्रह्मांड में पहुंचना चाहिये । और उसी भांति प्रत्येक बिन्दु अनावरित एवं शुद्ध कर लेना चाहिये ।

जब परम ब्रह्मांड क्षेत्र तक अनावरण एवं शुद्धीकरण पूर्ण हो जाये तब देह के सभी कणावयवों को ग्रहण कर उसी भांति कठिन परिश्रम कर प्रत्येक कण शुद्ध कर लेना चाहिये । जब देह के सभी अणु कण शुद्ध हो जायें तब एक एकीभूत प्रवृत्ति सभी में उत्पन्न कर देना चाहिये अर्थात् आपाद शिखा एक ही वृत्ति (भाव) में वे परिलक्षित हों जब यह सम्पन्न हो जाय तो समग्र स्थिति परम शाश्वत से सम्बन्ध कर देना चाहिये । मैं सोचता हूं–यदि यह विधि अपनाई जाय तो केवल एक व्यक्ति ही समूचे जीवन में तैयार किया जा सकता है । किन्तु उसके समान कोई नही होगा। अब मेरी विधि पर ध्यान दें :– मैंने तुम्हें अपने जीवन काल में पूर्णत्व प्रदान कर दिया था । लेकिन उपरिकथित विधि के अनुसार मैंने परिश्रम नहो किया । जब मैंने तुम्हें सर्वोच्च स्थिति पर पहुंचाया तो अपना शरीर छोड़ दिया । और तुम्हारी ओर उन्मुख होकर पुन: अपना कार्य प्रचलित रखा तुमने इसका प्रभाव अधिग्रहीत किया । जब आवश्यकता ने विवश किया और कार्य का भार पड़ना आरम्भ हो गया । तुम्हें दक्षिण भारत की यात्रा हेतु आदेशित किया गया । मैंने इस विधि का तुम पर इस भांति प्रयोग किया कि मैं तुम्हारे शरीर के प्रत्येक कण में प्रविष्ट होकर

निकलता रहा,इस प्रकार तुम पूर्णरीत्या पूर्ण हो गये।यह सभी कार्य एक क्षण में किया जा सकता है । लेकिन एतदर्थ दिव्य कृपा जो आवश्यक है, शायद ही किसी को मिल पाये । यदि निकटतया देखा जाय तो देह के प्रत्येक कण में अतुल शक्ति सन्निहित है । एक अन्य विधि भी है । जो इससे अच्छी है–वह यह कि परम शाश्वत को अभ्यासी के प्रति अग्रसर कर दिया जाय । लेकिन प्रत्येक इसके धक्के को सहन नहीं कर सकेगा ।

२०–६–४५ सन्त पातंजलि पर स्वामी वि० ने कहा–"यदि मैं सच कहूं–तो लोग मुझे शाप दे देंगे । पातंजलि सुदृढ़ ज्ञान के व्यक्ति थे–और पूर्णरीत्या स्वाध्याय पुस्तकों के अध्ययन के प्रति समर्पित रहे, जिन्होंने केवल कुछ चीजों का अभ्यास किया कुछ संदर्भों में मैं उनसे स्पष्टतया मतभेद रखता हूं–यदि उन पर तुम किंचित् भी ध्यान दोगे –तो तुम्हें उनकी अवस्था का ज्ञान हो जायेगा । जो अब-तक किन्ही पुस्तकों में नहीं लिखा गया । उन्हें मुक्ति उपलब्ध नही हुई, उनका ज्ञान व्यवहारिक नही था–मैं तुम्हें उनकी पुस्तक में लिखी विधियों पर पूर्ण विश्वास करने की सलाह नही देता । पुस्तक अवश्यमेव संग्रहणीय है–इसमें दूसरे ऋषियों के सम्बन्ध में उल्लिखित/प्रयोग किया गया । सारा विवरण है । मैं तुम्हारी मास्टर सेल की परिकल्पना से सहमत हूं और इसके अधीन कोषों से भी लेकिन इस पर अभी तक तुमने विस्तार से नही सोचा (विचार किया) इसके लिये यदि तुम सक्रिय हो जाते हो तो प्रत्येक (समग्र) गुह्यताएं प्रकाशित हो जाएंगी ।

२१–६–४५ चैतन्य महाप्रभु ने आपत्ति प्रकट की कि मैं उनसे कोई कार्य नही ले रहा हूं । उन्हें कोई कार्य नही दिया जा रहा था । स्वा० वि०–तुम्हारी उपलब्धियों का स्तर समग्र आध्यात्मिक जगत में वरेण्य है । दिव्य जगत की मुक्तात्माएं भी तुम्हारी बराबरी नही कर सकती ।

२३–६–४५ मैंने लालाजी से कहा कि मेरी स्थिति सदैव स्थिर रहती है । लाला जी ने इसे अधिग्रहणीय बताया और कहा कि अन्त: सौन्दर्य, एकत्व एवं सादगी का यही प्रतीक है ।

२५–६–४५ लालाजी ने मेरी प्राणाहुति को भूनती हुई आग (विदग्धा वन्हि) अथवा गर्म रेत की उष्णता से तुलना की इसकी प्रशंसा की गई कि मैंने अद्वितीय चीज आरम्भ की है और यह कि उन्नति के लिये लालसा । उत्कंठा की अब अधिक प्रतीक्षा आवश्यक नही कि जिससे सीखने वाले में आरम्भ से ही परम शाश्वत दशा का सम्प्रवाह प्रचलित हो जायेगा । स्वा० वि० ने विधि (प्राणाहुति) प्रणाली की प्रशंसा की एवं कहा कि अध्यात्म क्षेत्र में मैंने एक सर्वथा नवीन विजयश्री प्रकाशित की है । एक सर्वथा नवीन दिशा/मार्ग प्रकाशित किया है ।

८–७–४५ स्वा० वि० ने कहा कि अध्यात्मोन्नति में मुख्य कठिनाई यह है कि लोग अपने कार्य भार का निर्वाह करना नही चाहते । अतएव सभी कुछ मुझें करना

पड़ता है। तुम्हारे बाह्य व्यवहार में भ्रमित होकर वे केवल सुस्ती (निष्क्रियता) सीख पाते हैं। यदि गतिवान मानव एक क्षण भी रुक जाता है तो उसके लक्ष्य तक पहुंचने का पूर्णत्व बल और इच्छाशक्ति का ह्रास होता है। अतएव उसकी उन्नति रुक जाती है। उन आदतों को छोड़ने में सावधान रहना चाहिए जो आत्म निर्भरता की प्रतिरोधी है।

"९—७—४५ मेरी जिगर की बीमारी के लिये धन्वन्तरि जी ने औषधि उपचार का सुझाव दिया। उन्होंने मेरी देख रेख हर समय रखने हेतु स्वयं को प्रस्तुत किया।

११—७—४५ मेरे वंक्षिका तंत्र के रुधिर प्रवाह में कुछ कमी आ गई अकस्मात् बहुधा श्वास भी अवरुद्ध हो जाती है—रात में भी दिन में भी। शारीरिक व्यायाम की सलाह दी गयी इसके लिये काली बबूल की छाल सर्वोत्तम औषधि सुझाई गई।

१२—७—४५ विभिन्न पौदो एवं गुल्मों—औषधियों के लाभ धन्वन्तरि जी ने बताये—तुम्हें अनिवार्य रुप से दो पेड़ लगाने चाहिये जिसके असंख्य लाभ है। तुलसी और मड़ुआ। यदि बच्चों के पास वर्तन में यह पौधे रखे जाते हैं तो वे विभिन्न बीमारियों से बचे रहेंगे। यदि यह पौधे अधिक संख्या में लगाये जाए तो वातावरण शुद्ध रहेगा यदि दिन में कोई पीपल के पेड़ के नीचे आता है तो उसके विचार की गर्मी शान्त हो जाएगी। लेकिन इसे घर से दूर लगाना चाहिये। नीम का पेड़ प्रत्येक अवस्था में लाभ कर है। "काली पीपल के कुछ दाने काले बबूल की छाल में चूर्ण करके शक्कर मिलाकर खाने से स्वास्थ्य लाभ होता है। लिग्रोसी—में केटीवा की पत्तियां लाभकारी है। यदि रोगी गंगा की रेत को चाखे तो उसे शीघ्र लाभ होगा लेकिन हड्डी के टुकड़े न हो इसका ध्यान रखना चाहिये। दही बनता हुआ दूध लिया जाय तो अधिक लाभ कर होगा लेकिन भैंस के दूध से दही बनाया जाय।

१३—७—४५ औषधियों (बूटियों) की पहचान के सम्बन्ध में धन्वन्तरि जी ने कहा—"जो औषध पीले फलों वाले हैं वे जहरवाद में जहरीली शिकायतों (बीमारियों) में लाभकर है। कफ प्रधान बीमारी में प्रायः श्वेत पुष्प वाली औषधियां लाभप्रद है। पेट की गड़बड़ी के लिये हरी पत्ती वाली औषधियां लाभप्रद हैं। वादी वस्तुयें पेट के लिये लाभकर नही होती क्योंकि वे कठिनता से पचती है उनका पाचन कठिन है। छिलका छिलका सख्त हो उसकी गूदी पेट के लिये एवं गैस की बीमारी में लाभप्रद है। लाल फूल की औषधियाँ सामान्यतया हानिकर है। लेकिन वे भी विशेष बीमारियों में लाभदायी हैं और विष के दुष्प्रभाव को दूर करती है। फूली हुई छाल शरीर की गर्मी मुहां से खार्ज और पीव आदि के उपचार में लाभप्रद है। हिन्दुओं की रीति रिवाज और जीवन पद्धति व स्वास्थ्य सम्बन्धी सिद्धांतों पर आधारित हैं। धर्म के नाम पर प्रचलित बहुत सी बातें स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के के नियम हैं। मस्तिष्क की बहुत सी बीमारियाँ चन्दन का चूर्ण और कपूर चूर्ण मिलाकर जलाने और उसका धुआं सूँघने से दूर हो जाती है।

१४-७-१९४५ (स्पन्दन) तरंगों के रुप में बहुत सी बातें ज्ञात हुई।

१९-७-४५ स्वामी विवेकानन्द ने निम्नलिखित आलेख लिखाया :—अपना आवरण उतार दो—इसे पूर्णरीत्या छिन्न भिन्न कर दो और आगामी कार्य निमित्त सम्बद्ध हो जाओ—परिवर्तन—अन्ततः होना ही है। कलरात तुम्हारा कार्य भयंकर रहा। पूज्य लालाजी—"संसार से निर्दोष बचपाना नितान्त कठिन है। केवल वही मानव है जो अपनी भावनाएं ईश्वरोन्मुख कर ले। मेरेबाद अवश्य ही अंधेरा सा छा गया। लेकिन हमारे कुछ सत्संगी ऐसे थे जिन्होंने मुझे उजड़ने नही दिया। ईश्वर उन्हें सत्साहस का आशीष देवे। अपनी प्रवृत्ति रामचन्द्र की ओर स्थिर रखते हुये कार्य निरत रहिये—रामचन्द्र से अच्छा और प्रिय मित्र नही मिलेगा उन्होंने सभी कुछ मुझे समर्पित कर दिया और मैंने भी उनसे कुछ बाकी नही छोड़ा, उनकी स्थिति केवल ईश्वर ही जानता है। तुम्हें नही मालूम कि कितने सन्तों ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी बना रखा है सभी सन्तों की आँखे उन्हीं की ओर लगी है। यह अवसर पुनपुनः नही आयेगा। जितना भी हो सके उतना लाभ प्राप्त कर लो।

२३-७-४५ स्वामी विवेकानन्द ने अपनी हार्दिक शुभांशसा मिशन के कार्यकर्त्ताओं के प्रति यह कहते हुये व्यक्त की कि यह महत्वपूर्ण इच्छा है—कि ऐसे संगठन की आधार शिला रखी और स्थापित की गई जो कि मानवीय मस्तिष्क की उपज नहीं है। "आगे का कार्य बहुत विशाल (वृहद) है। और केवल तुम्हें ही अपनें जीवन और उसके बाद भी इसे करना है। तुम्हें समस्त शक्तियां प्राप्त है कि तुम प्रत्येक चीज को सर्वथा समुपयुक्त एवम् सुगठित कर सकते हो। प्रकृति के विरुद्ध कार्य क्रिया-विधियां करते रहना अशिष्टता है।

२५-७-४५ स्वामी विवे० ने सुझाव दिया कि मुझे अतिशयोक्ति की कला सीखना चाहिये और विभिन्न दर्शनों की पुस्तकें पढ़ना चाहिये।

२९-७-४५मुझे सावधान किया गयाकि गल्तियां नही करनी चाहिये। क्योंकि मेरी भूल सरलतया क्षम्य नही जैसी ही उच्चस्थिति वैसी ही अधिक जिम्मेदारी—उत्तरदायित्व मुझे सजग रहने की सलाह दी गई और शांतिपूर्वक अपना कर्तव्य करने को कहा गया। स्वा० वि० ने मुझे कहा कि मिशन के कार्य से सम्बन्धित निर्णय बिना उनसे बताये पूर्व समीक्षा किये नही लेना है, यद्यपि कि प्रत्येक चीज पूज्य लालाजी के अधीन नियँत्रण में है।

४-८-४५ आध्यात्मिक उन्नति में बाधा व्यवधान दूर करने की विधि ज्ञात हुई बताई गई। चक्रों को समुपयुक्त रुप में रखना सहायतापरक समझा गया—यह समग्रतः स्वचालित हैं। स्वा० वि० ने सुझाव दिया कि मुझे मिशन के कार्य में स्वयं को पूर्णरीत्या निरत कर देना है—मुझे यह भी सुझाव दिया गया कि मैं कोई पहाड़ी स्थान चुनूं कि जहाँ मैं अपने विचारों को लिख सकूं।

१५-८-४५ मैंने उस विधि पर विचार मन्थन किया कि जिससे अभ्यास के प्रथम

दिन से ही माया से मुक्त हो जाएं–यह अवगत कराया गया कि–दाहिने पैर के अगूठे में कोई बिन्दु स्थिर करके उस पर ध्यान करना सहायक सिद्ध होगा । चूंकि यह शरीर का अन्तिम भाग है । अतएव प्रलय के समय विद्यमान दशाओं का इस भाग में सन्निवेश रहता है ।

१७–८–४५ पूज्य लालाजी ने मुझे सलाह दी कि अब चूंकि मिशन पंजीकृत निकाय बन चुका है । अतएव मुझे पूर्णवेग से कार्य आरम्भ कर देना चाहिये । आध्यात्मिक संगठन में आयु का विचार तो किया जाना चाहिये लेकिन जो लोग कार्य करने योग्य है–उनसे बिना किसी हिचक के कार्य लिया जाय तुम इस कार्य को उनके लिये विभाजित कर बांट सकते हो । तुम्हें सबकी सहायता प्रत्येक संदर्भ में करनी चाहिये जिसके पास पर्याप्त अवकाश है, उसे कार्य करना चाहिये । और परस्पर प्रेम भाव रहे । ऊंचे/नीचे का कोई प्रश्न नहीं । बाद विवाद को बढ़ावा नही देना चाहिये । न ही मै चाहता हूं कि नगण्य (छोटी छोटी) बातों के लिये दूसरों की भावना को ठेस पहुंचाई जाय, यह मेरा कार्य है–इसे मेरा कार्य समझते हुये ही संलग्न रहो । यदि कोई बिन्दु मतभेद का आता है तो मुझे सूचित करो मेरे आदेश निर्णायक होंगे । स्वा० विवे० ने सम्मिति दी कि मिशन का कार्य सहज रुप से चलते रहना चाहिये । संगठन सहिष्णुता की दृढ़ आधार शिला पर स्थिर रह सकता है । प्रेम प्रत्येक चीज को सहज बना देता है । शिक्षाए प्रेम से दो न कि पालन करने के लिये कठिन नियम बताकर प्रत्येक अभ्यासी मे बन्धुभाव की अनुभूति का विकास एवं मानव मात्र की सेवा भावना का उद्भव होना चाहिये । उन्हें अपना मानते हुये एक भाई के रुप में अपना कर्तव्य करो । जो कुछ तुमने निर्णय कर लिया है उसको क्रियान्वित करो । कभी चिन्ता नही कि सारा ससार तुम्हारे विरोध में है, और तुम्हारे हितैषी तुम्हें छोड़ दें दृढ़ रहो–हम सभी तुम्हें सामर्थ्य दे रहे हैं । सफलता निश्चित ही शीघ्र अथवा बिलम्ब से होनी है । यदि सूर्य भी फट जाय और आसमान ऊपर टूट पड़े तो भी उस पथ से जो तुमने ग्रहण कर लिया है– विचलित न होना ।

१९–८–४५ पूज्य लालाजी ने मुझे निर्देश दिये कि सभी को भगवान कृष्ण का जन्म दिन समारोह मनाने के लिये पत्र लिख दिये जाने चाहिये । सभी उस दिन उपवास करें । केवल एक बार स्वल्पाहार किया जाय–ध्यानान्वित रहने हेतु प्रयत्नशील रहना चाहिये । स्वा० विवे०:- जन्माष्टमी दिन पर केवल एक बार सायं दूध पीकर ही तुम्हें रहना है उस दिन उपवास निरत सभी सत्संगी अभ्यासियों को तुम्हें प्राणाहुति देना है यह कार्य तुम्हें दो दिन करना है–उस दिन शांत रहना, चूंकि उस दिन तुम्हारी शक्ति पूर्णविभव पर होगी अतएव अपने बच्चों सहित सभी बच्चों से दूर रहना जब तक ध्यान एवं प्राणाहुति सम्पन्न न हो जाय तब तक एकान्त में रहना है ।

२३–८–४५ सत्सगी बन्धुओं के कर्तव्य और प्रशिक्षक के कर्तव्य स्वा० विवे० द्वारा

गठित किए गए और लिखाए गये ।

२५-८-४५ पूज्य लालाजी ने सृष्टि से पूर्वप्रलय के बाद की स्थिति प्रकट की-

२६-८-४५ मिशन के 'चिन्ह' के सम्बन्ध में स्वा० विवे० ने विस्तार से निर्देश दिये, लाला जी ने सहज स्थिति उत्पन्न करने पर बल दिया ।

२७-८-४५ सर्व शक्तिमान परम शाश्वत केन्द्र में लय होने की प्राविधि का आविष्कार हुआ ।

१— अपने गुरु में लय होना ।

२— केन्द्र से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर उसमें लय हो जाना ।

प्रत्येक को विचार (शक्ति) से अपने को विकसित करना चाहिये और अपना विस्तार सभी दिशाओं में, धरती आकाश में अनुभव करना चाहिये-यह अभ्यास इस गहनता तक किया जाय कि धरती आकाश का विस्तार एक हो जाय, जब तक कि इसमें अपनी लय दशा का अनुभव आरम्भ न हो, धीरे धीरे यह विचार भी (लय दशा की अनुभूति) समाप्त हो जाना है । सन्त कबीर ही परम शाश्वत में लय होने के मात्र उदाहरण है ।

२८-८-४५ स्वा० विवे०-"तुम्हें दो दिन उपवास रहना पड़ा आज हमने शक्ति के अन्तर्प्रवाह हेतु क्षेत्र तैयार कर दिया है यह अपने जन्म दिन पर प्रदान की गयी भगवान कृष्ण की विशिष्ट भेंट है ।

३०-८-४५ भगवान कृष्ण द्वारा उपहार में प्रदत्त शक्ति आज १.१५ प्रातः पर तीन बार में हस्तारन्तरित की गई-शक्ति का अन्तर्प्रवाह अनुभव में आया इसी मध्यान्तर पूरे छः घण्टे रुक-रुक कर लालाजी प्राणाहुति देते रहे मुझे ध्यान बन्द कर देने को आदेशित किया गया क्योंकि शक्ति को सहन करने की अधिक क्षमता मुझमें नही थी ।

३१-८-४५ यह अनुभव हुआ कि ध्यान कक्ष पूर्णरीत्या आवेशित (प्राणपूरित) है-है शक्ति दीवारों से विकीर्णित हो रही है, स्वा० विवे० ने मुझे मना किया कि साधारण क्षमता के अभ्यासी को इस कक्ष में ध्यान करने की अनुमति न दी जाय ।

६-९-४५ लालाजी ने निम्न प्रकार से प्रश्नोत्तर दिये ।

प्रश्न—आध्यात्मिकता के लिए विष क्या है ।

उत्तर—क्रोध जब तक इस महामारी से कोई मुक्त नही होता, तो साम्यता का प्रश्न नही-

प्रश्न—इसका प्रभाव क्या होता है ?

उत्तर—तंत्र स्थूल हो जाता है और तनाव-भार उत्पन्न होता है-और इससे उन्मुक्त सूक्ष्म धारा अन्तर्प्रवेश नही कर पाती । विचार पर सतत दबाव बना रहता है ।

प्रश्न-क्रोध से छुटकारा प्राप्त कैसे हो ?

उत्तर—अपने को विनम्र एवम् स्नेहमय रखो-नही, ऐसा बनने की कोशिश की

जाय कि एक रंग (दिव्यता) शरीर के सभी भागों में प्रविष्ट हो जाय–शीतल शांत प्रवृत्ति ही आध्यात्मिकता के लिये अपेक्षित है । हृदय इतना कोमल है कि वायु के मन्द झोंके से भी यह कम्पायमान हो उठता है ।

२७–९–४५ आदेशानुसार श्री अमुक का ईश्वरीय (दिव्य) सम्बन्ध भंग(विच्छेदन) कर दिया गया । आध्यात्मिकता और मात्र प्रदर्शन में गहरा भेद है आध्यात्मिकता में कोई सजावट (आलंकारिक अन्तर्जाल) या (आच्छादनीय) आकर्षण नही होता माया वहां अनुपस्थित है–इसका वेग रोकने को कोई दूसरी शक्ति उन्मुख नही होगी इच्छा शक्ति निम्न स्तरीय है और इससे चमत्कार किये जा सकते हैं ।

३–१०–४५ स्वा० विवे०ने आगामी कार्य हेतु कतिपय निर्देश दिये ।

१६–१०–४५ स्वा० विवे० ने अपनी आत्मीय आन्तरिक प्रार्थना भगवान कृष्ण से की कि मुझे कार्य सम्पन्न होने तक लम्बीजीवन अवधि का उपयोग करने हेतु स्वीकृति दे दी जाय ।

१८–१०–४५ लखीमपुर जाते हुये रास्ते में यह आया कि वह क्या चीज मन में प्रविष्ट हो जाती है जिससे विरोधी विचार बन जाता है और प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न करता है। तत्क्षण ही उत्तर प्राप्त हुआ कि इसका प्रयत्न करना च हिये कि और इसका क्या उपचार है ? जिस प्रकार विचार का उद्भव हुआ है उसी प्रकार उसे वापिस (प्रत्यावर्तित) कर दिया जाय । A और B विन्दु पर ध्यान की विधि प्रकट हुई (सहज मार्ग के प्रकाश में राजयोग का दिव्य दर्शन में इनकी व्याख्या है) और यथादेशानुसार यह विधि दैनन्दिन अभ्यास में सम्मिलित कर ली गई ।

१९–१०–४५ मूर्तिपूजा एवं अन्य पूजाओं के 'कारण' प्रत्यक्ष हुये । मूर्तिपूजा कब और क्यों आरम्भ हुई ? इन प्रश्नों से लोग आतुर हैं, कुछ इसके मत में है कुछ विरोध में दोनो वास्तवता को न ी जानते. मध्यमार्ग का विचार किसी ने नही किया कोई पाषाण की उपासना करने लगा, कोई कुछ और सामान्यत: पूजा की अनगिन वस्तुएं बन गई । कुछ ने पुस्तकों की पुष्पों से पूजा की कुछ ने अन्य कुछ किया । लोग प्रत्येक वात् के समक्ष अपने हाथ झुकाने लगे । संक्षेपत पूजा/उपासना के विभिन्न रुप प्रकट हुये जिनके परिणामत: वैविध्यके प्रति प्रेम प्रकट हुआ बढ़ गया । ईश्वर का एकत्व ओझल होने लगा और आवरण पर आवरण चढ़ते गये अच्छा परिणाम हुआ होता यदि उपासना/पूजा का एक ही ध्येय रहता ।आंमे मुनिये दृश्य के समक्ष प्रति स्थापित मूर्ति ऐसा ढंग बन गई कि जब भी आवश्यकता हुई ध्यान इस ओर घुमा । यह कभी उन्होंने नही सोचा कि दिव्य प्रकाश को मूर्ति में विद्य–मान मानते हुए ध्यान किया जाना चाहिए । लोग निसंदेह कामना हेतु ईश्वर से याचना करते हैं, किन्तु उसका विचार उसी स्थिति तक सीमित रहेगा । यदि वे कुछ आगे बढ़ते हैं तो आत्मोन्नयन के प्रशस्त चरण प्रसन्नतापूर्वक अग्रसर होंगे लेकिन इसे वे बिल्कुल भी नही चाहते ।

एक समय था जब मूर्तिपूजा कोई पसन्द नही करता था । इसके बाद विचार मुड़ा और देवताओं की ओर उन्मुख हुआ प्रत्यक्ष सौम्य प्रवृति के कारण लोगों ने उनकी प्रतिमाएं स्थापित की लेकिन उपासना करने के ध्येय से नही । धीरे धीरे देवताओं के प्रति श्रद्धा से हृदय अभिभूत होता गया । और मूर्ति से प्रतिबद्ध हो गया । कलाकार/शिल्प/वस्तुकार की प्रवीणता ने और अलंकार दिये । समय के अन्तराल में स्थूलता बढ़ती गई उसी अनुपात में स्थूल वस्तुयें पसन्द की जाने लगी । स्थूलता के प्रेमियों ने इसे शान से बढ़ावा दिया । अब क्या कहना? इस पर अधिकाधिक ध्यान और बल दिया जाने लगा । इसमें इतना गहरा लगाव बढ़ा कि उच्चस्थ से कोई सम्बन्ध का गुमान न रहा । निम्न स्तरों पर दृष्टि जाने लगी । इसके गुण दोष दोनों हैं–उसे ही इसका लाभ मिलेगा । जिसका ध्यान ईश्वरोन्मुख हो जाये और जो मूर्ति को केवल ईश्वर पर ध्यान दृढ़ करने के उपयोग में लाता है । अपने पूरे जीवन यह भी नही करते रहना चाहिये । अपितु इसके स्वत: परिसम्पन्न होने के समय की प्रतीक्षा करनी चाहिये । यह कैसे हो सकता है ? जब कोई यही साधन समझले और अन्य कुछ नही । अर्थात् दृढ़ संकल्प कर ले । यह उनके लिये लाभकारी है जो मूढ़ है और बिना स्थूलधारणा के विचार नही पकड़ सकते । आगे बढ़ने के लिये यह विधि उन्हें सहायक है । सच पूछिये तो इसके लिये भी प्रदर्शक (गुरु) की आवश्यकता है, जो उन्हें स्थूल आघात पर अग्रसर करा सके । मैंने यह संकेत रूप में लिखा दिया । हितैषणु अभ्यासी को अग्रसर कर यात्राविधि का अवाराजुकूल उन्नति देना चाहिये ।

मूर्ति पूजा की विधि अधिकतर मन्दिर में अपनाई जाती है । जहां लोग झुंड के झुंड आते हैं मूर्ति शक्ति से सम्पृक्त रहती थी ताकि आने वाले भक्त दर्शक-पूजा भी हो तो लाभान्वित होते रहे यह मूर्ति को प्राणदान की अन्य विधि है ।

२६–१०–४५ लालाजी ने मेरे विचार का अनुमोदन कर दिया कि सेवा कार्य से तीनमाह का अवकाश लेकर मैं स्वाध्याय करूं,और प्राणाहुति से सत्संगियों अभ्यासियों को लाभान्वित कराऊं । इससे मुझे विश्राम एवं स्वास्थ्य में भी लाभ होगा ।

२८–१०–४५ लालाजी ने अभिमत व्यक्त किया कि आध्यात्मिक प्रशिक्षण की यह विधि यद्यपि कि पूर्णरीत्या पूर्ण एवं सर्वोत्कृष्ट है । फिर भी यह सबके लिये नही, कुछ ही उन्नति कर पाये और वास्तवत्तासार का अविग्रहण किया ।

६–११–४५ लालाजी ने कहा कि हिन्दुओं ने सदैव मूल (असल) की नकल और उससे निकटस्थ सम्बन्ध विद्यमान रहा । जहां कही आवश्यकता हुई विशिष्ट शक्ति से कार्य किया गया । एक संवेगात्मक, उत्तेजना की दशा जो कि व्यक्तिगत उत्तेजना के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है मुस्लिम काल से आरम्भ हुई । यह भी एक ऐसी प्रणाली थी जो उन दिनों सर्वश्रेष्ठ थी । वास्तविक तन्मयता ऐसा निकटस्थ सम्बन्ध है कि जहां शुद्धता ही शुद्धता है । दिव्यता/पावनता के अतिरिक्त कुछ नही । जबकि

संवेगात्मक भावानुभूति एक प्रकार की उत्तेजना है, जिसमें कि भौतिकता समाविष्ट रहती है और इसलिये उतनी दिव्यता नहीं होती। तब वास्तविक लय अवस्था और संवेगात्मक अनुभूति की दशाएं प्रत्यक्ष प्रदर्शित की गयी।

८—११—४५ स्वा० वि० और लालाजी ने अपनी इच्छा व्यक्त की कि यह मिशन सभी दिशाओं में विकसित किया जाना चाहिये। उनकी इच्छा थी कि लोग समूह बनाकर न आएं, व्यक्तिगत रुप से आएं।

१०—११—४५ अन्तःवाह्य स्वच्छता एवँ सादगी (सरलता) पर महत्व (बल) दिया गया।

१४—११—४५ राजपुताना जाते हुए गहन सुषुप्ति एवं दिव्य वाणी के विन्दुओं का अन्वेषण किया गया इस विन्दु के द्वारा प्रकृति की विभिन्न शक्तियों पर नियंत्रण किया जाता है।

१५—११—४५ आ गये स्वा० विवे० ने इंगित दिया कि मैं राजपूताना के सिंह द्वार पर आ गया हूं—और मुझे अपना कार्य आरम्भ कर देना चाहिये। चूंकि मैं अस्वस्थ था और मेरा ठहरना भी अल्पकालिक था अतः कार्य आधा ही हो पाया।

१८—११—४५ स्वा० विवे० ने स्थूल व सूक्ष्म रुप में सृष्टि की व्याख्या प्रत्यक्ष कराई उन्होंने ऐसे व्यक्ति तैयार करने हेतु सुझाव दिया जो उच्चतम स्थिति पर पहुंचे और आगामी प्रकृति के वांछित परिवर्तन कार्य हेतु उपादान बन सकें।

१९—११—४५ (जयपुर रेलवे स्टेशन) मिशन के कार्य के लिये क्षेत्र सर्वेक्षण किया। और बीजारोपण कर दिया।

३—१२—४५ एक प्रश्न कि सबसे बड़ा शत्रु कौन है के उत्तर में लालाजी ने कहा कि—सम्मान।

१५—१२—४५ आगामी वर्ष जून में स्वा० विवे० ने बनारस और उड़ीसा जाने हेतु आदेश दिये। उन्होंने कहा "हिन्दुओं का प्रभुत्व भारत और विदेशों में रहा है-मनु का स्थान मिश्र देश था। तब यह भारत का ही भाग था। तुम्हें वहां भी आध्यात्मिक संस्पर्श ले जाना है। तुम्हारे सामने अतुलनीय कार्य है और तुम्हें अपने जीवन काल में इसे सम्पन्न करना है। अपनी विशिष्ट शक्ति का उपयोग करो और जितनी जल्दी हो सके लोगों को तैयार करो। आगामी कार्य हेतु लालाजी ने सुझाव दिया कि मुझे बनारस पहले और तब उड़ीसा जाना चाहिये।

१७-१२-४५ भगवान कृष्ण के आदेशानुसार उनके सभी संगठनों के संबंध काट दिये गये आजकल की गुरुआई की सचित्र व्याख्या लालाजी ने की।

१८—१२—४५ स्वा० विवे०:-वास्तविक प्रसन्नता एक मनःस्थिति है जिसमें प्रसन्नता का भाव भी अन्तर्भूत हो जाता है, अथवा निराकृत अविद्यमान ओझल हो जाता है। यह तभी आती जब सभी चीज एक में समाविष्ट हो गयी हो। और कुछ बचे नहीं, अपने से बाहर निकस्थ या दूरस्थ प्रसन्नता जैसा कुछ भी नहीं है। अपने लक्ष्य

को प्राप्त करने की बेचैनी से पर्याप्त सहायता मिलती है।

१९-१२-४५ विभिन्न सत्संगी/आध्यात्मिक बन्धुओं के सम्बन्ध में लालाजी ने अपने विचार से अवगत कराया। उनके व्यवहार और मनोवृत्ति पर गहरा क्षोभ व्यक्त किया।

२२-१२-४५ लाला जी ने प्रमाणित कर दिया कि वह मेरे अंग प्रत्यंग के रंग-रंगरोम में विद्यमान है, और यह कि आज तक ऐसी लय अवस्था कोई नहीं पा सका।

३१-१२-४५ स्वा० विवे० ने प्रातः कालीन समय विशिष्ट प्रकार के आध्यात्मिक कार्य में उपयोग करने हेतु निर्देशित किया। लालाजी ने कम से कम सेवा कार्य से ३ माह का अवकाश लेने हेतु आदेश दिये।

लालाजी :—तुम्हारा सानिध्य अमृत की तरह है, लेकिन किसे ? उसे जो मुझे तुम्हारे व्यक्तित्व में लय देखें, यदि तुम्हें आपत्ति न हो तो एक बात कहूं, तुम्हारा सानिध्य खतरनाक भी है-किसे? उन्हें जो मुझे तुममें लय देखने के उपरान्त भी तुम्हें अपने अधीन रखना चाहते हैं। अपना काम करो इस झंझट (ऊहापोह) से मुक्त रहो-सभी से साहस पूर्वक निपटो-निपटाओ।

१९४६

२–१–४६ पूज्य लाला जी–मैं अपने पूर्व जन्म में भी निर्धन रहा और इस जन्म में भी वैसा ही रहा, निश्चय ही मैंने पवित्र जीवन का निर्वाह किया। मैंने जो कुछ भी पाया, ईश्वर को धन्यवाद दिया और अपने बच्चों का पालन पोषण किया। जो कुछ मैंने अर्जित किया उसी पर निर्भर रहा। मुझे संसार से कोई लगाव नहीं था, और न ही इस सीमा तक मेरे अन्दर प्रेम ही रहा कि मैं उनके प्रेम में आसक्त हो जाता। संक्षेपतः मैंने ईश्वर को कभी नहीं भुलाया। इसी स्थिति में रहते हुये मैंने यह सम्यक् स्थिति प्राप्त की है। संसार का यह विस्तार माया के रूप में प्रकट होना आरम्भ हो गया, ईश्वरीय (दिव्य) प्रेम विकसित होने लगा। कष्ट सहनीय हो हो गये, मेरे पूर्वजन्म की यह स्थिति मेरे शरीरान्त से बहुत पूर्व ही आरम्भ हो गई। अपने अंतिम वर्षों में सुदृढ़ वैराग्य की (स्थिर) स्थापित दशा उपलब्ध हो गई। घृणा पूर्णतया निस्सृत हो गई, ईश्वर की याद ही शेष रही।

तुम्हारे प्रेम में प्रज्ज्वलता, ज्वलनशीलता रही, तुम्हें यह कोई विचार भी नहीं था कि तुम किसे प्रेम कर रहे हो। न हीं तुम्हें यह मालूम था कि कोई तुम्हें प्रेम कर रहा है। वस्तुतः जिस बिन्दु का तुमने अधिग्रहण कर रखा था, वह प्रेम की पराकाष्ठा थी। यह दशा स्वयं किसी में नहीं उतरी। लोगों को इसकी नकल नहीं करना चाहिये अन्यथा वे मार्ग से विचलित हो सकते हैं। ईश्वरीय कार्य ऐसे ही व्यक्ति को दिया जा सकता है।

३–१–४६ विशाल जनसमूह को प्राणाहुति देने की विधि का आविष्कार किया।

८–१–४६ स्वा० वि० सम्प्रति तुम्हारा कार्य शिथिल हो गया है क्योंकि तुम्हारे मन में विघ्न व्यवधान उत्पन्न न करने या विकास करने का विचार शाश्वत केन्द्र से सम्बन्ध होने के कारण गहरे प्रविष्ट हो चुका है। इससे एक प्रकार की सीमा बनती है जिसके परे तुम नहीं जा सकते, तुम प्रदत्त शक्तियों का भरपूर उपयोग नहीं कर पा रहे हो। इसके बावजूद (विपरीत) परिणाम शीघ्र चाहते ह।

तुम ऐसा भी निर्णय ले लेते हो कि तुम्हारी इच्छा शक्ति व्यर्थ जा रही है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि ऐसा नहीं है। अपना कार्य करो शेष सब ईश्वर पर छोड़ दो। नियत समय में परिणाम अवश्यम्भावी हैं। निराशा एक विष है जो स्वयं एक शक्ति है और जिससे कार्य छिन्न भिन्न हो जाता है। आध्यात्मोन्नत व्यक्ति में बड़प्पन का भाव नहीं होना चाहिये, केवल कर्तव्य भावना शेष रहनी चाहिये।

मुक्ति के विषय में स्वा० वि० ने कहा– न तो ईश्वर के हाथ हैं न पैर न आँख न कान, फिर भी कार्य यथानुरूप हो रहा है। जिसके पास यह चीजें हैं वह ईश्वर तक नहीं पहुंच सकता, उसके पास पहुंचने के लिये उसके जैसा बनना होगा। यदि इन सबके होते हुये वह दशा पा ले जो मूल (केन्द्र) के परितः अपनी सहज स्थिति में संव्याप्त है और यदि अपने जीवन काल में ही पा ले तो समझ लीजिये कि उसने मुक्ति प्राप्त कर ली है।

इस स्थिति को पाने के लिये लोगों ने कठिन तपस्यायें कीं । मुक्ति प्राप्त करना कोई हंसी खेल नहीं, शरीर होते हुये भी मुक्ति होना नितान्त दुष्कर (कठिन) है । इस स्थिति (दशा) को पाने के लिये समग्रतया स्थूलता का निराकरण अति आवश्यक है । अनावश्यक गतिविधियों का तिरोभाव हो जाना चाहिये । एक सरल (सादा) जीवन निर्वाह करना चाहिये । आसक्ति (अनुचित लगाव) छोड़ देना चाहिये इन प्रकरणों में लाला जी का अनुकरण करो ।

१०–१–४६ पूज्य लाला जी–ईश्वर ने यह उत्तरदायित्व मानव पर क्यों छोड़ा ? जबकि सभी ज्ञानेन्द्रियां उसने प्रदान कर दी । क्योंकि इनके साथ ही उसने प्रतिभा भी प्रदान की और इसीलिये वह अपनी इच्छानुसार (विवेक बुद्धि) जो चाहें करने को स्वतन्त्र है ।

१२–१–४६ पूज्य लाला जी ने मुझे एक शैर सुनाई 'नमी गोयम कि अज दुनिया जुदा बाश' । बहर कारे कि बाशी बा खुदा बाश ।

मैं तुम्हें इस संसार से सम्बन्ध तोड़ (विलगाव कर) लेने को नहीं कहता लेकिन यह चाहता हूं कि ईश्वर की विद्यमानता के जीवन्त विचार से अनुप्राणित होकर प्रत्येक कार्य किया करो । यदि किसी ने यह स्थिति स्वयं में विकसित कर ली है तो वह सदैव प्रार्थना की स्थिति में है– निम्नलिखित प्रार्थना अवतरित हुई–

हे नाथ! तू ही मानव जीवन का ध्येय है ।
हमारी इच्छायें हमारी उन्नति में बाधक हैं ।
उस स्थिति तक पहुंचाने के लिये--एकमात्र
तुम्हीं ईश्वर एवं शक्ति हो ।

पूज्य लाला जी ने सम्मति दी कि इसका प्रसार एवं विकास किया जाये और मूल ध्येय से किंचित भी विचलित न हुआ जाये ।

१५–१–४६ पूज्य लाला जी ने एक विशिष्ट प्रकार की ध्यान की विधि प्रकट की जिससे मन की शुद्धता शीघ्रतया सम्पन्न हो सके उन्होंने कहा कि प्रत्येक ध्यान की विधि जो लोग ढूंढ़ते हैं या ढूंढ़े हैं लाभदायी नहीं होती । केवल वही विधि समुपयुक्त है, जो सद्गुरू द्वारा अभिप्रमाणित (सत्यापित) एवं मूलकेन्द्र से सम्बन्ध स्थापित कराने वाली हो ।

१६ व १७–१–४६ के-आलेख, मूल केन्द्र सृष्टि व विकास से सम्बन्धित हैं, जो इस नियमों की व्याख्या में प्रकाशित है ।

२३–१–४६ पूज्य लाला जी ने धर्म की सामयापरक परिभाषा दी, केवल सांसारिक कर्तव्य निर्वाह ही पर्याप्त नहीं, दूसरे सांसारिक कर्तव्य, जोकि मानव जीवन का लक्ष्य है, के प्रति भी ध्यान देना चाहिये । दोनों चीजें एक के बाद एक क्रमशः उस बिन्दु को क्रियान्वित कर देना चाहिये जो उच्चस्थ शक्ति का अवतरण कर सके ।

२–२–४६ पूज्य लाला जी ने निम्नलिखित सम्मति दी, आज कल शिष्यों की कमी नहीं है। गुरू भी अत्यन्त सस्ता (व्यापारिक) उपादान है। किन्तु यह अधःपतन विनाश का इंगित है। शिष्य वस्तुतः वही है जो अपने गुरू की सेवा करता है। उसे गुरू के विचार के अतिरिक्त अन्येतर विचार नहीं आते। अपने गुरू के आदेशानुसार सभी कुछ करने को वह उद्यत रहता है। गुरु की मनोवृत्ति (इच्छा) जानना एक विशिष्ट चीज है जो सत्संग से उपलब्ध होती है केवल यही चीज सहायक हो सकती है (होगी)। एकनिष्ठ एकाग्रचित्त वृत्ति गुरू से सम्पर्क लाभ में सहायक है। इसे विश्वास से विकसित किया जा सकता है। सतत स्मरण की स्थिति उपलब्ध करने का प्रयास करना चाहिये, अपनी उन्नति के सापेक्ष में पहले के सन्तों के उदाहरण दृष्टि में रखने चाहिये।

जिसे केवल इससे ही सम्बन्ध है, और जो इसके (सततस्मरण) अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं करता, उसे स्वयं को सभी अनावश्यक चीजों से पृथक रखना चाहिये। दूसरे शब्दों में सभी दूसरी चीजें प्रकृति की भेंट के रूप में समर्पी जायें, यह सब करते हुये हृदय या मन पर किंचित भी स्थूल प्रभाव (छाप) नहीं बनने देना चाहिये। यदि इस प्रभाव के स्वभाव का विकास कर लिया जाये तो घटनायें प्रकृति की मांग के अनुरूप ही होंगी। इस सबका सारांश यह है कि वही भ्रष्ट सम्बन्ध या सूत्र अपने गुरू की ओर उन्मुख हो जाना चाहिये, और सम्बन्ध प्रगाढ़ आत्मीय हो जाना चाहिये। दूसरी बातें इस दिशा में सहायता के रूप में लेनी चाहिये।

३–२–४६ पूज्य लाला जी मुझे अभ्यासी की क्षमता (पात्रता) के अनुसार अनावरित किये जाने वाले चक्रों (बिन्दुओं) पर प्राणाहुति देने की विधि का प्रदर्शन किया। उस बिन्दु में कुछ शक्ति का उद्भव कर दिया जाये, जिसे कि अपने स्वप्रयास और सत्साहस से कोई खोलने अनावरित करने को उद्यत (निरत) हो। यह विधि उन सन्दर्भों में लेनी चाहिये जो प्रशिक्षक से पुनर्पुनः व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं कर सकते।

६–२–४६ आज वसन्त पंचमी थी। पूज्य लाला जी का जन्म दिन मनाया गया।

८–२–४६ गौतम बुद्ध जी—मुझे कहीं शांति नहीं मिली, यदि अन्ततः कहीं मिली भी तो अपने हृदय में ही। लेकिन क्या किसी के लिये किंचित भी सम्भावना इस चीज के मिलने की थी जो तुम्हें तुम्हारे गुरू जी (पूज्य लाला जी) ने प्रदान की।

मैंने अपना जीवन जंगलों में बिताया और पत्ते खाये। मैंने बहुत कुछ किया। किन्तु मुझे निर्वाण की सुगन्धि भर मिल सकी। अन्ततोगत्वा मुझे वह चीज भी मिली जिसकी मुझे चिरन्तन कामना थी। कितना समय इसमें लगा और कितने दिनों में इसे पाया जा सका ? मैंने एतदर्थ अथक अभ्यास किया था। कष्ट सहन किये, अभाव सहे, निरर्थक विचारों से संघर्ष किया और आठ अवतार साधे किये।

तब मुझे यह अन्तर्प्रकाश प्राप्त हुआ, जैसे ही यह प्रकाश आभान्वित हुआ कि सभी कष्ट परिमाप्त हो गये । समस्त अस्तित्व में शाँति सम्प्रहवान हो उठी । यह वस्तुतः अत्यन्त सुस्थिर थी । वस्तुतः यह सुरभि संस्पर्श शुद्ध निर्वाण का है । चूँकि तुम्हें यह निःशुल्क मिला है । अतएव इसका महत्व नही उद्वेग, संवेग झाड़ झंखार नशे की प्रवृत्ति के निराकरण हेतु कोई प्रयास नहीं किये गये भावनायें नियंत्रित नही रक्खी गईं । यह सद्गुरु की मौज और मर्जी (प्रसन्नता और इच्छा) का परिणाम है ।

प्रिय बन्धु शुद्धता केवल तभी आयेगी जब नशे की प्रवृत्ति (झाड़ झंखार) का निराकरण हो जायेगा । इसके लिये हर किसी को प्रयास करना चाहिये । यह कार्य वास्तव में तुम्हारा है अथवा ऐसे बन जाओ कि यह सब चीजें इसमें लय हो जायें या तो प्रयास करो या यही पद्धति अपनाओ ।

साधना की यह प्रणाली 'सहज मार्ग' इतनी सरल बना दी गई कि इसका गौरव कम हो गया । मेरी राय में तुम्हारे गुरू जैसा गुरू कभी पैदा नहीं हुआ न ही इस सीमा तक किसी गुरू ने आत्म बलिदान ही किया । उनकी सरलता का दूसरा उदाहरण नहीं । उनका प्रेम असीम था और अन्यत्र अनुपलब्ध था । यह गुणवतायें ऐसी हैं कि जिसमें भी ये पाई जाती हैं, तो इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि वह आध्यात्म के क्षितिज पर (शिखर) है दूसरे की राय की बिल्कुल आवश्यकता नहीं ।

आध्यात्मिकता के अधिग्रहण की दो विधियां हैं । पहली तो समग्रतः स्वयम् को इसमें लय कर देने की प्रणाली है और दूसरी पूर्णरीत्या इसे ही समग्र शक्ति सहित अपने में आत्मसात् या अधिग्रहीत करने की प्रणाली है अपनी व्यक्तिगत अभिरुचि एवम् प्रवृत्ति के अनुसार कोई भी विधि अपनाई जा सकती है । दोनों प्रणालियों का लाभ अन्ततः एक जैसा ही है । लोग सामान्यतया पहली विधि का अनुसरण करते हैं दूसरी विधि विशिष्ट व्यक्ति ही अपना सकते है जो नितान्त कठिन है, इस विधि में अपने भाव संवेगों का निराकरण (नियंत्रण) करना होता है । एतदर्थ पर्याप्त उत्कंठा पल्लवित हो जाने पर ही इसका अभ्यास करना चाहिये ।

तुम्हारे गुरू जी ने पहली विधि से ही उन्नति की । यह प्रेम की विधि है । मैं सम्मति देता हूं कि सभी इसी विधि का अनुसरण करें । दूसरी विधि के लिये कोई ऐसा व्यक्ति उपलब्ध होना चाहिये जो अभ्यासी को पूर्णत्व के बिन्दु तक ले जा सके । यह सर्व सामान्य का काम नही । एक अन्य श्रेष्ठतर विधि यह है कि उसमें स्वयम् को लय कर दिया जाये जो स्वयम् को पूर्णरीत्या उसमें (परम शाश्वत केन्द्र में) लय कर चुका हो किन्तु ऐसे व्यक्ति बहुत कम मिलते हैं । फिर शून्यत्व (आत्म-निराकरण) से कुछ न कुछ लाभ होना निश्चित ही है ।

१३–२–४६ बुद्ध जी ने अवगत कराया कि ऐसी अवस्था आती है जब सफलता

नि:शब्द हो जाती है। उनकी दशा इस प्रकार होती है कि दूसरे से वे श्रद्धान्वित होने की अनुभूति करते हैं। फिर भी असली दशा से यह कुछ स्थूल ही है

पूज्य लालाजी ने कहाकि-ईश्वरीय बातें इसी स्थिति में प्रकट होती है। वे सौभाग्यशाली हैं जिन्होंने इसका रसास्वादन किया है।

२०-२-९९४६ बुद्ध जी ने प्रशिक्षक के लिये धारणीय कुछ गुण बताये, उन्होंने कहा कि प्रशिक्षक की अन्तर्दशा और वाह्य व्यवहार समैक्य में होना चाहिये। अन्तर्वस्तु स्वत: परावर्तित परिलक्षित होना चाहिये।

अध्यात्म् से एक ऐसी स्थिति भी आती है जब अपना भार भी भारी अनुभव होने लगता है। वास्तवता इस स्थिति के पार हो जाने पर ही मिलती है। प्रत्येक अवस्था में किसी न किसी अनुपात में यह स्थिति आती है। इससे अपनी सुरक्षा प्रकृति के तादात्म्य में सहजजीवन निर्वाह कर करनी चाहिये।

२७-२-४६ स्वा० वि० आध्यात्मिक अवस्थाओं का तिरोधान (अन्तिम स्थिति) शून्यत्व में निहित है। शून्य क्या है। किसी ऐसी चीज का विस्तार/अभिप्रसार जो सभी कुछ आच्छादित कर ले और परिणिति (अन्विति) में एक सीमा बन जाये। आगे बढ़ने के लिये हमें इसे तोड़ना है। केवल तभी हमारा आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश सम्भव है। लेकिन इसे प्राप्त करने से पूर्व हमें स्वयं के आवृत्त से अपनी सर्जना से निर्मित प्रत्येक आवरण को अनावरित (उघार) कर बाहर निकलना होगा।

३-३-४६ स्वा० वि० ने शुद्धीकरण की विधि पर बल दिया इसलिये कि कमियां (दोष) आगे वास्तविकता की शक्ति से दृढ़तर न हो जाये-अर्थात शुद्धीकरण महत्व पूर्ण है। इसलिये कि वास्तववा उन स्थूल (अवांछनीय) चीजों को शक्ति न दे सके।

आजकल मैं एकान्त की आवश्यकता अनुभव करता हूं क्योंकि मुझे देह में कुछ ऐसे विन्दुओं का अन्वेषण करना है जिससे कि उन्हें किंचित दबाव भी दिया जाये तो आध्यात्मोन्नति में वांछित समुपयुक्त शक्ति बहुलतया उपलब्ध हो सके।

मैं प्रवाह अवतरण के सम्बन्ध में सोच रहा था और अध्यात्म धारा की क्रिया विधि पर विचार कर रहा था। जब कोई अकस्मात् आया तो विचार श्रंखला कट गई और केवल धारा (वस्तु) ही रह गई।

मानव देह की प्रत्येक स्नायु एवं शिर में ऐसी भीषण शक्ति सन्निहित है कि समग्र संसार इससे नष्ट हो सकता हैं। सभी चीजें अपने अन्दर ही अन्तर्निहित हैं।

प्राचीन ऋषियों ने इससे सम्बन्ध इसलिये नहीं रखा कि इससे भौतिक दृष्टि कोण विकसित हो सकता था। उन्होंने इनसे अपनी आवश्यकतानुसार कार्य लिया।

लखीमपुर १०.३० बजे प्रात:—महात्मा बुद्ध जी-जब मानव की दशा प्रकृति से एकत्व प्राप्त कर लेती है और अपेक्षाकृत कुछ भी असामंजस्य में असम्यक् नही रहता और जब यह अनुभूति भी तिरोभूत हो जाती है तब उसे समझना

चाहिये कि वह आध्यात्मिक प्रशिक्षण के लिये योग्य (उपयुक्त) है।

यह भी पर्याप्त नहीं है। आगे बढ़िये और अच्छी स्थिति पाइये। यह अन्तिम सीमा नहीं है, वस्तुतः यह आध्यात्म्य का आरम्भ है। मैंने यह स्थिति प्राप्त परिश्रम करके उपलब्ध की। मेरे समय में इस स्थिति को उपलब्ध कोई नहीं था। यह कोई सामान्य चीज नहीं, न ही प्रत्येक इसे प्राप्त कर सकता है। लेकिन इसका आशय यह नहीं कि कोई एतदर्थ आशा का परित्याग कर दे। ऐसे व्यक्ति मानवीय स्तर से ऊंचे होते हैं।

४–३–४६ यदि कोई किसी वस्तु की गहराई में जाता है तो उसमें दिव्य विवेक (विचार–शक्ति) का अभ्युदय होता है। कुछ अन्य नये विन्दु भी मेरी दृष्टि (समझ) में प्रत्येक क्षण आते रहते हैं। यह ज्ञान इतना विशाल है कि कोई सीमा नहीं।

१०.०० बजे (रात्रि) अमुक श्रीपी० का सम्बन्ध विच्छेद करने के आदेश मिले तदनुसार सम्बन्ध भंग कर दिया गया।

५–३–४६ अभ्यासी के लिये आवश्यक निम्नलिखित गुण है—

१—स्वभावतः उसे सूक्ष्मता को प्रश्रय देना चाहिये।

२—उसे कर्तव्य भाव का अधिग्रहण करना चाहिये।

३—उसे बड़ों के प्रति आदर और दूसरों के प्रति उदारता का भाव रखना चाहिये।

४—उसे सम्कक् बुद्धि रखनी चाहिये।

५—प्रवृत्ति से ही सही वस्तु के प्रति उसे सहमत होना चाहिये।

६—उसे हठ नहीं रखना चाहिये। यदि रहे भी तो इसे वास्तवता की उपलब्धि और इच्छाओं (वासनाओं) के निराकरण के लिये प्रयोग करना चाहिये।

७—उसे संकोच नहीं करना चाहिये।

८—उसे दैनन्दिन अभ्यास के नियमों का पालन करना चाहिये।

९—उसे विनम्र (दयालु) होना चाहिये। पूजा कि जिससे विनम्रता न उत्पन्न हो नितान्त निरर्थक (निष्प्रयोज्य) है।

यदि यह सब चीजें प्रार्थना के रूप में ली जाती हैं तो कुछ अच्छे परिणामी प्रभाव हो सकते हैं। आध्यात्मिक भवन की दृढ़ आधार शिला हिन्दुओं ने प्रार्थना पर प्रतिस्थापित की।

७–३–४६ ऋषि याज्ञवल्क्य ने आत्मिक सम्पर्क किया और बताया कि राजा दशरथ के ७२ पीढ़ी पूर्व योग की पद्धति प्रचलित थी। तब जाति प्रथा में कोई स्थूल रूढ़ि नहीं थी, प्रत्येक जो ब्रह्म को जान गया, ब्राम्हण कहलाता था। क्षत्रियों ने अपने कार्य अच्छी तरह सम्पन्न किये। लिंग भेद से अहंभाव उत्पन्न हुआ और आध्यात्मिकता समाप्त होने लगी।

१०–३–४६ भगवान कृष्ण ने कहा–कि मैं उड़ीसा जाने से पहले उनकी अनुमति

की प्रतीक्षा करूं । सन्त याज्ञवल्क्य ने कहा–कि यदि मानव प्रत्येक क्रियाविधि अपने गुरू के विचार सम्पन्न करने का स्वभाव विकसित कर लेता है तो इससे उसे पर्याप्त लाभ होगा ।

१८–३–४६ यह होली का दिन है–पूज्य लाला जी ने होली का महत्व इस प्रकार प्रस्तुत किया (समझाया)–

"प्राचीन काल में ऋषि अपना जीवन जंगलों में व्ययीत करते थे, और वहीं उनके शिष्य भी, जिन्हें वे प्रशिक्षण दिया करते थे । प्रशिक्षण प्राविधि में–सैद्धान्तिक एवम् व्यवहारिक दोनों परिप्रेक्ष्य थे, व्यवहारिक प्रशिक्षण में शिष्य के आन्तरिक आवरण हटाये जाते थे, होली के दिन उन्हें विशिष्ट स्नान कराया जाता था, जिसमें विभिन्न रंगों के फूल पानी में उबाले जाते थे इससे उन्हें साथ ही साथ आत्मोन्नयन में सहायता मिलती थी, विभिन्न आवरण हटाने के लिये विभिन्न प्रकार के स्नान नियत थे ।

१९–३–४६ मुझे भारत के प्रत्येक ऋषि को वातावरण के शुद्धीकरण में निरत रखने के आदेश प्राप्त हुये ।

२०–३–४६ प्राण का नियंत्रण–प्रत्येक कण में स्यन्दनशील शक्ति प्राण है यह सृष्टि के आरम्भ से विद्यमान है प्राण के नियंत्रण (प्राणायाम) का अर्थ प्रकृति के नियंत्रण से है ।योग की विभिन्न साधना पद्धतियों का पहला और मूल उद्देश्य प्राण को सीमित रखने वाली शक्तियों के बन्धन से व्यक्ति को मुक्त करना है । एक बार जब बंधन शिथिल हो जाते हैं तो व्यक्ति स्वयं उच्चतर स्थिति में प्रविष्ट हुआ अनुभव करता है जो समयान्तराल में लयावस्था में (विकसित) स्थान्तरित हो जाती है ।

जब लयावस्था का भाव भी समाप्त हो जाये तो व्यक्ति स्वयं को अनन्त सागर में प्रविष्ट अनुभव करता है और इसमें तिरना आरम्भ कर देता है । प्रत्येक को इस अवस्था में निवास करने हेतु प्रयास करने चाहिये, इससे प्रकृति पर पूर्ण स्वामित्व लाभ होता है ।

२५–३–४६ पूज्य लाला जी ने मुझे बताया कि यदि मानव प्रकृति से कोई अवांछनीय तत्व का निराकरण किया जाना है तो एक विचार बना लेना चाहिये यह (अवां० तत्व) पूर्वत: निकल चुका है और यह बताया कि यह सभी बुराइयों को दूर करने का सार्वभौमिक शाश्वत उपचार है ।

३०–३–४६ भगवान कृष्ण—नशे की दशा को कुछ लोगों ने भ्रमवश अध्यात्मिकता मान लिया था । उन्होंने इतना ही ग्रहण कर पाया और इसे ही पर्याप्त समझते रहे । कुछ आगे बढ़े किन्तु बहुत ही कम सन्त उच्च स्तर प्राप्त कर पाये ।

सर्वप्रथम वह चीज (नशा) प्राणाहुति से संक्रमित होती रही । लेकिन इसमें उच्च स्तरीय निर्माण की कोई दृढ़ आधार भूमि नहीं है । उनमें यह कमी है । सहज मार्ग में यह कमी दूर कर दी गई है ।

इससे क्या लाभ कि सारा जीवन आच्छादनीय (नशे की) अनुभूति में व्यतीत हो जाता है। वास्तविकता की किंचित रेखा भी नहीं मिलेगी। जीवन उत्तेजना एवम् पार्थिव पदार्थों के प्रति आकर्षण में व्यर्थ चला जाता है। 'हमारे यहां शांति की सर्वत्र ही अत्यन्त प्रसंशा की गई है। क्या शांति में कोई मानव तलवार खींच सकता है ? निश्चय ही। भगवान कृष्ण में कभी उत्तेजना (गर्मी) नहीं आती थी, जब तक विशेष परिस्थिति में असाधारण सन्दर्भ न हो।

इस शांतिपूर्ण दशा में हिंसक पशुओं (असभ्य व्यक्तियों) पर नियंत्रण प्रयोग किया जा सकता है। यह वह चीज है जिसकी तुलना दृढ़ स्थिर वि दु से की जा सकती है। यदि ईश्वर की यह (शांतिपूर्ण) दशा न होती तो कुछ भी नहीं कर पाता। जब विनाश के लक्षण उत्पन्न होते हैं तो प्रकृति में भी एक प्रकार का आक्रोश (संघर्ष) उत्पन्न होता है और जब कोई रचनात्मक कार्य सम्पन्न होना होता है, प्रकृति की दशा पूर्वोक्तानुसार (शांतिपूर्ण) होगी। हमारे ऋषियों ने शांति की प्रत्येक मंत्र में सराहना की है, क्यों ? इसलिये कि यह वास्तविक वस्तु है। यदि कोई शाँति का पाठ सीखना चाहता है तो वह यहाँ आये, यह वास्तवत्ता है। किसी ने नहीं सोचा कि यह दशा क्या है ? उन्होंने कुछ संक्षेप सार ही जान पाया।

यही केवल वह चीज है जिसकी खोज में ऋषि जंगलों में रहे और जिसके लिये राजाओं ने राजसिंहासन को लात मार दी। शांति सदैव सर्वोपरि प्रभावी रही।

३१–३–४६ आक्रोश, संघर्ष और ऊष्मा–गर्मी (उत्तेजना) यह माया के क्षेत्र में है। यदि कोई अपने में सूक्ष्म दशा का आविर्भाव कर लेता है तो वह माया के परे पहुंच जाता है। एक सहज अवस्था की सम्यक् प्राप्ति का प्रयास करना चाहिये। सरलता प्रकृति के तदनुरूप (तादात्म्य में) होनी चाहिये। प्रत्येक क्रियाविधि ऐसी अनुभूत होनी चाहिये कि स्वयमेव हो रही हो अर्थात कि एक यंत्र कार्य कर रहा है और हमारे अनुभव में कुछ नहीं आता। लोग इसे सही नहीं समझ पाये। गीता पर अनेकों टीकायें लिखी गईं, लेकिन कोई वास्तवत्ता को नहीं पा सका। गीता में वर्णित विषय वस्तु नितान्त सहज है।

भगवान कृष्ण ने गीता का सार निम्न शब्दों में व्यक्त किया–'यह एक युद्ध स्थल का दृश्य है, अर्जुन स्वजन/पारिवारिक बन्धुओं को देखकर भयभीत हो उठा और यह असमंजस करने लगा कि कैसे अपने ही लोगों को वह मारेगा। इससे क्या लाभ कि अपने परिवार को मारकर उसे सारे संसार का अधिपत्य मिलता है ?

संभवतः इस प्रकार के विचार उसके मन में उभरे, इन विचारों से उसमें कायरता उत्पन्न हो गई। उनका उत्साह मन्द पड़ गया। वह क्षत्रिय धर्म से विचलित हो रहा था। मैंने उसे यह शब्दों के द्वारा समझाया, मैने उसे शिक्षा दी और साथ ही साथ अपनी इच्छा शक्ति (यौगिक प्राणाहुति) से आध्यात्मिक दशाएं अनावृत करता गया। केवल शब्दों से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता जब तक कि विचार

की शक्ति उससे न जुड़ी हो। उसके विचार के सभी अवरोध खुल गये। एक सम्यक् स्थिति कि जिसमें सुख–दुख, जीवन–मृत्यु समान हैं, उसमें पैदा हो गई यही गीता है जिसके द्वारा मैंने उसे सिखाया।

क्या लाला जी द्वारा दिया गया प्रशिक्षण उसी प्रकार का नहीं, वह आंतरिक वन्धन (आवरण) बातचीत मात्र से काट देते थे। गीता में एक बात पर निश्चय ही बल दिया गया है कि अपने धर्म के अनुसार कर्तव्य व्यवहार करना चाहिये।

गीता में मैंने मात्र ६ पद कहे–सातवां पद कहने का अवकाश नहीं था। प्रत्येक वस्तु/स्थिति क्रियात्मक रूप में करके दिखाई गई, प्रत्येक पद में एक दशा अन्तर्निहित है

जब मैंने अव्यक्तगति के विन्दु से प्राणाहुति दी तो उस समय लंका का ऋषि ईश्वरीय कार्य में विरत था। उसने इसे अनुभव नहीं किया। जब उन्हें इसकी सूचना दी गई तब वे ध्यान पर बैठे, उन्होंने यह दशा इतनी पसन्द की कि उस विन्दु को अनावृत अन्तर्प्रकाशित करने हेतु प्रार्थना करने लगे। चूंकि ऐसा करने के आदेश नहीं थे।अतएव अव्यक्तदशा नहीं खोली गई, ऋषि इससे इतना आकर्षित थे कि उन्होंने जब तक यह स्थिति पूर्णरीत्या अन्तर्प्रकाशित नहीं की जाती, तब तक अन्नजल न ग्रहण करने की शपथ ले ली। तब वह अपने गुरू की ओर उन्मुख हुये, तब उन्होंने कहा कि मेरे सिवा यह स्थिति और कोई नहीं दे सकता और यह बताया कि वे मेरे पास अकेले आये।

सीलोन के ऋषि गुरू की प्रार्थना के अनुसार लाला जी ने मुझे ऋषि को शिखर तक शनैः–शनैः दशा प्रति दशा को अन्तर्जागरित करते हुये पहुंचाने हेतु निर्देश दिये। सीलोन के ऋषि कि आध्यात्मिकता में समुन्नत होते हुये भी अव्यक्तगति से नितान्त नीचे पाये गये।

७–४–४६ पूज्य लाला जी ने खेद प्रकट किया कि लोग आध्यात्मिकता को मजाक समझते हैं। और कहा कि वे अपना समग्र विचार जन्म जन्मान्तर सांसारिक सुख उपलब्ध करने में लगा देते हैं। इसका मुख्य कारण रुचि एवं प्रेम की कमी है।

प्रेम की प्रकृति (लक्षण) प्रेम क्या है ? यह अनन्त का प्रतिरूप (छाया) है और मानव का प्रधान रत्न/प्रकाश के अभ्युदय होने पर छाया ओझल हो जाती है, सांसारिक प्रसंगों में लोग सामान्यतया ऐन्द्रिक सुख के प्रति प्रेम करते हैं।

यह सहज है क्योंकि इंद्रियां इसी ओर उन्मुख हैं। कदि यही उस ओर उन्मुख कर दी जाएं तो प्रत्येक चीज उपलब्ध हो सकती है। अर्थात यदि उस अनन्त आनन्द के प्रति प्रेम विकसित होता है तो इसके प्रशस्त परिणाम होंगे। इसका उपयोग अब तक अनुपयुक्त रूप से होता रहा, पहले सन्दर्भ में अंधोन्माद है जबकि दूसरे में मानवीय औदार्य है, जो कर्तव्य क्षेत्र के अन्तर्गत है। दूसरी चीजों का उपयोग कर्तव्य के विरुद्ध है और अशिष्टता है।

संक्षेपतः प्रेम ही सफलता का रहस्य है। यह साधक को ऐसी दशा में पहुंचाता

है जिससे वह सर्वोच्च शिखर पर पहुंच जाता है और स्वयम् वहां ओझल हो जाता है।

प्रेम की तीन स्थितियां हैं—पहली जो सामान्य रूप में देखने को मिलती है। एक व्यक्ति अनावश्यक रूप से निरुद्देश्य सांसारिक वस्तुओं में लगा हुआ है और प्रत्येक साधारण वस्तु के लिये भी वह रोता रहता है। इनके न होने पर वह दुख अनुभव करता है यदि वह पुनर्स्वास्थ्य लाभ कर लेते हैं तो आश्चर्यजनक दशा में पहुंच जाते हैं। दूसरी दशा (स्थिति) इससे बहुत आगे है अर्थात चिन्ता निःसंदेह रहती है। वह कार्य करता है और अभाव/कष्ट भी अनुभव करता है लेकिन वह दयामय स्थिति में रहता है।

तीसरी अवस्था इससे और भी आगे है। इस स्थिति में यही विचार होते हैं कि कार्य करो, और अधिक प्रयास करो। यदि इच्छित परिणाम न हुआ तो सोचिये कि ईश्वर से ऐसा ही स्वीकृत है। इस स्थिति में पहुंचने पर ईश्वरीय विचारों का उद्भव होता है और वास्तवत्ता के प्रति सम्बन्ध आरम्भ होता है, जिससे बाद में कार्य लिया जाता है, उसे उलट दीजिये और आगे बढ़ो। अब यह आवश्यकतानुसार उच्चतम सीमा तक पहुंचता है तो यह शुद्ध प्रेम का आरम्भ है। शब्द 'उलट' पूरे अर्थकों से पूर्ण है। घोड़े को जितना दौड़ाया जाता है, उतना ही प्रसन्न रहता है। यहां भी ऐसा प्रसंग है।

८—४—४६ भगवान कृष्ण ने मुझे आदेश दिये कि उड़ीसा की यात्रा स्थगित कर दी जाये।

११—४—४६ प्रेम निश्चय ही एक आश्चर्यजनक है, वास्तविक प्रेम के उदय होने पर ऊंचे—नीचे का, छोटे—बड़े का सभी विचार दूर हो जाना चाहिये। भगवान बुद्ध की स्थिति भी विशिष्ट दयामय प्रेम से परिपूर्ण थी। उन्होंने सुधार अपना प्रमुख कर्तव्य माना और अपना जीवन लोक कल्याण में लगाया।

१४—४—४६ मुक्ति का अर्थ सभी कामनाओं से स्वयम् को स्वतंत्र कर लेना है। हजारों वर्ष की तपस्या से भी मुक्ति (परिनिर्वाण) नहीं मिलती। इसे प्राप्त करने का मार्ग सरलता और सादगी के समावेश में है। जो इसे नहीं समझते वे वस्तुतः बुद्धिमान (विवेकी) नहीं। यदि मानव को सरलता उपलब्ध हो गई और प्रकृति के तादात्म्य में वह आ गया तो मुक्ति निश्चित है। यह ऐसी दशा है कि इससे एक क्षण के लिये भी दूर नहीं रहना चाहता भले ही उसे कितना भी कष्ट/अभाव क्यों न हो।

२२—४—४६ लाला जी की कृपाधार को अपने स्थान पर सम्प्रवहमान अनुभूत किया। समस्त वातावरण समुन्नत एवं रूपान्तरित हो रहा था।

३०—४—४६ पूज्य लाला जी ने मुझे बताया कि वह सदैव मुझे ऊंचे और ऊंचे उठते देखने के लिये बेचैन रहते हैं। उन्होंने ऐसे उच्चस्तरीय प्रशिक्षण हेतु ऐसा

व्यक्ति पाने पर संतोष व्यक्त किया ।

४–५–४६ मैं अपनी समग्र उपलब्धियों (शक्तियों) सहित स्वयं को लाला जी में लय कर देने हेतु प्रयासरत रहा हूं । इसलिये कि इस आग में कांटे खुबड़े झाड़ झांखर जलकर राख हो जायें । इस सन्दर्भ में लाला जी के कोई निर्देश प्राप्त नहीं हुये । किसी प्रकार यह मेरे विचार में आया कि मुझे शाश्वत नियम में एकत्व उपलब्ध करना चाहिये जो मेरे लिये लाला जी द्वारा प्रदर्शित किया गया । मेरे जन्म से ही आत्मश्लाघा/स्वमहत्व का विचार मुझमें नहीं था । यही वह चीज थी जिसने मुझे बहुत मदद की ।

१९–५–४६ स्वा०वि० ने मुझे सूचित किया कि महात्मा बुद्ध मुझमें लय हो चुके हैं।

२०–५–४६ रचनात्मक एवं संहारात्मक कार्य हेतु कुछ निर्देश मिले, मुझे बुद्ध गया को पूर्णरीत्या अन्तर्काशित करने हेतु आदेशित किया गया ।

२४–५–४६ नैतिकता उन लोगों द्वारा जो अपने को धर्म का संस्थापक समझते हैं, नष्ट कर दी गई ।

२५–५–४६ नीमसार पहुंचा, और नगर को प्रकाशित किया । चक्रतीर्थ सरोवर अनुप्राणित किया गया ।

२९–६–४६ नीमसार में मेरे कार्य से लाला जी और स्वामी विवेकानन्द ने अपना संतोष व्यक्त किया । लाला जी ने मुझे सूचित किया कि गया और पुरी में मेरे लिये और अधिक कार्य है । और यह कहा कि मैं गया पहले लूं और पुरी का कार्य बाद में करूं । स्वामी विवेकानन्द–विनाश के प्रथम चरण में परिस्थिति इच्छा के प्रभाव से सम्पन्न की जाती है । कार्य को क्रियान्वित करने हेतु परिस्थितियां बनाई जाती है । विनाश का भी कार्य करो जो अधूरा रह गया है ।

लखीमपुर पहुंचा–बाबू के साथ रहा, रात को प्रसाद चढ़ाया गया । सभी संत उपस्थित थे । भगवान कृष्ण और राधा जी ने मुझे एक के बाद एक क्रमशः प्राणाहुति दी । मैंने अपने अन्दर ऐसी शीतलता अनुभव की कि जैसे हिमगिरि को छूकर आने वाली हवा शीतल होती है । राधा जी से प्राणाहुति प्राप्त करने का यह पहला अवसर था ।

११–७–४६ आध्यात्मिकता कुछ हैं, शक्ति कुछ और/यक्ति प्राप्त करना आसान है लेकिन आध्यात्मोन्नयन के लिये सहायक (उपयोगी) वस्तु (उपलब्धि) कठिन है ।

४–८–४६ इस्लामी आध्यात्मिक साधना की प्रणाली का समापन कल्याण हेतु हुआ नई संस्कृति एवं नये धर्म की आधार शिला अन्य धर्मों में सहज मार्ग द्वारा रखी जा रही है । इस्लाम प्रवर्तित साधना प्रणाली हमारी भारतीय प्रणाली से भिन्न थी और निम्न स्तर की थी । सहज मार्ग पद्धति में प्रकट की गई वस्तु उनके लिये स्वप्न थी और वे उसे सहजतया नहीं अधिग्रहीत कर सके । उनमें से कुछ ही कठिनाई

से उस परिधि तक ही पहुंचे, इतनी अधिक जिसकी उन्होंने प्रसंशा की है वह वस्तु माया के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं । हम भारतीय ही परम शाश्वत से सीधे सम्बन्ध रखने का साहस रखते हैं । यद्यपि कि यह हम से ही उधार ली गई थी किन्तु वे इसे अन्त तक आगे नहीं बढ़ा सके ।

हजरत मो० साहब ने अन्त: सम्पर्क किया और मुझे बताया कि मुसलमानों की पद्धति इसके लिये उत्तरदायी है । उन्होंने कहा 'मैंने भी अपने अन्तिम क्षणों में वास्तवत्ता की कुछ झलक देखी । उन्होंने उस चीज को आगे नहीं बढ़ा पाया, जैसी कि उन्हें दी गई थी, भाई क्या यह छोटी चीज थी कि वे शाश्वत अस्तित्व में विश्वास विकसित कर सके होते ? मेरे बाद कोई ऐसा नहीं हुआ जो उन्हें उससे आगे वास्तवत्ता के बारे में समझाता जितनी कि उन्हें ज्ञात थी और इस प्रकार उनके खानपान और रहन सहन के पाशविक ढंग से उन्हें मुक्ति दिलाता ।

यहां भारत में वातावरण एवम् भूमि ही ऐसी है कि इसमें सरलता की सुरभि कूट-कूट कर भरी है । मैं प्राथमिकता के आधार पर तुम्हारे इस दृष्टिकोण से सह–मत हूं कि आध्यात्मिकता धर्म से परे की वस्तु है । धर्म केवल पथ प्रशस्थ करता है और मानव को पाशविकता से निवृत्ति दिलाता है, और उसे मानवीय अस्तित्व में लाता है ।

१९–८–४६ सोमबार ज माष्टमी (८.३० बजे रात्रि) मीराबाई ने अन्त सम्पर्क किया और कहाकि 'यह घर मुझे बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है, मैं इस कक्ष को पसंद करती हूं, जहां भगवान कृष्ण स्वयं उपस्थित हैं । यहां कुछ अणु ऐसे हैं जो इस कक्ष में नहीं होने चाहिये, इसकी सावधानी रहे कि भविष्य में केवल शुद्ध विचार एवं बातचीत ही इस कक्ष में हुआ करे । कमरा वन्द रखो, जब तुम्हे आवश्यकता हो तुम इसका उपयोग कर सकते हो या यदि कोई सामान्य रूप से यहां बैठता ही है और अभ्यस्त है तो कोई हानि नहीं ।

१–९–४६ प्रत्येक व्यक्ति माया के हाथों में उछल रहा है । प्रत्येक तमसावृत है । वह उपचार उसी क्षेत्र के (परिधि) अन्तर्गत ढूंढ़ता है, जब भी कुछ मिलता है तो यह उसी प्रतिच्छाया से जो स्वयं शुद्ध नहीं है, मिलता है । तब शुद्ध क्या है? केवल ईश्वरीय सम्वृत ही शुद्ध है । जब हम यह कहते हैं कि हम अपनी धारणा-अन्तश्चेतना का अनुसरण करते हैं तो हम उस क्षेत्र की ओर अग्रसर नहीं होते । धारणा के, अन्तश्चेतना के समादेश सदैव ईश्वरीय दिव्य-वास्तवत्ता का मार्गदर्शन नहीं कर सकते, इसकी हितैष्णुता पर कोई संदेह नहीं, किन्तु कब ? केवल तभी जब समुचित रूपेण प्रशिक्षण दिया गया हो । धारणा अन्तश्चेतना का प्रशिक्षण हंसी खेल नहीं है यदि सभी ऐसा चाहते/करते होते, यह सहज हो गया होती ।

१०–९–४६ मिशन के प्रतीक चिन्ह के सन्दर्भ में विस्तार विश्लेषण प्रत्यक्ष हुये । अरुणोदित सूर्य लाला जी द्वारा प्रतिपादित आध्यात्मिकयुग का सूचक है, इससे यह भी महत्व परिलक्षित होता है कि साधना की समग्र अवधि में समग्रतया

आरम्भ से ही पूर्ण स्वामित्व रखा गया।

२१–९–४६ पूज्य लाला जी ने बताया कि जाति एवं रंग भेद की सामयिक स्थिति प्रचलित नहीं रहनी चाहिये। मूलतः यह एक पारिवारिक व्यवस्था थी, परिणाम जिसका यह हुआ कि प्रत्येक वर्ग प्रथक इकाई बन गया। इस प्रकार ऊंचे नीचे का भाव उत्पन्न हो गया।

२४–१०–४६ समर्पण एवम् संतोष की स्थिति सर्वोच्च है, वस्तुतः इसका आरम्भ और अन्त जहां यह प्रकट होती है उसके सिवा कुछ नहीं है। यह भी देखा गया है कि कुछ सन्तों ने इसी से आरम्भ किया और यह भी हुआ कि यह (समर्पण) आध्यात्म्य यात्रा के मध्यान्तर उपलब्ध हुई, कुछ मामलों में यह भी हुआ कि कुछ आध्यात्मिक स्थितियां पार करने पर ही यह स्थिति मिली। यह ईश्वरेच्छा पर निर्भर है कि कब यह स्थिति अपने भक्त को प्रदान कर दे, इसका प्रमाण विनम्रता, शिष्टता, असहायता की अनुभूति आदि–आदि है।

२७–१०–४६ स्वा० वि० ने मुझे सलाह दी कि अपने विचार लिख लिया करूं। जिससे कि उनका विस्तार करके पुस्तके लिखी जा सकें।

९–११–४६ कुछ स्वभावतः ही उच्चतर सूक्ष्म स्थितियां प्राप्त करते चले जाते हैं, यह वे लोग हैं जिन्हें प्रकृति एतदर्थ प्रेषित करती है लेकिन इसका आशय यह नहीं कि यदि दूसरे भी प्रयत्न करे तो उन्हें सफलता न मिले। केवल अन्तर इतना है कि जो प्रकृति से पूर्णरीत्या तैय्यार किये हुये यहां आते हैं। उन्हें कार्य विभाजन सीधे प्रदान किया जाता है जबकि यह दशा स्वप्रयास से अग्रसर हुये लोगों में नहीं पाई जाती, किन्तु दोनों प्रकरणों में एक ही प्रयोजन की सिद्धि होती है। यहां सम्बन्ध गुरू से होता है। वहां सीधे सर्वशक्तिमान परमशाश्वत केन्द्र से। स्वयं को साम्यता पूर्ण बनाये रखिये, विकसित साम्यता के अनुपात में ही वास्तवता हस्तगत होगी।

१८–११–४६ अर्जुन जी ने आत्मिक सम्पर्क किया और धनुर्विद्या के विज्ञान के सम्बन्ध में बहुत सी बातें बताईं। उन्होंने यह भी बताया कि धनुर्धर की इच्छाशक्ति लक्ष्यवेध के समय बाण से सम्बद्ध रहती थी।

२८–११–४६ लंका के ऋषि ने कहा–"मैंने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। धन्यवाद! मैं अपने लिये सौंपे गये कार्य को करने हेतु सदैव सन्नद्ध रहूंगा।

१–१२–४६ स्वा० वि० "तुम यहां संसार को मुक्त करने आये हो। बहुत सी आत्मायें दिव्य संसार में भी प्रतीक्षारत है।"

५–१२–४६ हृदय क्षेत्र का अन्वेषण किया। यह एक विशद सम्वृत्त है जिसके पीछे (परे) केवल शाश्वत अपने शुद्ध रूप में विद्यमान है। मुक्तात्मायें यहीं तिरती रहती हैं। एक विचार आया कि यह क्षेत्र पहले ही आरम्भ में क्यों नही शुद्ध कर लिया जाये। मैंने इस विचार को क्रियान्वित करने का निश्चय किया और इसके लाभ देखना चाहा। लाला जी ने भी निम्नलिखित शब्दों में इस विचार भाव को प्रोत्साहित किया। 'मानवता के लाभ के लिये ईश्वर तुम्हारे द्वारा प्रकृति के रहस्यों

का अनावरण करे। जिन्होंने अब तक पूर्णत्व प्राप्त किया है। उन्होंने परिश्रमयुक्त अभ्यास (साधनाएं) किए, निष्फल शक्ति का ह्रास किया। दर–दर भटकते रहे, तब उन्हें नितान्त कठिनता से एक झलक मात्र मिली। इस सर्वोपरि (सूक्ष्म) प्रकाश से अधिकांशत: वंचित ही रहे। इसका कारण यह था कि उन्होंने कठिन साधनों से सहज वस्तु को पाने का प्रयास किया, और इस प्रकार जटिलतायें उत्पन्न कीं। एक सरल (सहज) वस्तु जो नितान्त सन्निकट है, अज्ञानवश लोगों द्वारा भुला दी गई। अनेकों विधियां अन्वेषित और अभ्यास की गईं, लेकिन इनसे मात्र ऊष्मा ही मिली। इस ऊष्मा को ही उन्होंने अत्यन्त महान मान लिया। उन्होंने अपनी निरर्थक दृष्टि से भ्रमवश ऊष्मा/उत्तेजना को ही आध्यात्मिकता मान लिया। और वही पर्त (आवरण) अन्तर्प्रविष्ट होता गया। वे आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख नहीं हो सके, उन्हें वास्तवत्ता का ज्ञान कभी नहीं हुआ। अब समय आ गया है जिस वस्तु को तुमने सरलतया सीखा है वह अब दूसरों के लिये सैकड़ोंगुनी सरल हो गई है।

२२–१२–४६ पूज्य लाला जी ने कहा–"यदि यहां कोई सत्संगी तुम्हारी अनुपस्थिति में आता है और मुझसे···मेरे आसन के समीप बैठे हुये कृपा (प्राणाहुति) ग्रहण करना चाहता है तो मैं यहां तत्क्षण ही उपस्थित हूंगा वह जब तक चाहें यहाँ बैठ सकता है।

३०–१२–४६ स्वा० वि०–बच्चों! अपने गुरू के प्रति रामचन्द्र का घनिष्ठ प्रेम एवं अनन्यभक्ति तुम्हारे सबके लिये अनुकरणीय है। यह चीज अत्यन्त विरल (असाधारण–है) लेकिन इसका आशय यह नहीं कि मानव यहां तक नहीं पहुंच सकता। प्रेम अपना भाग अदा करता है अर्थात प्रेम का प्रतिफल अवश्य मिलता है, इस सबका सार संक्षेप यही है।

[१९४७]

३-१-४७ भगवान कृष्ण ने गया का कार्य ग्रहण करने हेतु बल दिया जिसे उन्होंने आवश्यक बताया। मैं गया और बनारस को या तो एक-एक कर या साथ ही साथ ग्रहण कर सकता हू। इसका चयन मुझ पर छोड़ दिया गया।

१४-१-४७ भगवान कृष्ण:- संसार ने एक मोड़ लिया है- (करवट ली है) विनाश के लक्षण प्रकट हो रहे है। अब-मार्ग कुछ पृथक होगा- दरारें पड़ेंगी- अच्छा समय-पर्याप्त- विनाश के उपरान्त ही आएगा। मुझे सूचित किया गया कि बिना किंचित अवकाश के समय-समय पर मुझे कार्य दिया जाता रहेगा-मैं जिसे लोगों ही योग्यता अनुसार उन्हें पुनः अवंटित कर सकता हू। मुझे यह भी सूचित किया गया कि मुझे एक महान शक्ति प्रदान की गई है जिसे मैं केवल ईश्वरीय कार्य के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं उपयोग कर सकता जब तक कि विशिष्टतया ऐसा करने के लिए आदेशित न किया जाए।

२६-१-४७ श्रीमती- अमुक- को मिशन में अनुशासन बनाए रखने के लिए- औपचारिक अनुमति का प्राविधान किया गया। उन्हे अपना कार्य कल २७-१-४७ से प्रारम्भ करने हेतु सलाह दी गई- यह पूज्य लाला महाराज जी का जन्म दिन है।

२७-१-४७ मिशन की ओर से लाला जी का जन्म दिन मनाया गया।

३१-१-४७ पूज्य लाला जी ने सृष्टि रचना के सिद्धान्त की व्याख्या की- पहले-कारण बनाया। तदनुसार व्यक्तीकरण निमित परिस्थितियों का निर्माण हुआ इसमें कृतकार्य से-कारण में संस्कार बने। समय आया- और देह (शरीर) निर्माण हुआ- (कारण से कारण शरीर) अब वह वस्तु जो इस (कारण) शरीर से निर्मित कारण रूप में रही- जब तक शरीर रहा। इससे भी संस्कार निर्माण हुआ और कारण और कार्य (परिणाम) की (अनवरत) श्रंखला चलती रही- हमें नहीं- मालूम कि कितने कारण शरीरों का हमनें निर्माण किया। मूलकारण- से ही यह अनवरत श्रखंला चली। इस प्रकार- यही वह मूल विचार है- जो सर्जना और उसके स्थूल रूपों में प्रकट होने का कारण हैं-यह वही शक्ति हैं जिसके प्रभाव निष्फल नहीं जाते-सभी तत्व जिनसे- विभिन्न शरीरों का निर्माण हुआ इसमें विद्यमान थे यदि इन्हें पांच विभागों में बाट दें, तो प्रत्येक में वह शक्ति विद्यमान मिलेगी जो सृष्टि रचना के आरम्भ के लिए उत्तरदायी थी। प्रत्येक विभाग की अपनी विशिष्टि है। फिर भी प्रत्येक भाग में समग्र शक्ति सन्निहित थी। वह भाग जो किसी शक्ति विशेष के लिए- विशिष्टथा उसने अन्य चार विभागों से सहयोग करके कार्य किया। वस्तुतः उस विशिष्टताने अन्य सभी पर सर्वोपरि स्थान प्राप्त किया। अब इन विभागों के पुनः पांच अनुभाग हुए-और तत्व पच्चीस बन गए। यह पिण्ड का यौगिक सार है। इसका (कारण) सारभाव सूक्ष्म शरीर में पाया जाता हैं और इसका कारण और आगे कारण में-संक्षेपतः यह वस्तु- (कारण) सूक्ष्म और सूक्ष्मतर होता हुआ अन्ततः सूक्ष्यतम होताहै और मूल (केन्द्र) में लय हो जाता है।

१-२-४७ हनुमान जी ने आत्मिक सम्पर्क किया और लंका तथा स्वयं के विषय में कुछ बात बताई- "मेरे कोई पूँछ नहीं थी इस लिए इस पर कुछ लपेटे जाने का प्रश्न ही नहीं होता। मेरी इच्छा शक्ति नितान्त शक्तिशाली थी मैंने लंका को उस सागर की गैसीय शक्ति से जलाया था जिसका प्रतिशोध रावण के पास नहीं था। यह गैस लंका के परितः बहुलतया उपलब्ध है। मैंने अपनी इच्छा शक्ति उसे बाहर से खींचकर लंका की ओर मोड़ उसको सम्प्रवाहित कर दिया - क्या मूर्खतापूर्ण उक्ति है कि लंका सोने की नगरी थी। इस सबका आशय इतना ही हो सकता है कि उसके समान सुन्दर नगर उस समय नहीं था।,,

१४-२-४७ योगिराज शंकर जी ने निम्न लिखित आलेख दिया — मैंने यौगिक शक्ति से अपने शरीर का अनेकों बार पुनर्युवाकरण किया। मैं पर्याप्त लम्बी अवधि तक रहा। मैं जब चाहता था अपनी यौगिक शक्ति से युवा हो जाता था। कैलास मेरा निवास था। मैं वहाँ रहता था और योगाभ्यास करता था अनेकों महान ऋषि गण साधना के सन्दर्भ रूप में मुझसे स्पष्टीकरण आदि लिया करते थे।
रावण मेरा शिष्य था उसने शक्ति अर्जित की और उसका दुरुपयोग किया। उसकी (विवेक शक्ति) बुद्धि उलट गयी। पंचाग्नि विद्या की शक्तियां उसमें थीं। किन्तु मुझे पारवती के पति के रूप में पूजा जाता है- यह भ्रामक है मैं सारे जीवन ब्रम्हचारी/ क्वाँरा (अविवाहित) रहा, लोगों के मस्तिक ही उलटे हो गये कितन भद्दे रूप में मेरी पूजा की जाती है केवल मूढ़ लोगों ने ही मेरी इस रीति से मेरी पूजा शुरू कर दी।

१६-२-४७ शंकर जी के आलेख के अनुक्रम में माँ पार्वती जी ने निम्नलिखित आलेख दिया- कि मैं एक राजकुमारी थी योगिराज शंकर जी से मेरे विवाह की गाथा भ्रामक है-मैं-पतिव्रता स्त्री थी -मैं-उसी स्वभाव का पति चाहती थी अतः अपने हृदय (मन) में उसे खोजा मेरे भावी पति का स्वरूप प्रत्यक्ष हुआ— वह दक्षिण (भारत) का राजकुमार था वह मुझसे विवाह नहीं करना चाहता था मैंने उसके सदगुणों के विषय में सुना वह एक बड़े भू भाग जो उन्हें सेवा के बदले दिया गया था, के स्वामी थे मैंने उनसे अत्यधिक प्रेम किया और प्राप्ति हेतु तपस्या करने लगी मैंने ईश्वर से प्रार्थना की। अन्ततः उसका हृदय मेरी ओर मुड़ा और हमारा विवाह हो गया। हमने अपने जीवन में कई वर्ष प्रसन्नता पूर्वक व्यतीत किए जब वह इस संसार से विदा हुए उनकी चिता के साथ जल कर मैं सती हो गई। जो मेरे हाथ काट काट कर फेंकने की कहानी है, वह भ्रामक है - दक्ष वास्तव में प्रजापति था उनका यज्ञ बलिदान निश्चय ही नष्ट किया गया लेकिन इस रूप से नहीं ऐसी बातें उस समय के राजा के लिए- तत्कालीन संस्कृति के विपरीत थी।

१०-३-४७ कबीर साहब ने बल दिया कि शीघ्रातिशीघ्र मुझे बनारस जाकर-स्थिति को व्यवस्थित करना है। मुझे उनके शिष्यों से उनका सम्बन्ध भंग कर देने को आदेश मिले। चैतन्य महा प्रभु एवम् अन्य विभिन्न पंथों के संस्थापकों ने भी ऐसा ही कहां- पूज्यलाला जी ने स्पष्ट किया कि सम्बन्ध विच्छेद कर लेने का आशय यह कदापि नहीं कि प्रणाली (पद्धति) ही समाप्त हो जाय। इसका आशय यही है कि मैं उनके लिए कार्य करना- आरम्भ कर दूं।

३१-३-४७ पिछले कई दिनों से एक धूसर (अस्पष्ट) चित्र मेरे दृश्य पटल पर आता रहा है-- लाला जी ने कहा कि यह केन्द्र का है-- और केन्द्रीय क्षेत्र का है। २३ वृत्त दिखे- लाला जी ने कहा-- पहला वृत्त सामान्य लोगों के लिए है-- अर्थात प्रशिक्षण पहले वृत्त से आरम्भ होना चाहिए-- इसी वृत्त में अनेकों अवस्थाएं पार हो जाती हैं। दूसरे वृत तक बहुत ही कम लोग पहुंचते हैं शायद ही कभी कोई तीसरे तक पहुचा हो ?- आगे क्या कहा जाय ?

पहले वृत्त में ही ऐन्द्रिकता समाप्त हो जाती है - जिस- हेतु अभ्यास साधना के अनेकों वर्ष लग जाते हैं। इस वृत्त का एक-- बिन्दु (कण) मात्र- ही पिण्ड क्षेत्र है। भगवान कृष्ण ने अपने विराट रूप (शरीर) को इसी पहले वृत्त में ही अर्जुन को प्रत्यक्ष कराया था।

२-६-४७ बिन्दु 'ब' बी का अन्वेषण हुआ। यह मन का अपने निम्नतम स्तर पर आसन है-- यदि इस पर कोई ध्यान करें-- तो ऐन्द्रिकताओं से उसे मुक्ति मिल जायेगी लाला जी ने इस आविष्कार की सराहना की-- उन्होंने कहा- यह अच्छी चीज है- क्यों न अनेकों वर्ष का परिश्रम बचाया जाए-- हृदय के बिन्दु से आरम्भ करना आध्यात्म्य प्रशिक्षण के लिए वास्तव में एक नूतन प्रणाली है-- केवल हृदय पर प्रार्थाहुति देनी चाहिए और इसी से सभी बिन्दु अन्तर्प्रकाशित हो जाएगें अथवा हृदय को एक नियत स्थिति तक ले आने के बाद एक-एक कर इनबिन्दुओं को किया जाए।

२१-४-४७ सृष्टि रचना के लिए स्थूल तत्व कहां से मिलता है -- जब कि यह कहा जाता है कि सप्तप्रलय सभी तत्व- अपने कारण सहित महा प्रलय के समय नष्ट हो जाते हैं। एक से अनेक होने के विचार का स्पन्दन (ओम) ही तत्व (उपादान) उत्पन्न करता है। अपने से पृथक दूसरे की संकल्पना स्थूल (तत्व) कारण उत्पन्न करती है।

२७-४-४७ अमुक - के मूलाधार चक्र के अनावरण हेतु प्रार्थाहुति दी गयी हमारी पद्धति में यह अंतिम अनावरणीय बिन्दु है - चक्र के अन्तर्प्रकाशन में तीन दिन का समय लग सकता है सावधानी यह रखनी चाहिए कि हल्का (सुपाच्य) भोजन किया जाय और मुझसे बहुधा सम्पर्क किया जाय।

३०-४-४७ यह नितान्त प्रसन्नतापरक बात है कि अमुक श्री- का मूलाधार चक्र समग्रत: अन्तर्जागरित हो गया और दूसरा चक्र ग्रहण कर लिया है यह भी कल तक अपनी मूल अवस्था में आ जायगा।

१–५-४७ (८.०० पी एम आज श्री - - का स्वाधिष्ठान चक्र अन्तर्जागरित कर दिया गया शक्ति में कोई कमी नहीं रही किन्तु प्राणाहुति के कुछ अन्य उपवेशन आवश्यक है। मैं नहीं समझता कि उसके लिए पूजा अनिवार्य है। जब यह पूजा करने की इच्छा करे-कर सकते हैं वास्तव में दिव्य आज्ञाओं का पालन करना ही उनके लिए पूजा है -

यदि हमारे सत्संगियों में से कुछ ऐसे लोग स्वयं को तत्पर कर सके और एक जुट होकर कार्य कर सकें तो मिशन का विकसित होना निश्चित है। उसकी रीढ़ की हड्डी में कुछ शक्ति जागरित करनी है। सहज मार्ग प्रशिक्षण पद्धति में निम्न चक्रों को स्पर्शित नहीं किया जाता। - निम्न चक्रों का कार्यभार उच्चस्थ चक्र ग्रहण कर लेते हैं जो केवल कुछ विशेष प्रसंगों में ही जागरित किए जाते हैं।

२६-५-४७ एक विचार है जो सामान्यतया चिल्लाने वाले लोग रखते हैं। वे प्राप्त कर्ता की क्षमता को ध्यान में नरखते अध्यात्मिकता सिखाते हैं क्योंकि शिष्य गहनतमस में आवृत होता है वे ईश्वरीय प्रभा का समावेश करना आरम्भ कर देते हैं। शिष्य निस्संदेह प्रदत्त शक्ति से कुछ सुथरता है किन्तु पूर्वनिहित तमस भी तदनुसार विकसित होने लगता है।

यदि तुम किसी वस्तु में शक्ति दोगे तो इसके अपने तत्व भी विकसित होंगे। और यदि अभ्यास प्रणाली प्रचलित रहती है तो अन्धकार (तमस) भी बढ़ते-बढ़ते स्थूल तम हो जाता है। इसके विरुद्ध यदि सही विधि अपनाई जाती है और पहले कालिमा -कलुष (तमस) दूर हो जाते हैं तो नितान्त श्रेयस्कर परिणाम होंगे।

३०-६-४७ पूज्य लाला जी ने- आगामी पीढ़ी के लिए निम्नलिखित आलेख दिया। जब तक योग्यता क्षमता उपलब्ध न हो किसी की उच्चस्तरीय पहुंच नहीं प्रदान करना चाहिए। यदि किसी को तुम उच्च स्थिति देना चाहते हो तो उस पर कार्य करो-- और उससे कार्य ग्रहण करो। केवल दो ही मार्ग (उपाय) है। या तो प्रशिक्षक (गुरू) के हाथों सौप दिया जाए जैसे कि अन्तिम संस्कार हेतु- नहलाने वाने के हाथों में मुर्दा-- अथवा कि वह स्वम् परिश्रम करें-- और एतदर्थ योग्यता उपलब्ध करें। दूसरी प्रकार के लोग उपलब्ध है किन्तु-- पहली श्रेणी के लोग कम हैं। जो पहली विधि का अनुसरण करते है उन्हें- वास्तम में कुछ भी करना नहीं पड़ता लेकिन उन्हें गुरू के समादेश पालन करने में- छूट (विकल्प) नहीं-- आज्ञा पालन प्रत्येक परिस्थिति के अनिवार्य है। विशेष तया-- अवश्यम्भ में- कार्य सर्वोच्च- आज्ञानुसार

होते है इसका आशय यह है कि जिसे ईश्वरीय (दिव्य) समादेश प्राप्त होते है उसे उन्हें पालन ही करना होता है ।

२७-७-१९४७ लाला जी ने निम्नलिखित निर्देश दिए जो कुछ नियत है - घटित होगा ही - तुमने अत्यधिक उदारता पूर्वक कार्य किया- अतएव तुम अवि - ख्यात ही रहें - तुम्हारे स्पष्ट कथन से मुझे कष्ट हुआ और मुझे तुम्हारी सुरक्षा का भार अपने कंधो पर लेना पड़ा । तुम्हारे धैर्य एवम् सहिष्णुता ने मुझ पर इन शब्दों की छाप छोड़ी जो मैंने तुम्हारे सम्बन्ध में कहे तब क्या हुआ मैंने वह सब ले लिया । क्या तुमने परिणाम देखा ? अपने धैर्य के साथ बढ़ते रहो । अन्तत: किसी को दुर्भाग्य का सामना करना पड़ेगा । इतना सब हो चुका है फिर भी तुम उनके कल्याण के लिए व्यग्र हो । एक सीमा के बाहर संस्थाध्यक्ष को नरमी नही बरतना चाहिए कुछ प्रसगों में उसे दृढ़ होना चाहिए , केवल तभी सफलता सम्भव है । आगामी भविष्य में ऐसा कोई भी नहीं होने जा रहा जिसमें इतने अधिक सन्तों ने लय अवस्था प्राप्त की हो लेकिन मैं क्या कहूं । इस स्थिति में आने से पूर्व तुमने सभी कुछ समाप्त कर दिया इसकी उपलब्धि में तुम्हारी शारीरिक अशक्तता ने अग्रसरणीय सहायता की । शक्ति के लिए ऊष्मा एवम् उत्ताप आवश्यक है मैंने इसे सूर्य की ऊष्मा से संज्ञा दी है । तुमने उसे भी शीतल कर दिया । इतनी विपुल शक्ति जिसके पास होती वह धरती पलट देता । अब करना क्या है कि वे सभी जो मिशन में अभिरुचि रखते हैं ।- इससे- सहसम्बद्ध हो जाए- (सम्पृक्त हो जाए) और इसे सर्वोपरि कर्तव्य समझे - व्यक्तियों को मोड़ने/सुधारने में समय लगता है-जब चक्र गतिशील होगा तो रथ तो अग्रसर होगा ही निसंदेह पहियों चक्रों को तेल डालना है- एतदर्थ निश्चय ही कुछ लोग मिलेगें ।

१८-८-४७ स्वामी वि० मैं इस कार्य की तुम्हें अपने हाथ में लेने की सलाह [सहमति] देता हूं । और अबसे (विघटन) विनाश का कार्य भी पूरा करा दो जब तक कतिपय तत्वों का समग्रत विनाश नही कर देते तब तक तुम संसार का परिवर्तन नही कर सकते- विश्व की समस्या तुम्हारी समस्या है और तुम्हें नही मालूम कि आगामी भविष्य में तुम क्या - क्राँति करोगे । इसके बाद तुम्हें योरोप का कार्य दिया जाएगा लेकिन जो अन्त में योरोप को प्राप्त होना है उस सौभाग्य से पहले भारत को मिलने दिया जाए-- आधार शिला सदैव कंकालों पर निर्मित होती है-- जो विशिष्ट- शक्तियाँ तुम्हें प्रदान की गई है उनका उपयोग विशेष प्रकरणों में विनाश पूर्ण करने के लिए करना है लेकिन उस शक्तिशाली अस्त्र को जब तक उपयोग करने हेतु आदेशित न किया जाए तुम्हें प्रयोग नही करना चाहिए । कराची की तुम्हारी यात्र कुछ समय के लिए स्थगित कर दी गई है- तुम्हारी गति मय दंडिका सर्वत्र क्रियाशील रहेगी ।

भारत में सांतिक परिवर्तन आवश्यक है–हमें- उतार चढ़ाव (व्यवधान) का सामना करना है–अगस्त्य मुनि पहले से ही परिवर्तन हेतु निरत है- आगे आवधानी रखनी चाहिए और आदेशपालन में विलम्ब नहीं होना चाहिए। विशेष ध्यान की अपेक्षा है। (२३-८-४७ से पंजाब का कार्य बन्द कर दिया गया गया)

२३–८–४७ स्वा० वि० मैं चाहता हूं कि मिशन की गतिविधियां कार्य प्रणाली सहज रहें तुम सबको एकजुट होकर सबकी भलाई के लिए कार्य करना जाहिए। एक रस्से के सहारे रहिए भविष्य तुम्ही पर निर्भर है।

२४-८-४७ स्वा० वि० भीषण ज्वाला मुखी विस्फोट के कारण आए भूचाल में दक्षिणी पठारी भाग पहले उभर कर आया। जल से बाहर निकलने वाली संसार की यह पहली चीज थी। दर्शन-- दक्षिणी पठार से ही आरम्भ हुआ-- पृथ्वी का दूसरा प्राचीन भाग मिश्र है। योरोप के निकट पुनः किसी ज्वाला मुखी विस्फोट की सम्भावना है-- कुछ भूमि जलमग्न हो जाएगी।

२२-११-४७ लाला जी ने नारद की उपलब्धियों के सम्बन्ध में रहस्योद्घाटन किया यद्यपि कि वे भक्ति के अवतार माने जाते रहे– लेकिन वह आध्यात्मिक सीढ़ी के प्रथम व द्वितीय स्तर-- (डंडे) तक थे जो कि हृदय क्षेत्र के निम्नस्थ भाग से थोड़ा ही ऊपर (उच्चस्थ) है। स्वा० वि० ने मेरी लिखित पुस्तकों की सराहना की और कहा कि सहज मार्ग की सर्वोत्तम आख्या– इनमें प्रस्तुत (सन्निहित) की गई है।

८–१२–४७ (रोगशय्या पर) स्वा० वि०-- संसार में में बहुत सी ऐसी वस्तुएं हैं जिनसे लोग चिन्तित रहते है- और उनसे वे इस प्रकार जुड़ी जाते है कि जैसे नदी या तालाब में तैरते चलने वाली लकड़ी–या छोटी नाव यह वस्तुएं उन्हें इतनी मनोहर प्रतीत होती है कि वे वास्तविकता की ओर अग्रसर होने का अवकाश ही नहीं पाते क्योंकि यह उतनी नहीं चमक रही है कि जैसे अन्य वस्तुएं उनके समक्ष हैं। उनसे उद्भूत अनेकों क्रिया प्रवृत्तियां–हृदय में अभाव, कष्ट, दुख के परिणामी प्रभाव में प्रगट होती हैं। इनसे एक बड़ी (विशाल) चट्टान बन जाती है–जिसकी सतहें इतनी दृढ़ हो जाती है कि उन पर ही चलना होता रहता है। विभिन्न आवरण विभिन्न जीवनों के परिणामी प्रभाव है जो– सृष्टि के आरम्भ से हुई– अपनी कष्ट पूर्ण– यातना मय– यात्रा के उपरान्त भी लोग इसके बाहर जाना नहीं चाहते और– इससे श्रेयस्कर वातावरण में गतिशील नहीं होना चाहते– केवल कतिपयों एवम् कष्ट ही ऐसे पाठ पढ़ा सकते हैं। भोग से इन आवरणों को क्षीण कर दिया जाता है तब मानव सर्व शक्तिमान (परमात्मा) के सम्बन्ध में सोचना आरम्भ करता है- जब कुछ सतहों– आवरणों- का अधिकांश भाग समाप्त हो जाता है– तब उसकी अभिरुचियां उच्चतरीय वस्तुओं की ओर उन्मुख होती हैं।

यह केवल तभी सम्भव हो सकता है जब किसी को लाला जी के समान सक्षम गुरू मिल जाय। तब परिणाम शीघ्र दृष्टिगोचर होंगे। स्थूल सतहें (आवरण) गलने लगते हैं—और वास्तविक विकास आरम्भ हो जाता है— कुछ सूक्ष्म आवरण—मुक्ति की स्थिति तक रहते हैं ।

लेकिन इसके उपरान्त संघर्ष की कठिनाई बढ़ जाती है— अब उसमें दूसरों के आवरण आकर्षित होने लगते हैं। जो भोग के रूप में आते हैं। यहां गुरू का प्रकाश बहुधा आवरणों के— उसमें अन्तर्प्रविष्ट होने से अभ्यासी की अभिरक्षा करता है। फिर भी प्रकृति ऐसे व्यक्ति से इस प्रकार का कार्य लेती रहती है— क्योंकि प्रकृति के नियम अटल हैं इस स्थिति में पहुंचे बिना कोई इसकी अनुभूति (साक्षात्कार) नहीं कर सकता।

२४-१२-४७ पूज्य लाला जी:- लोग सोचते हैं कि मैं बहुत (दयालु) उदार हूं— लेकिन दया से मैं न्याय के सपाट बिछावन नहीं हो सकता— मैं तुम्हारी बीमारी के तुम्हारा उपचार करता रहा—जो तुम्हें न्याय के प्रतिफल में दण्ड स्वरूप मिली तुम्हारा उपचार करना दया का इंगित था। इसका यह आशय नहीं, मुझमें प्रेम कमी थी। दण्ड इस लिए आवश्यक था कि अपनी इच्छा से जो धूलि (मल) इकट्ठा कर लिया था, वह वह दूर हो जाँय। मैं चाहता हूं कि सभी तुम्हारा आज्ञापालन करें। मेरा उद्देश्य इसमें अन्तर्हित होगा यदि तुम दूसरों को अपने पर अधिपत्य प्रदान करने देते हो— वस्तुतः तुम्हारी इस विनम्रता ने तुम्हें लाभान्वित किया है ।

तुमने हर एक को महान सजा यद्यपि यह अध्यात्मिकता में तुमसे नितान्त नीचे था। यह आवश्यक था किन्तु अब नहीं है। मैंने अपने पहले आदेशों में से एक में कहा है कि मेरे आध्यात्मिक उत्तराधिकारी एक दो को छोड़कर सभी अनुपयोगी ही रहे(Good for nothing)लोगों का विश्वास किए-कि वे उस व्यक्ति पर अधिपत्य रखना चाहते हैं जिन्हें मैंने स्वीकार किया है यह सब तुम्हारे प्रेम के कारण है- और तुम्हारे अपने अध्यात्मिक बन्धुओं के प्रति लगाव के कारण है। यदि तुम्हें अपने हृदय में कोई प्रेम या लगाव न होता तो यह मार (शैतानी धमकी) गाली और अपवाद (दूसरों की ओर से) मुझे भी निराश नहीं कर सकता। वस्तु किसी भी लगाव को रख सकता है उसे प्रकृति के आदेश मानने ही चाहिए, वे चाहे जो भी हों।

२५--१२--४७ लाला जी एक व्यक्ति मानव जिसने पूर्णतः अपने को (प्रधान) प्रकृति पर निछावर कर रखा है उसकी देख-रेख प्रकृति ही करेगी, दूसरे शब्दों

में उस शक्ति की दृष्टि उस पर स्थिर होने लगती है स्विच-कुन्जी की वही कहानी यहाँ भी लागू होती है जैसे श्रंखला चलती है जंजीर खटकती है कि ऊपर से आवाज आयी--

ऐसा प्रेम रखने वाले लोग नितान्त नगण्य है और यह नितान्त कठिन भी है इस लिए हम गुरू की सहायता लेते हैं अन्त में यही चीज प्रत्याहरण (Retreat) की प्रणाली का अनुसरण करने से प्राप्त होती है--

कुछ लोग अन्त तक गुरू की निर्भरता नहीं छोड़ते- निश्चय ही उनकी इच्छाशक्ति क्षीण ही होती है किन्तु देह त्याग के उपरान्त दोनों की अवस्था (स्थिति) एक ही रहती है। २९-१२-४७ रात्रि में अभ्यासी की लगन क्यों नहीं बढ़ती है इस समस्या से मुझे चिन्ता है। इस पर लाला जी ने कहा- सच पूछिए कि आजकल योग्य सक्षम व्यक्ति विरले ही मिलते हैं उन्हें तत्पर किया जाना है कुछ को उनकी अन्त निहित योग्यता से कुछ को अपनी इच्छा शक्ति से। कभी-कभी ही तुम्हें इस योग्यता का व्यक्ति मिल सकता है कि जिसे उच्च स्तरीय प्रशिक्षण दिया सके-। ठीक है, यदि सम्भव हो तो -- हृदय बिन्दु से प्राणाहुति देते रहो - लगन स्वतः ही समय के अन्तराले में विकसित होगी।

—०—

१९४८

२–१–४८एक संगठन सदैव ही सुगठित होगा जब कुछ सिद्धान्तों एवम् नैतिक नियमों कापालनकिया जायेगा।यह नियमप्रत्येक क्रियाविधि में अपनानाचाहिए जैसे उठना-बैठना आदि और बन्धु तथ्य यह हैं कि जो वास्तविक सिद्धान्तों को अनवरत पालन करता है स्वतः ही यह स्थिति/अवस्था प्राप्त कर लेता है । शिष्टता सर्वत्र आवश्यक है, अत–एव तुम्हें 'कतिपय' बातें स्वयं प्रतिपादित करनी चाहिये और इसे किसी को सौंप दीजिये जो दूसरों को इस सम्बन्ध में समय-समय पर सम्मति देता रहे । शिष्टाचार के सभी सन्दर्भ गुरू पर निर्भर हैं ।

एक दूसरी चीज यह है कि अपने सहकारी साधक को अपने भाई के रूप में समझना चाहिये और ऐसा ही व्यवहार उसके प्रति करना चाहिये । उसकी कठि–नाइयों का भाग बंटाना और यथानुरूप सर्वोत्तम सेवा करना चाहिये । जहां तक सम्भव हो दुखी नहीं रहना चाहिये । यदि कष्ट में कोई हो ही, तो उसे इसको गुरू की इच्छा मानना चाहिये और धैर्यपूर्वक धन्यवाद देना चाहिये । इस प्रकार उसे शान्ति मिलेगी । भद्दी–गंदी बातें सुनना पापपूर्ण है । यदि ऐसी बातें जो सुनने योग्य न हो, कहीं पूजा सभा में चल रही हो, तो उस स्थान को छोड़ देना अच्छा है ।

गुरू को सबसे समान व्यवहार करना चाहिये, उनका प्रेम बिना किंचित भेद के सब पर प्रवाहित रहना चाहिये । उसे किसी भांति भी अपने को अभ्यासियों से अच्छा/श्रेष्ठ नहीं समझना चाहिये । प्रेम ही केवल सब कुछ सम्पन्न कराता है । यह वह चीज है जो स्वतः संगठित हो जायेगी और सभी चीजें इस प्रेम की डोर से ही सम्बद्ध की जा सकती है ।

१६–१–४८ स्वा० वि०–गान्धी जी उपवास पर है? किसलिये ? भारत की दशा सन्तुलन में लाने के लिये वह अपना कर्य कर रहे हैं और तुम अपना करते रहो ।

१७–१–४८ भगवान कृष्ण और ल ला जी ने सहज मार्ग के प्रकाश में राजयोग के दिव्यदर्शन की पांडुलिपि में कतिपय सुधार करने को सलाह दी ।

३०–१–४८ ७.१५ बजे शाम को गांधी जी की आत्मा को शांति प्रदान करने हेतु ध्यान करने का आदेश मिला ।

३१–१–४८ स्वा०वि०–ईश्वरेच्छा का पालन होना ही है । इसे कोई टाल नहीं सकता । तुम्हें, संसार में क्या हो रहा है, इसकी चिन्ता नहीं करनी है । अपने नियत कर्तव्य करो । तुम्हें घटनाओं की चिन्ता नहीं करनी है ।

बच्चों, क्या तुम गान्धी जी की मृत्यु के प्रति दुखी हो । स्वाभाविकतया तुम्हें क्षुब्ध होना भी चाहिये क्योंकि वह एक महान व्यक्ति थे एक ऐसे राजनीतिज्ञ कि उनके कार्य को ससार याद रखेगा । भविष्य में ऐसा महान राजनीतिज्ञ भारत नहीं देख पायेगा । वह हृदय से भले और उनका इतिहास (इतिवृत्त) श्रेयष्कर रहा । उन्होंने भली प्रकार अपना कार्य किया, लेकिन जब उनकी कोई आवश्यकता नहीं थी उन्हें वापिस बुला लिया गया । अथवा कि तुम लोगों के मध्य से उन्हें उठा लिया गया । महान आत्माएं तभी जन्म लेती है जब वातावरण के फैले हुये अन्धकार को

दूरकर समाप्त करना होता है। जब कभी ऐसा व्यक्ति उत्पन्न होता है वह अवतार की स्थिति का आनन्द उपभोग करता है। और सभी ऋषियों की शक्ति उसमें उसके हाथ मजबूत रखने के लिये बनी रहती है।

२–२–४८ ठीक है, भारत स्वतन्त्र हो गया लेकिन इससे खराब अब होना है कि स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर जिसकी भेंट चढ़नी है वह अभी होना है। कुछ तत्व समाप्त हो जायेंगे। शासन को अपनी दिशा बदलनी होगी।

८–२–४८ पूज्य लाला जी–मेरा आशय तुम्हारी प्रशंसा करने का नहीं। जैसी किसी की प्रसन्नता हो, उसे घटनाओं का आकलन करने दीजिये। वह ऐसा करने हेतु स्वतंत्र है। लोग अवतार के सम्बन्ध में अपरिचित संकेत प्रस्तुत करते हैं। वे सोचते हैं कि अवतार के निकट बैठकर और उससे प्राणाहुति पाकर वे अपने पाप कर्मों से मुक्त हो जायेंगे। निश्चय ही राम, और कृष्ण के अवतारों के समय यह सही (सत्य) था। जो कोई भी उनके पास गया पाप कर्मों से मुक्त हुआ। यह प्रत्येक अवतार के सम्बन्ध में है। लेकिन मित्र बन्धु! मुक्ति प्रदान करना कोई हंसी खेल। जिसे प्रकृति ने यह कार्य प्रदान किया है वही इसे कर सकता है। लेकिन फिर भी यह प्रकृति के नियम के विरुद्ध है कि पूर्व संस्कारों का भोग सम्पन्न किये बिना किसी को मुक्त कर दिया जाये। ऐसे लोग दुर्भ हैं जिनके पास यह शक्ति रही। अपने पूरे जीवन काल में मैं एक व्यक्ति ऐसा बना सका जो अकल्पनीय है। सभी को उसके समान बनना चाहिये। चैतन्य महाप्रभु–अनेकों ऋषियों ने परम शाश्वत स्थिति उपलब्ध की, अनेकों आग की ऊष्मा में झुलसते रहे। यद्यपि आग उनसे बहुत दूर थी फिर भी गरमाहट ने उन्हें भी सस्पर्श किया। अब तक ऐसा कोई नहीं हुआ जो इस परमशाश्वत स्थिति को अपने जीवनकाल में भौतिक शरीर से किसी को प्रदान कर सके।

लाला जी का चमत्कार वास्तव में प्रसंशनीय है।

३१–३–४८ पूज्य लाला जी ने पुस्तकों के छपने (प्रकाशन) के सम्बन्ध में कतिपय निर्देश दिये। उन्होंने मुझे विषय वस्तु के बाधा व्यवधान हटाने और पुनर्प्रकाशन करने की सलाह दी और कहाकि जब बातें पुरानी हो जाती हैं तो उनके छपने से कोई लाभ नहीं।

२–४–४८ ज्ञान शुद्धता है भक्ति जब अपनी मूल स्थिति में पहुंचती है तो ज्ञानोदय होता है। लेकिन जब मूल स्थिति से तुलना की जाती है तो भक्ति और ज्ञान वास्तविक नहीं हो सकते। इनसे वह चीज प्रथक है। लेकिन भक्ति से आरम्भ कर हम ज्ञान तक पहुंचते हैं और ज्ञान को अपनी मूल स्थिति में लाने पर वह चीज उपलब्ध होती है जो सर्वत: वास्तवत्ता है। यदि हम ज्ञान को पहले ही लेते हैं तो हम भक्ति से पराङ्मुख होंगे, इसके विपरीत यदि हम भक्ति से आरम्भ करें तो हम ज्ञान से विमुख रहेंगे। एक भक्त के लिये यह दोनों स्थितियां आवश्यक हैं। भक्ति को पहले लेना उसका भक्त होने का प्रमाण है। और ज्ञान का अभ्युदय हो जाना, इस पर उसके स्व मित्व

होने का प्रमाण है । यदि हम एक चीज लेते हैं तो दूसरी स्वत: ही प्राप्त हो जायेगी। जब हम यहां तक पहुंच जाते हैं तो हम उसके निकट पहुंचते हैं जिसका कि यह सार है

हम आगे बढ़ते हैं अब वास्तवत्ता के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं बचता ।

३–४–४८ आज ७.३० प्रात: के उपरान्त पंडित नेहरू के जीवन की रक्षा के लिये विचार स्वयमेव क्रियाशील हो गया ।

४–४–४८ मैं प्रत्येक को सर्वोच्च आध्यात्मिक प्रशिक्षण देना चाहता हूं किन्तु लोग अपने जगत जाल से बाहर नहीं आते, उन्हें कम से कम इस जगतजाल से दूर होने की इच्छा तो करनी ही चाहिये यह बिल्कुल भी कठिन नहीं है । उन्हें केवल सांसारिक कष्टों से अपनी दृष्टि हटा लेनी है और इस प्रकार उसे स्थिर कर लेना है । इससे सरल अन्य कुछ भी नहीं क्योंकि यहां प्रत्येक चीज गुरू पर निर्भर है । केवल एक ही चीज है कि अभ्यासी को विश्वास रखना चाहिये और एतदर्थ गहन निष्ठा एवम् लगन होनी चाहिये। उसे पूर्णरीत्या गुरू पर निर्भर रहने का प्रयास करना चाहिए । जब लोग धन की इच्छा करते हैं तो धनिकों से मित्रता करते हैं । उन धनिकों को प्रसन्न रखने का प्रत्येक सम्भव उपाय किया जाता है और जब वे प्रसन्न हो जाते हैं तो लोग इस सीमा तक उनकी सेवा करने को तत्पर हो जाते हैं कि इनकी मित्रता घनिष्ठ हो जाती है और उनकी आवश्यकता पूर्ति हो जाती है ।

यदि हम यही बात (कार्य) ईश्वर के साथ करेंगे और उसे प्रसन्न रखेंगे तो यह सम्भव है कि उनकी कृपा का हम पर अवतरण हो जिसकी हम धनिकों से आशा नहीं कर सकते ।

७–४–४८ पूज्य लाला जी–मिश्र को लेना है यह एक अति प्राचीन स्थान है इसे भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिये ।

१३–४–४८ लखीमपुर पहुंचा । पूज्य लाला जी ने स्त्रियों के लाभ के लिये ध्यान की विधि प्रकट की । और मुझे इसको विवाहित/अविवाहित एवं विधवा सभी के लिये सामान्य बनाने का आदेश दिया । यह कहा गया कि उनमें शुचिता एवं शालीनता विकसित की जाये ।

२९–५–४८ कोई भी कष्ट से मुक्त नहीं, प्रत्येक कम या अधिक इससे प्रभावित है । यह एक सद्गुण है । भक्त भी इसका अपवाद नही होता । वास्तव में चुने हुये व्यक्ति का मन अभाव (कष्ट) में भी स्थिर रहता है जबकि सामान्य का मन क्षुब्ध हो उठता है । सामान्य/असामान्य मानव का यही अन्तर है ।

शुद्धत्व के लिये एवं सांसारिक जंजाल से मुक्त होने के लिये लोग जंगल जाते थे । हमारी प्रणाली में यह कष्ट अभाव ही तपस्या और त्याग है । घर पर ही रहिये और इन सबसे सामंजस्य रखिये । मैं सभी से असम्बद्ध हो रहा हूं दयनीय स्थिति यह है कि जिन्होंने मुझे विकसित किया वे आज तक मुझे समझ ही न पाये, ऐसे कष्ट सभी को अनुभव हुये, कोई सन्त इसका अपवाद नही रहा ।

९–६–४८ महात्मा बुद्ध जी– मूल स्थिति पर पहुंचने के लिये यह आवश्यक नही कि उससे प्रार्थना की जाय जो सृष्टि का मूल कारण है । हम अपने को सांसारिक बंधनों से विलग करते हैं । जिसके द्वारा हम निर्वाण के विन्दु तक पहुंचते है । मैं आपको आश्वस्त करता हूं कि निर्वाण प्राप्ति नितान्त सरल है– मैंने वास्तवत्ता के अतिरिक्त कभी अन्य कुछ अधिग्रहण नही किया । यदि ईश्वर का नाम लिये बिना ही हम ईश्वरीय दिव्य दशा उपलब्ध कर लेते हैं तो आप मुझे बताएं कि इसमें क्या हांनि है ? लोग मेरे पन्थ को धर्म मानते है–जो गलत है । यह पूर्णरीत्या विज्ञान है इस अनन्त के ही कारण हमारा निर्माण हुआ–हम इसी में लय हो जाएंगे ।

अच्छा सृष्टि से पूर्व विद्यमान वस्तु का नाम क्या था ? कौन बता सकता है? क्या तुम कह सकते हो कि उस समय इसका कोई नाम था ? यदि अब भी हम ऐसा होना मानते है–तो क्या इसका आशय वही नही है?असीम को नाम देना उसे सीमित करना है । पूज्य लालाजी:—यह ईश्वर पर निर्भर है कि वह अपनी कृपा जिस पर चाहे वरसाये हमारा ध्येय उस दशा तक पहुंचने का होना चाहिये । जितनी भी हम सफलता प्राप्त कर सके अच्छा और श्रेयष्कर है ।

२१–६–४८ हैदराबाद के मामले में मुझे सजग दृष्टि रखने के लिये आदेशित किया गया । "माया उस व्यक्ति की आंख द्वारा देखी जा सकती है जिसने इस पर स्वामित्व उपलब्ध कर लिया हो । यदि हम केन्द्र के साथ सम्बन्ध दृढ़ कर लेते हैं तो माया एक पृथक इकाई के रुप में परिलक्षित होने लगती है । वस्तुत: केन्द्र से नीचे सभी स्थितियाँ माया पोषित हैं—हम सब इसके तानोवानों में आवृत है–और केवल इसके द्वारा ही अग्रसरित है, यदि हम पूर्णरीत्या वास्तवत्ता में लय हो जाएं तो हम एक ऐसी स्थिति में पहुंचते हैं कि माया की अनुभूति नही होती । अब यह स्थिति हमारे अनुभव में नही आती क्योंकि हमारी दृष्टि इस पर स्थिर है । किसी वस्तु की अनुभूति न करने का आशय यह है कि हम उस दशा से ऊपर हैं । अब उस वस्तु से सामीत्यता उपलब्ध करने लगते हैं । जिससे कि यह माया प्रकट हुई है ।

२८–६–४८ अपने मन के कष्ट, अभाव (दुख) की ओर मुड़ जाने की प्रवृत्ति के कारण हम दुखी होते हैं इससे कोई प्रयोजन नही कि यह दुख/अभाव अपना है या किसी अन्य का । मन को संयत करने की:–विधियां

१—अपने गुरु के प्रति प्रेम का विकास करना चाहिये । प्रेम का मन पर पड़ने वाला प्रभाव शांतिदायी होगा ।

२—दूसरी विधि यह है कि अपना मन एवं शरीर अपने गुरु का समझना चाहिये ।

१४–७–१९४८ (महाप्रलय दृश्य दर्शन) स्था० वि० दृश्य में जो केन्द्र तुमने देखा वह वास्तविकता थी । और इसके परित: एक आभामय प्रकाश था । वृत्त के परित: अव्यवस्थित कण थे । उन्होंने सृष्टि रचना के समय अपनी मूल दशा खो दी उन सब को आपने परवर्ती वृत्त में देखा ।और अन्त:वर्ती वृत्त एक अर्थात् दूसरे विन्दु मात्र

था। आभामय प्रकाश प्रथम विक्षेप (प्रक्षेप) था इसमें तीन वृत्त हैं जो अन्ततः एक हो जाते हैं। यह कितना कुतूहलपूर्ण है कि एक नदी भर शक्ति ने इतना विशाल जगत निर्माण कर दिया।

१६–९–४८ पूज्य लालाजी, ब्रह्मरंन्ध्र एक बिन्दु है और यह अवतारों के लिये खोला (अनावृत्त किया) जा सकता है। जब दूसरे दिव्य जगत में प्रवेश करना–आवश्यक होता है, तब कोई यहां पहुंचता है। यह दशा सर्व सामान्य में अन्तर्जा–गरित नही की जाती। न तो इसका अर्थ समग्रता–ही है। इससे भी अधिक (आगे) कुछ है। एक समय में एक ही व्यक्तित्व ऐसा होता है जो दिव्य जगत में प्रवेश की सामर्थ्य रखता है। "आज तक किसी ने कपाल क्रिया के दर्शन के विषय में नही समझा। सीमा विचार की है। यहां इतनी (विपुल) आकर्षक शक्ति है कि ब्रह्मरन्ध्र तोड़ते क्षण ही यह उससे सहसम्बद्ध हो जाता है जैसे कि कोई सभी कुछ आहरित कर ले जाता है यह बात उनके लिये होती है जिनका ब्रह्मरन्ध्र देह त्याग के समय टूट जाता है।

२१–११–४८ जो कुछ भी मेरी दशा है वह उस सन्त की दशा के रहस्य (जादू) प्रत्यावर्तन है जिसने मुझे प्रेम किया। यह सब उसका ही विस्तार, अभिप्रसार है उसकी ही प्रतिभा उसकी ही विचार धारा उसकी ही योजना। मुझमें अब यह सिद्ध करने हेतु भी कुछ नही रहा कि यह सब कुछ उसका नही है। जादू से मेरा आशय इन्द्र–जाल नही अपितु मेरे गुरु की दिव्य शक्ति से और इसके परिणामी प्रभाव रूपान्तरण से है।

६–१२–४८ प्राकृतिक नियम कैसे बने ? सभी जानते हैं कि सृष्टि का आरम्भ है। वह आरम्भ ही प्रत्येक वस्तु का आदि है। उस समय क्या घटित हुआ (क्षोभ) स्पन्दन (तरंगायन) आरम्भ हुआ। संसार, जगत निर्मित हुये। और निवासी आवि–भूत हुए, जो सर्व प्रथम आया वह कुतूहल में था कि कहां आ गया ? जैसा कि होना चाहिये, वह वातावरण के कुतूहलमय व्यामोह में खो (वेसुध हो) गया। उसने सोचना आरम्भ किया, तब वह अपनी आवश्यकता के प्रति चिन्तित होने लगा। वह शुद्ध स्वरुप में अवतरित हुआ था और उसके साथ (पास) शक्ति भी थी। इसने उसके विचारों के पोषण सम्बर्द्धन में श्रंखला बद्ध रुप में कार्य किया जिसके परिणाम स्वरुप वे दिव्य रुपाकार जो उसके कार्य निमित्त आवश्यक थे, प्रकट हुये अब यदि हम कहे कि यह रुपाकार पूर्वतः वहाँ थे। तो यह इस भाव से त्रुटिपूर्ण होगा कि मूल रुपाकारों का मूल से प्रादुर्भाव हुआ, और क्रियाशील हो गये। शुचित्व, शुद्धता के उपरान्त जो वस्तु आई वह केवल मानव द्वारा ही विनिर्मित की गई क्योंकि शुद्धत्व के उपरान्त मानव अस्तित्व का प्राकट्य हुआ। यदि हम कहें कि शुचिता से यह रुपाकार बने तो भी यह त्रुटिपूर्ण होगा, जब शुद्धता में अन्य कोई समिश्रण नही है,

तो यह तीसरी वस्तु कहां से उपलब्ध हो सकती है।

शुद्धता से केवल शुद्धता ही उत्पन्न होती है। और परिणामी दशाएं जो भी इनका रुप हो केवल परार्थी वस्तु से ही सम्पन्न हो सकती है। अच्छा श्रीमानजी आपने उन वस्तुओं का निर्माण कुतूहल के क्षेत्र में किया। और शक्तियों को यह संसूचना मिली कि वे इस माध्यम से क्रियारत हों। दूसरे शब्दों में आपने एक आधार बनाया जैसा कि प्रकृति की शक्ति के क्रियान्वयन के लिये होना ही चाहिये था। आपने प्रकृति को अपनी आवश्यकतानुरुप वस्तुओं के लिये योगदान दिया जिससे कि इसकी (प्रकृति की) शक्ति अन्तर्प्रवाहित हो उठे। आपने एक धारा बना ली बहाव के लिये जो होनी ही चाहिये और तब उन वस्तुओं को अनिवार्यतः वहां विद्यमान होना ही हुआ। विस्तृत भाव में यह चीज समग्र सृष्टि में 'स्पन्दित' हो उठी और इसके द्वारा ऐसी अनेकों वस्तुएं, बातें, घटनाएं सम्पन्न हुई।

ऊर्जा एवं शक्ति समय समय पर इन वस्तुओं पदार्थों के सँश्लेषण एकत्रीकरण का कार्य करती रही। इस प्रकार उन्होंने एक सतह, धरातल भी बना लिये। और जिससे प्रत्येक वस्तुओं का आभास हो उठी और कार्य आरम्भ हो गया। आपने एक पिण्ड (घेरा) लिया जिससे कि ऊर्जा इसके बाहर न जा सके। और यह उनके कार्य हेतु केन्द्र स्थल हो गया। दूसरे शब्दों में इस वस्तु ने ऐसी दृढ़तापूर्वक स्थिरता प्राप्त कर ली कि वे समय समय पर यथानुरुप कार्यरत होने के लिये तत्पर रहते थे। संक्षेपतः वे उन कार्यों (बातों) को करने हेतु विवश थे। या कहिये कि वे स्वतः ही इसे सम्पन्न करने लगे। अब वे इसे बिना किये नहीं रह सकते थे। उन्हें उनके लिये यह विधि नियम (धारा) बन गया कि तब तक यह करते रहना चाहिये कि जब तक अपनी ओर से ही वह उसे छिन्न भिन्न न करदें, कि जिसे आपके शास्ता ने भेजा है।

आप हंसने खेलने लगे अब आप प्रत्येक अभिनय करने लगे, आपने प्रत्येक रुप बनाये, आपने ही प्रत्येक रंग चढ़ाये। तो अब आपका प्रत्येक वस्तु भिन्न प्रतीत होने लगी। आपमें प्रत्येक रंग ने पृथक पृथक कार्य करना आरम्भ कर दिया। प्रत्येक पथ स्वयं ही प्रदर्शित होने लगा। इस वृक्ष की जड़ें भी स्थापित हो गयी और घास भी उगने लगी। पतझर आया और बसन्त भी विभिन्न रूपाकार प्रकट होने लगे। किन्तु बन्धु वह एक शक्ति जो आपने आरम्भ में अर्जित की थी वह इसके भीतर ओझल हो गई। अब निस्संदेह यह सब बातें (वस्तुएं) घटित (प्रकट) होने लगी और आपने समझा हमारे मध्य एक महानुभाव है जिनके पास आवश्यकतानुरुप ऐसी व्यवस्था है। अब यह चीज जो विविधि प्रकार से घटित हो रही है, किसी ढांचे में आनी चाहिये। तब ढाँचे के सम्बन्ध में चिन्ता हुई, किसके लिये ? तुममें से एक के लिये। उसने सोचा कि यदि केवल इन्हीं की पुनरावृत्ति होती रहेगी, तो इस अभिनय का दूसरा ही रुप होगा, और हंसी भी ऐसी होगी कि जिसे रोना ही कहा

जा सकता है ।

और बन्धु जब यह घटित होना आरम्भ हुआ, विरोधी रुप प्रकट होने लगे । हंसने के साथ ही रोना दोनों शुरू हो गये प्रत्येक दूसरे रंग से मिलकर एक तीसरा ही रंग उत्पन्न हो गया । वे सब जब सम्मिश्रित हुए तो एक ढेर बन गया । केवल ईश्वर ही जानता है कि ऐसे कितने ढेर बने । उन्हें देखकर कोई भी आश्चर्य सम्भूत हो उठेगा । सम्भवत: यह संसार इन ही ढेरों से ही भरा पड़ा है । घास उगी, लम्बी और तीक्ष्ण हो गयी । दूसरे (विविधि) रूपों में भी प्रकट हुई । कुछ में तीक्ष्णता इतनी अधिक बढ़ गयी कि कुछ बन्धुओं के वस्त्रों के छोर उनमें फंस/अटक कर फटने लगे, और कुछ की उगलियाँ कांटों में विध गई ।

तब माली चिन्तित होने लगा कि यदि यह चीजें ऐसे ही रहने दी गईं तो वे दर्शकों को कष्ट कर होंगी । तब उसने कैंची, खुर्पी से कार्य लेना आरम्भ कर दिया (तब उसने काट छांट आरम्भ कर दी) कष्ट कर चीजें काटी जाने लगी ।

शनै: शनै: झाड़झंखार/जंगली झाड़ियों जो बगीचे में उगी थीं, साफ हो गई । किन्तु वे पुन: उग आईं, तो एक विचार आया कि इन्हें समूल विनष्ट कर दिया जाय तब उसने इन्हें खुर्पी से समूल खोदना आरम्भ कर दिया । और अनेकों पूर्णरीत्या समूलत: नष्ट हो गयी । लेकिन वह क्या देखता है? आकाश से वृष्टि हुई और कौन जाने कुछ न कुछ उच्छिष्ट मिट्टी में रह गया, कहीं किसी रुप में इसलिये बेचारा परिश्रम करता रहा, और प्रत्येक चीज साफ करता रहा और धरातल समतल करता रहा ।

प्रत्येक वृद्धि के उपरान्त यही प्रणाली प्रचलित रही अब वस्तुए एवं रंग, अभिप्राय एवं हास्य और ढेर (संग्रह) जो बनाये थे इतने गहरे प्रविष्ट हो गये, कि वे स्थायी रुप में सन्निविष्ट हो गये । आपने इनकी सूचना उस शून्य से सम्बन्धित कर दी जिसे आपके महानतम सृष्टा ने आश्चर्य (कुतूहल) के आवर्त (छत) में ढंक दिया था । इनके संयोग में आप भी सहसम्बद्ध होने लगे आपने भी अपनी चीज उसमें मिलाई आपने मिश्रित कणों को शुद्ध चीज में रखा और इस प्रकार अशुद्ध कण इसके निकट आने लगे। अब आप मुझे बताए कि यदि माली उन्हें काटता नही है तो क्या वे हर किसी को आहत नही करेंगी ? और उन्हें रुधिर से सराबोर नही कर देंगी ?

इस नियम के अनुसार कि शुद्धता से शुद्धता ही निर्मित होती है और भेड़िये के भेड़िया ही होता है चीता (शेर) नही । उसने काट छाँट, जोड़ तोड़ आरम्भ कर दी जैसे कि बाग के माली का सेवक करता है । जो अपने स्वामी (शास्ता) का सेवक था । उसकी खुर्पी, फावड़ा, चलने लगा । जिसके परिणाम में जड़ें हिल गयीं । जब उसकी ऊर्जा (शक्ति) ने कलियों पर उसके विचार के कुठार से कार्य किया तो उसने इसे प्रथक करने की पद्धति इस प्रकार सोची (कल्पना की) जा सकती है ।

जा सकता है ।

और बन्धु जब यह घटित होना आरम्भ हुआ, विरोधी रुप प्रकट होने लगे । हंसने के साथ ही रोना दोनों शुरू हो गये प्रत्येक दूसरे रंग से मिलकर एक तीसरा ही रंग उत्पन्न हो गया । वे सब जब सम्मिश्रित हुए तो एक ढेर बन गया । केवल ईश्वर ही जानता है कि ऐसे कितने ढेर बने । उन्हें देखकर कोई भी आश्चर्य सम्भूत हो उठेगा । सम्भवत: यह संसार इन ही ढेरों से ही भरा पड़ा है । घास उगी, लम्बी और तीक्ष्ण हो गयी । दूसरे (विविधि) रूपों में भी प्रकट हुई । कुछ में तीक्ष्णता इतनी अधिक बढ़ गयी कि कुछ बन्धुओं के वस्त्रों के छोर उनमें फंस/अटक कर फटने लगे, और कुछ की उगलियाँ कांटों में विध गई ।

तब माली चिन्तित होने लगा कि यदि यह चीजें ऐसे ही रहने दी गईं तो वे दर्शकों को कष्ट कर होंगी । तब उसने कैंची, खुर्पी से कार्य लेना आरम्भ कर दिया (तब उसने काट छांट आरम्भ कर दी) कष्ट कर चीजें काटी जाने लगी ।

शनै: शनै: झाड़झंखार/जंगली झाड़ियों जो बगीचे में उगी थीं, साफ हो गईं । किन्तु वे पुन: उग आईं, तो एक विचार आया कि इन्हें समूल विनष्ट कर दिया जाय तब उसने इन्हें खुर्पी से समूल खोदना आरम्भ कर दिया । और अनेकों पूर्णरीत्या समूलत: नष्ट हो गयी । लेकिन वह क्या देखता है? आकाश से वृष्टि हुई और कौन जाने कुछ न कुछ उच्छिष्ट मिट्टी में रह गया, कहीं किसी रुप में इसलिये बेचारा परिश्रम करता रहा, और प्रत्येक चीज साफ करता रहा और धरातल समतल करता रहा ।

प्रत्येक वृद्धि के उपरान्त यही प्रणाली प्रचलित रही अब वस्तुएं एवं रंग, अभिप्राय एवं हास्य और ढेर (संग्रह) जो बनाये थे इतने गहरे प्रविष्ट हो गये, कि वे स्थायी रुप में सन्निविष्ट हो गये । आपने इनकी सूचना उस शून्य से सम्बन्धित कर दी जिसे आपके महानतम सृष्टा ने आश्चर्य (कुतूहल) के आवर्त (छत) में ढंक दिया था । इनके संयोग में आप भी सहसम्बद्ध होने लगे आपने भी अपनी चीज उसमें मिलाई आपने मिश्रित कणों को शुद्ध चीज में रखा और इस प्रकार अशुद्ध कण इसके निकट आने लगे। अब आप मुझे बताए कि यदि माली उन्हें काटता नहीं है तो क्या वे हर किसी को आहत नहीं करेंगी ? और उन्हें रुधिर से सराबोर नहीं कर देंगी ?

इस नियम के अनुसार कि शुद्धता से शुद्धता ही निर्मित होती है और भेड़िये के भेड़िया ही होता है चीता (शेर) नहीं । उसने काट छाँट, जोड़ तोड़ आरम्भ कर दी जैसे कि बाग के माली का सेवक करता है । जो अपने स्वामी (शास्ता) का सेवक था । उसकी खुर्पी, फावड़ा, चलने लगा । जिसके परिणाम में जड़ें हिल गयीं । जब उसकी ऊर्जा (शक्ति) ने कलियों पर उसके विचार के कुठार से कार्य किया तो उसने इसे प्रथक करने की पद्धति इस प्रकार सोची (कल्पना की) जा सकती है ।

शरीर (देह) के दुष्प्रभाव को दूर करने हेतु कोई बीमारी उत्पन्न हो गई, अब आपके स्वामित्व ने वह मार्ग भी बना लिया इसलिये कि जो रंगारंग है, और सीमा के पार उपहास करते है. अपनी अत्यधिक (जटिल) क्रियाविधियों के विरुद्ध हटाए और दण्डित किये जा सकें। उसकी ऊर्जा अब उपयोग की है उसने आपके लिये सभी व्यवस्थाएं की हैं, और ऐसा ही हुआ कि वह इसे करता रहा, उसकी कैंची (हंसिया) कुठारी प्रत्येक अनुचित कृत्य के लिये थी, जिससे कि इससे दूसरे कट या विंध न जाएं उस आधार भूमि (सतह) पर आपने यह मानचित्र भी बना लिया और इस व्यवस्था को स्थायी कर दिया। अर्थात् कि प्रत्येक वस्तु तीक्ष्ण हो गयी एवं सभी को कष्ट पहुंचाने लगी, और लोग इससे आहत होने लगे, हमने भी देखा कि जब झाड़ी उगती है, तो ऊपर से कुठार इस पर पड़ता है। हम डरने लगते हैं। लेकिन कुछ सज्जनवृन्द लज्जाहीन हो गये और उन्होंने अपने आनन्द नहीं त्यागे, वे इस आनन्द में चले गये लेकिन बन्धु आपके कार्य और कुठाराघात बन्द नहीं हुये, न ही उन्होंने अपने आनन्द (मौज मस्ती) छोड़े। आप कुठारी की प्रखरता समाप्त नहीं कर सके।

卐

१९४९

१६-१-४९ प्रिय पुत्री,

आशीर्वाद-मैं प्रसन्न हूं कि मुझे ऐसे आध्यात्मिक उन्नति परक पत्र प्राप्त होते हैं, ईश्वर को धन्यवाद, मेरी चिन्ता कोई नहीं करता और जब वाह्यरूपेण मेरे पास देने हेतु कुछ नहीं है, फिर भला कोई मेरी चिन्ता करे भी क्यों ? लोग मेरे पास आते तो हैं किन्तु बहुत ही कम, और वह भी एक दो ही व्यक्ति मुझसे पत्र व्यवहार द्वारा पूंछतांछ कर पाते हैं। अब मेरे पास दीनता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, तो लोग किसके द्वारा आकर्षित हों ? मेरे पास कोई यांत्रिक प्राविधान भी नहीं है क्योंकि मुझे कोई यात्रा भी नहीं करनी किन्तु आज यदि हम किसी को अपने मूल प्रदेश की यात्रा करने को कहें तो क्या वह यह उत्तर देते हुये न्यायपूर्ण नहीं है कि ऐसी यात्रा से उसे दूर ही रहना अच्छा कि जिसमें मंजिल पर पहुंचने के बाद उसके प्राविधान भी परिसमाप्त हो जाते हैं।

इसलिये जब हमने प्रत्येक वस्तु खो दी तो मेरे पास क्या बचता है? क्या यात्रा का परिणाम केवल यही है ? लोग जब मेरी बातचीत और साथ रहने से यह जानते हैं तो उनकी अभिरुचि सामान्यतया कम (क्षीण) होने लगती है। शाहजहांपुर में ऐसा एक उदाहरण है-इसलिये प्रियपुत्री अब मेरे पास क्या है जो मैं तुम सबको दूं।

यदि मैं खोई हुई वस्तु पुनः प्राप्त करने का प्रयास करूं तो यह भी सम्भव नहीं है। क्योंकि यात्रा के मूल्य रूप में मैंने इसे चुकाया (अदा किया) है। अब मेरे पास क्या बचा है ? कुछ भी नहीं और इसे लेने हेतु अत्यधिक कठिनता से एक दो ही तत्पर होंगे। क्या तुम सोचती हो कि यह उचित (उपयुक्त) है ? मेरे पास स्नेह प्रेम भी तो नहीं जो तुम्हें दे सकूं कि मैं तुम्हें दे सकता हूं। यह सम्भव हो सकता है कि तुम और मैं दोनों ईश्वर से इसे प्रदान करने हेतु प्रार्थना करें। इसमें एक भय भी है, ईश्वर कह सकता है क्या एक बेचारा दीन जिसने अपनी सभी चीजें मुझे दे दीं, यह प्रेम रख भी सकेगा ? यदि यह वापिस दे दिया जाये।

सम्भवतया ईश्वर अपना प्रेम तुम्हें दे सकता है लेकिन मुझे संदेह है कि वह मुझे भी देता है कि नहीं। क्योंकि मैं पूर्वतः उसके समक्ष नग्न अनावृत) हो चुका हूं तुमने अपनी जो भी दशा लिखी है मुझे भय है कि तुम्हें भी मेरी भांति धोखा हो सकता है और यात्रा का मूल्य चुकाना पड़ सकता है और मेरे जैसा दीन और भिखारी (याचक) बनना पड़ सकता है।

स्वा० वि० मैं एक बार पुनः यह सूचित करता हूं कि ऐसा समय भविष्य में हजारों वर्ष तक नहीं आयेगा। यदि तुम ऐसा एक अवसर खो दोगे तो यह तुम्हारी मूढ़ता होगी।

२-२-४९ लाला जी/स्वा० वि० नाम और ख्याति चाहने वालों की किंचित भी आवश्यकता नहीं, तुम्हें एक विस्तृत कार्य क्षेत्र तैय्यार करना है, शीघ्र ही समय आ रहा है कि संसार भोर के तारे के समान जाज्वल्यमान हो उठेगा। तुम इस संसार की नूतन आधार शिला रखोगे।

५–२–४९ लाला जी/स्वा०वि०–ऐसे आश्वासन भविष्य में न दिये जायें, यह बहुत अधिक है। तुम यह नहीं अनुभव करते कि तुम क्या हो ? अपना उत्तरदायित्व समझो। निश्चित हो जाओ कि जो कुछ भी तुम सोचोगे सम्पन्न हो जायेगा। यह ईश्वरेच्छा है। मिशन के प्रति तुम्हारी सेवायें और बलिदान स्वर्णिम अक्षरों में लिये जायेंगे। तुम अपनी सामर्थ्य से अधिक कर रहे हो ? तुम्हारा विचार कि तुम मानवता के विनीत सेवक हो, सराहनीय है।

लाला जी–सामान्यतया मैं लोगों को मनोविकृति की दशा में पाता हूं वे अब भी उसी मोह निद्रा में हैं। कालचक्र उन्हें शिक्षा दे ही देगा, तेज धार (नोंक) वाला भाला (कुठार) उन्हें ठीक कर देगा। यह उनके सिर पर ही है यद्यपि उन्हें इसका पता नहीं, वे अपना भविष्य स्वयं नष्ट कर रहे हैं।

४–४–४९ शाहजहाँपुर से गया के लिये प्रस्थान ११ बजे सुबह।

५–४–४९ – २बजे प्रातः गया पहुंचा और निकस्थ एक सराय में रात्रि का शेष भाग व्यतीत किया। अगले दिन ७–३० बजे मैं नगर में गया और सूरजमल मारवाड़ी छोल्दारी (आवास) के कमरा नं० ८ में ठहरा। मुझे आदेश मिला कि आज विश्राम करने के उपरान्त कल से कार्य आरम्भ करूं। यह वह स्थान है जहाँ की भूमि के प्रत्येक इंच (अंगुल) पर श्रीकृष्ण महाराज के पदचिन्ह हैं। वाणासुर से युद्ध की घटना सत्य है। श्रीकृष्ण को अनिरुद्ध का पता यहीं से चला / और उस मार्ग का भी (जिससे होकर उन्हें ले जाया गया था)।

मुझे जघन्य अपराधों के दुष्प्रभाव को जोकि इस पवित्र नगर के वातावरण में संचरित होता रहा था, समाप्त करने हेतु आदेश दिया गया। वस्तुतः यह दुष्कर कार्य है, कुछ बातें जो हिन्दू लोगों में प्रचलित हैं उनसे हिन्दू धर्म की शाख गिरी है इन्हें दूर किया जाना है अन्य दूसरी निरर्थक एवं अवांछित वस्तुओं को भी दूर किया जाना है। समग्र वातावरण इतना स्थूल एवं भद्दा है कि मेरा हृदय दबाव में रहा और जैसे ही मैं नगर में प्रविष्ट हुआ मुझे उबकाई आ रही थी (जी मिचलाने लगा था) वातावरण से विषाक्त प्रभाव दूर करने के उपरान्त मुझे चरित्र निर्माण के कार्य को सम्पन्न करने हेतु निर्देशित किया गया।

बुद्ध जी महाराज ने उस पीपल वृक्ष को अनुप्राणित करने हेतु कहा कि जिसके नीचे बैठकर आध्यात्मिक ऊर्जा से उन्होंने तपस्या की थी। उन्होंने कहा कि यह धरती सदैव दिव्य प्रकाश विकीर्ण करती रहनी चाहिये। इस कार्य के सम्पन्न हो जाने पर चैतन्य महाप्रभु एवं स्वा० वि० ने अभिनन्दन किया और कहा कि वे कृत कार्य के प्रति संतुष्ट हैं। इस सन्दर्भ में लाला जी व बुद्ध जी भी प्रसन्न थे।

७–४–४९ स्वा० वि० जब उच्च (महान) व्यक्तित्व अवतरित होता है (अस्तित्व में आता है) हम भोर के तारे की भाँति जाज्वल्यमान होते हैं। हमारा कार्य सम्पन्न हो चुका। ईश्वर भक्ति विख्यात है। कोई तुम्हारे प्रति भक्ति उत्पन्न (अभ्यास) करे और देखे। तुमने वातावरण में ऐसे प्रभाव आपूरित कर दिये हैं कि कार्य स्थाई रूपेण

(स्थिर) दृढ़ हो गया।

८–४–४९मिश्र एवं रूस सहित यूरोपीय देशों की ओर ध्यान देने का आदेश दिया गया

९–४–४९ बुद्ध गया पहुंचा, कार्य सम्पन्न कर गया वापिस आया।

११–४–४९कुछ विभूतियों की वास्तविक दशा एवं अवस्था के (पहुंच का स्तर) रहस्य का उद्घाटन हुआ। उनके विषय में सभी कुछ लिखना अनावश्यक है। हिन्दू धर्म के अत्युच्च अग्रणी प्रणेता ऐसी विकट भूलें कर गये जिन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता।

हिन्दू धर्म यद्यपि कि इस समय विभिन्न धर्मों के सिद्धान्तों का सम्मिश्रण है फिर भी यह धर्म नहीं है व्यवस्था है।

२९–९–४९ लाला जी ने मेरी पत्नी को मुक्ति (निर्वाण) प्रदान किया। मुझे उनकी अस्थियां अन्त तक सुरक्षित रखने का आदेश दिया गया। यथानुरूप उसकी अस्थियों पर समाधि बनाई जाये।

१९५०

१०–३–५० मुझे आदेश प्राप्त हुये कि शाहजहांपुर में होने वाली धार्मिक कटुता को शान्त कर देना चाहिये। इन आदेशों का परिपालन किया गया, गुरु भक्ति सभी बुराइयों के परिहार का निश्चित उपचार है। जो अलसाई बातों में अपना समय नष्ट कर रहे है। आगे पछतायेंगे, यदि उन्हें कर्तव्य भाव का बोध होगा। अपरिसीम दिव्य ईश्वरीय कृपा ने मुझे आज यह प्रदर्शित कर दिया कि प्रिय श्री अमुक····· अव्यक्तगति की दशा में स्थिर हो गये और उन्होंने यात्रा सम्पन्न कर ली।

२५—६—५० प्रिय श्री अमुक ने के प्रथम तीन वृत्त पार कर लिये, अब वह चौथे वृत्त में है।

२६—६—५० श्री अमुक··· को अहम् अनुशासन स्थिर रखने हेतु कार्य करने वाले व्यक्ति प्रशिक्षक के रूप में औपचारिक अनुमति प्रदान की गई जिसके लिये उनकी तीव्र आकांक्षा थी। इससे पहले उनकी गुरु बनने की प्रवृत्ति पूर्णरीत्या समूल निराकारित कर दी गई किन्तु फिर भी उन्हें इस प्रवृत्ति के पुनः अंकुरित न होने देने की भरसक सावधानी वरतनी चाहिये। उन्हें यह कार्य दिव्य (ईश्वरीय) समझना चाहिये और प्रत्येक वस्तु मात्र (उस) ईश्वर से सम्बन्धित कर देनी चाहिये क्योंकि वही एक मात्र शक्ति है और सबका स्वामी है (गुरु है)।

यह अनुमति सहज मार्ग प्रणाली के अनुरूप है। वह दूसरों को प्राणाहुति की विधि बता सकते हैं और प्राणाहुति दे सकते हैं। वह मिशन के अध्यक्ष के अधीन कार्यरत रहेंगे। उन्हें पूर्णभावेन स्वयम् को (गुरु की) मिशन की सेवा में अभ्यर्पित कर देना चाहिये।

१८—११—५० पूजा से कहीं अधिक श्रेयष्क गुरू की आज्ञा मानना है यदि कोई लाला जी महाराज के लिये सेवा करता है तो मैं स्वयं को उसकी ओर आकर्षित अनुभव करूंगा। (० ०)

१९५१

२५—५—५१ तर्क सदैव विश्वसनीय (निश्चित) नहीं होता। समस्या का समुचित समाधान उस (अवस्था) दशा में प्रवेश करना होगा। आकाश से अवकाश (काल) उत्पन्न हुआ और ईश्वर आकाश की अभिव्यक्ति है (प्राकट्य है) शेष सभी परवर्तीरूप— अभिव्यक्तियां काल (अवकाश) की है तब आकाश किसने बनाया? ईश्वर के निर्माण की आवश्यकता ने और संसार के निर्माण की (आवश्यकता ने) यह शाश्वत है और रहेगा।

स्वामी विवेकानन्द "अन्तर्वर्ती वृत्त ईश्वर की रचना (प्राकट्य) का 'कारण' था। वाह्यवर्ती आवरण सृष्टि निर्माण में परिणत हो गया। मध्यवर्ती भाग अवधि (माया) (मध्यान्तर काल) है। यदि मध्यवर्ती भाग एवं वाह्यवर्ती आवरण अपसृत कर दिये जायें, केवल शून्य (आकाश) ही बचता है और महाप्रलय के समय यही होता है। यह तादात्म्य है जो आकाश में रूपान्तरित होता है या ऐसा कहिये, कि दूसरे शब्दों में आकाश ही तादात्म्य है।

लाला जी—यद्यपि कि यह कल्पना मात्र है फिर भी इसी कारण से ईश्वरोपासना आवश्यक है। इस विन्दु पर आने पर ईश्वर का विचार मात्र अभिकल्पना रह जाता है तादात्म्य का लय कभी नहीं होता भले ही आप मेरा विचार छोड़ दें लेकिन तादात्म्य (अभिज्ञान) विद्यमान रहता है। और मुझे भी मेरे तादात्म्य की आवश्यकता है

मैंने कभी स्वयं को ईश्वर से विलग नहीं किया। यद्यपि मेरा प्रेम तुम्हारी तुलना में कम नहीं था मैंने समझा/विचार किया कि यह विन्दु (ईश्वर) और गुरू भी एक निश्चित अवस्था के उपरान्त सहज प्रत्यक्ष सम्बन्ध का मार्ग बना देंगे। इसका आशय यह है कि भक्ति की परिसीमा में रहते हुये ही अपना कार्य सम्पन्न करना चाहिये।

लाला जी—जहां है 'अस्ति' होगा वहां संशय 'नहीं है' 'नास्ति' भी होता है। इसका आशय यह है कि एक न एक क्रिया इन दोनों में निहित है। अन्यथा संदेह 'नास्ति' का उद्भव न होता। अतः यह क्रिया किससे सम्बन्धित है? (वस्तुतः) यह उससे सहसम्बद्ध है जो अस्ति/नास्ति के मध्यान्तर है। यह शून्य है (कुछ नहीं) इसका अर्थ यह है किसी समय यह (शून्य) नहीं था। यह मात्र अभिकल्पना है।

मान लीजिये किसी समय 'यह' (शून्य) नहीं था तो जब यह अस्तित्व (सत्ता) में आया तो इसका आशय यह हुआ कि वह अनस्तित्व से अस्तित्व में आया। (अब) यदि आप कहें कि यह वस्तु शून्य नहीं है फिर भी प्रश्न शेष रहता है (अनुवृत्ति) कि वह कभी था और अब ओझल (समाप्त) हो गया है।

वह कब था, कब नहीं, केवल (मात्र) यही उत्तर हो सकता है कि जब यह था तब था / और जब (वहां) नहीं था, तब (यहां) अस्तित्व में आया। इसका निष्कर्ष है कि जो है, नहीं रहेगा और जो नहीं है वह अस्तित्व में आयेगा (आ सकता है)।

(o)

शुद्धिपत्र

पृष्ठ सं०	दिनाँक	पंक्ति	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
२	११-५-३४	४	कही	नही
		१६	प्रणाहुति	प्राणाहुति
३	१९-५-४४	१२	सामर्थ्य	सामर्थ्य
४	२२-५-४४	५	सुनिश्चन	सुनिश्चित
८	२३-६-४४	८	स्वाभिक	स्वाभाविक
		९	महारज	महाराज
१०	११-७-४४	१	ाहुलतया	वहुलतया
१२	१४-७-४४	६	चाहिय	चाहिए
१८	२४-७-४४	९	यहाराज	महाराज
१९	२७-७-४४	१३	मेने	मैंने
२२	१-८-४४	२	पयाप्त	पर्याप्त
२६	८-८-४४	२०	कस	कसे
२७	१०-८-४४	१२	अपन	अपना
२८	१४-८-४४	५	संकार	संस्कार
३३	१८-८-४४	३	लयते	लगते
	१९-८-४४	१	अपना	अपनी
३७	१४-१०-४४	४	पारितोषितक	पारितोषिक
३८	१८-१०-४४	९	को	के लिए
३९	१-११-४४	७	आत्मा	आरम्भ
४०		१	इसे	इसके
	५-११-४४	९	किस्थान	कि यह स्थान
४२	२२-११-४४	१	सामान्यतधा	सामान्यतया
	२५-११-४४	१०	अधिपत्य	आधिपत्य
४५	२९-१२-४४	३	सेपकुमारी	केपकुमारी
४६	२-२-४५	९	हूं	है
	४-२-४५	६	बताउ	बताऊं
		१६	निर्वेष्ट	निर्दिष्ट
४७	५-२-४५	३	आवाद	आपाद
४७अ-२		१०	अनुप्रमाणित	अनुप्राणित
४७अ-२		१३	प्रकृतिकार्य	प्रकृति का कार्य
		१४	विविधता	विविधिता
४८	८-२-४५	१७	अग्य	अन्य
		२१	के अपरिहार्य	के लिए अपरिहार्य
५०	१७-२-४५	२९	भण्डागार	भण्डारागार

पृष्ठ सं०	दिनांक	पंक्ति	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
५१	२२–२–४५	४	संकारों	संस्कारों
५४	६–३–४५	१०	व्यवस्था	लय अवस्था
५५	१०–३–४५	८	अनवृत	अनावृत
५६	१५–३–४५	७	क्षोम	क्षोभ
६१	२४–३–४५	९	अल्हवाद	आल्ह्वाद
६२	२६–३–४५	३	अध्यापतन	अधःपतन
		४	अन्यत्र	अन्यंच
		९	सम्बध	सम्बद्ध
		१५	लालाजी मुझे	लालाजी ने मुझे
६३	२७–३–४५	२०	संतुष्टि	संतुष्टि
	२९–३–४५	३	के तुम	को
६४	५–४–४५	१	का	को
६५	१३–३–४५	५	स्थानों	स्थानों
	१४–५–४५	२	जाया	आया
६९	११–५–४५	८	परिभ्रण	परिभ्रमण
७०	१२–५–४५	२०	मेरी प्राणाहुति	प्राणाहुति
		१२	शुचित	शुचिता
		१५	Kudus	Kuds
७१		१	१५-५-४५	१४-५-४५
	१५–५–४५	३१	कठिन	वर्षों के कठिन
७२	१७–५–४५	१	के	ने
		९	प्रमाण	प्रेक्षण
	१९–५-४५	३	श्रेयकर	श्रेयष्कर
	२२–५–४५	२	ब्रह्म क्षेत्र	ब्रह्माण्ड क्षेत्र
		९	लेता है	लेते हैं
	२९–५–४५	४	सम्बन्ध	सम्बद्ध
७४	८-६-४५	२३	सम्बन्ध	सम्बद्ध
७५	१०-६-४५	३	दिया	दिया जानाचाहिये
		१५	पैसे तीन	पैसे के तीन
	११-६।४५	२	प्रकाशन अमुख	अमुक
८२	२५-८-४५	१	पूर्व प्रलय	पूर्व और प्रलय
८३	१८-१०-४५	३	है···तत्क्षण	है और इसका क्या उपचार है तत्क्षण
	१९-१०-४५	९	आमे·	आगे
		१०	दौ	दैव

पृष्ठ सं०	दिनाँक	पंक्ति	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
८४		१७	आघात	आधार
	२६-१०-४५	२	स्वाध्याय	स्वाध्याय
	६-११-४५	१	नकल और	नकल की और
८५	१०-११-४५	१	अन्त वाध्य	अतःवाह्य
	१८-१२-४५	३	आती जब	आती है जब
८६	३१-१२-४५	३	किहे	किन्हे
१	८-१-४६	६	पै	पैर
३	२-२-४६	६	विअिष्ट	विशिष्ट
	३-२-४६	१	लालाजी मुझे	लालाजी ने मुझे
	८-२-४६	६	कितसे	कितने
४		२	परिमाप्त	परिसमाप्त
५	३-३-४६	१६	तिरोभूत	तिरोभूत
६		३	प्राप्त	पर्याप्त
९	३१-३-४६	१८	ऋषि गुरु	ऋषि के गुरु
		२०	किअध्यात्मिकता	आध्यात्मिकता
	७-४-४६	७	कदि	यदि
१०		१६	अर्थको	अर्थों
	११-४-४६	१	आश्चर्यजनक है	आश्चर्यजनक वस्तु है
११	२९-६-४६	७	लभी	सभी
१२	१-९-४६	९	होती	होता
१	३१-१-४७	२	बनाया	बना
२		१	१-२-४७	१३-२-४७
	१३-२-४७	५	शक्ति उसे बाहर से	शक्ति सेउसेबाहर
४	१-५-४७	९	कच	चक्र
	३०-६-४७	२	की	को
		१०	के	में
५	२७-७-४७	४	मार	भार
		९	दृड़	दृढ़
	१८-८-४७	१	की	को
		३	समग्रत	समग्रतः
		११	यात्र	यात्रा
६	८-१२-४७	४	उन्हें	वे
७	२४–१२–४७	४	प्रेम	प्रेम की

पृष्ठ सं०	दिनाँक	पंक्ति	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
		१०	आध्यात्मिमता	आध्यात्मिकता
		१९	पालन	पालन करने
	२९-१२-४७	१	रात्रि में	(रात्रि में)
		१	अन्तनिहित	अन्तर्निहित
		४	सकत	सकता
२	८-२-४८	७	खेल	खेल नहीं
	२१-६-४८	१०	सामीत्यता	सामीप्यता
	१४-७-४८	६	अर्थात् दूसरे	—
५		१	नदी	रस्सी
	११-११-४८	१	(जादू)	(जादू) का
६	६-१२-४९	१४	वस्तुओं का	वस्तु
		६	इन्हीं ठेरों	इन्हीं ढेरों
		१३	झाड़ियों	झाड़ियां
		३४	उसने	उसकी
३	२५-६-५०	१	ने	के
	२६-६-५०	४	निराकारित	निराकरित
	१८-११-५०	१	प्रेषक	प्रेषकर
४	२५-५-५१	२	आकाशा	आकाश
		८	परिणत	परिणित

—: ब्रम्हज्ञान के सूर्य :—

ब्रह्मज्ञान के सूर्य, भेद ज्ञाता धाता के
तन मन प्राण, सहजलय मानव के दिग्दर्शक।
तेरी सहज सुवासित रहनी, गुरु गौरव से,
सकल विश्व आलोकित चेतन चित्ति प्रकाशक ।१।

यद्यपि लय हो गये तथापि समाधि प्रकाशित,
प्राण प्रभा उदीयमान है अणु अणु कण कण।
इतस्ततः परितः जब देखे—अन्ध तमसघन,
क्षणभर में परिणित कर डाले धरा औ गगन ।२।

ढूंढ़ खोज आधार बनाया, शुचि प्राणाहुति,
सहज मार्ग के प्रिय प्रदेश में हुई समाहित ।
ब्रह्मज्ञान के सुघर सहज आविष्कर्ता ने,
अच्युत सतपद तक पहुंचाया प्राणहितसहित ।३।

भ्रूभंगिमा सतत आभायित प्राण प्रभा से,
जगमग चमका दमका दिया गगन मन आंगन ।
'प्राणाहुति' जागरित सहज, अन्तस लालयित,
सततहितसहित अनुपम प्रियतम सहज श्रुति बचन ।४।

घर घर फैली प्राणासुरभि शुचि सहज राम की,
प्रेम प्रसून सकलखिल उठे समाधि तेज से।
दर्शनीय सौन्दर्य सहज वरदान सचेतन,
जीवन कोटि निछावर उसपर प्रलय वेग से ।५।

तूने जो कुछ कहा सच हुआ कोई देखे,
शुचि शाश्वत सौभाग्य सूत्र अन्तर्पट बांधे।
दौड़े स्वयं चले आएंगे प्रेम पुजारी,
सद्यः चेतन चित्ति प्राण जीवन आराधे ।६।

तेरी कृपा अहैतुकसे जो दीपक वाले,
मतवाले रोशनी चाहने वाले जागे।
मानव मगन देखता सहज सत्यनिष्ठा से,
फूले फले अवाधित सहज मार्ग अब आगे ।७।